http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-19,20

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१८, १९, २० भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :

वैजनाथ जैन, ट्रस्टी-सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[एकोनविंश भाग]

●

प्रवक्ता

[अध्यात्मयोगी, श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज]

●

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके विशेष अर्थके स्वरूपका अधिकार—इस ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके बाद प्रमाणके विषयका विवरण चल रहा था। प्रमाणका विषय क्या है ? उत्तर मिला—सामान्यविशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है। अर्थात् प्रमाण याने ज्ञान सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जानता है। न कोई पदार्थ केवल सामान्यात्मक होता है, न कोई पदार्थ केवल विशेषात्मक होता है। इस सिद्धान्तपर सामान्य तत्वके विरुद्ध विशेषवादियोंने शंकायें की उनका निराकरण भी किया। सामान्य दो प्रकारके होते हैं—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य। तिर्यक् सामान्यमें सदृश प्रत्यय द्वारा बोध होता है। एक कालमें अनेक पदार्थोंमें सदृशत्व देखकर तिर्यक् सामान्यकी जानकारी होती है। तो वहां प्रत्येक पदार्थोंसे प्रत्येकको परस्पर व्यावृत्त दिखाकर सामान्य भावका ही निराकरण करना चाहा था। वहां प्रमाणसे युक्तियोंसे सिद्ध किया गया कि तिर्यक् सामान्य धर्म है। इसके बाद ऊर्ध्वता सामान्यके विरोधमें विशेषवादियोंने आपत्ति उठायी थी कि प्रत्येक क्षणमें चूंकि नवीन-नवीन पदार्थ होते हैं इस कारण ऊर्ध्वता सामान्य नहीं बन सकता। उसका निराकरण किया। और सामान्य स्वरूपकी व्यवस्था बतायी। अब सामान्य स्वरूपका विवरण करनेके बाद विशेष तत्त्वका वर्णन कर रहे हैं। विशेषका अर्थ है जो दूसरेसे भिन्न हो अथवा कुछ विलक्षण हो। तो सर्वप्रथम विशेषके भेदोंका वर्णन करनेका संकेत एक सूत्रमें कहते हैं।

विशेषश्च ॥ ४-७ ॥

सामान्यवत् विशेषके प्रकारोंका भी उल्लेख—विशेष भी दो प्रकारका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है—जिस प्रकार सामान्यके दो प्रकार बताये गए थे—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य। इसी प्रकार विशेषके भी दो भेद होते हैं—तिर्यक् विशेष, ऊर्ध्वता विशेष। याने एक प्रकारका तो ऐसा विशेष जिससे एक साथ रहने वाले अनेक पदार्थों में भिन्नता बताई जा सके। जैसे गायसे भिन्न भैंस है। भैंसादिकसे भिन्न घोड़ा है, इस तरह तो एक ही कालमें रहने वाले अनेक पदार्थोंमें विशेष बताया जा सकता है। एक तो ऐसा विशेष अथवा एक ही जातिमें भी विलक्षणता बता सके। जैसे अनेक गायें हैं उनमें भेद डालना, यह पीली है, यह काली है, यह अमुक गुणकी है आदिक भेद बताना यह सब है तिर्यक विशेष। तो एक विशेष तो होता है एक ही कालमें रहने वाले अनेक पदार्थोंमें भिन्नता बताने वाला। दूसरा विशेष होता है अनेक कालोंमें होने वाली परिणतियोंमें परस्पर भेद बताना। तो ठीक जिस तरह सामान्यके भेद किए गये थे, उन्हीं दृष्टियोंमें उनके मुकाबलेतन विशेष भी दो प्रकारके होते हैं। उन विशेषों के नाम क्या हैं उसके लिए सूत्र कहते हैं।

पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ४–८ ॥

विशेषके दो प्रकारोंका निर्देश—एक पर्याय विशेष दूसरा व्यतिरेक विशेष यहाँ पर्याय विशेष तो कहा गया ऊर्ध्वता विशेषके लिए और व्यतिरेक विशेष कहा गया है तिर्यक् विशेषके लिए। पर्याय विशेषसे मतलब है कि अनेक पर्यायोंमें परस्पर विलक्षणता भिन्नका बताना। तो यहाँ चूँकि अनेक पर्यायोंमें बताया जा रहा है सो अनेक पदार्थोंके अनेक पर्यायोंमें विशेषता बतानेकी बात यदि कही जाय तो वहाँ बन जायगा वह व्यतिरेक विशेष। इस कारणसे एक ही पदार्थमें होने वाली पर्यायोंमें भेद बताने का नाम है पर्यायविशेष। व्यतिरेकविशेष। व्यतिरेक कहते हैं भिन्न–भिन्नको। भिन्न–भिन्न रहने वाले पदार्थोंकी विलक्षणता बताना वह है व्यतिरेक विशेष। सो किसी एक पदार्थकी भिन्न–भिन्न पर्यायोंको मानकर उसमें विशेष बतानेको यदि व्यतिरेक विशेष कहा जाय तो वह पर्यायविशेषमें आ जायगा। इस कारणसे एक ही काल में अवस्थित अनेक पदार्थोंमें परस्पर भिन्नता बताना यह कहलाता है व्यतिरेक विशेष यों विशेषके दो भेद बताकर पर्यायविशेषका स्वरूप बताते हैं।

एकस्मिन् द्रव्ये क्रमाभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्ष-विषादादिवत् ॥ ४–९ ॥

पर्यायविशेषका स्वरूप और पर्यायोंमें अनुगत एक पदार्थकी अमान्यता का समाधान—एक ही द्रव्यमें क्रमसे होने वाले परिणामोंको पर्याय कहते हैं। और उनकी विशेषतामें होने वाले भावको पर्यायविशेष कहते हैं। जैसे कि एक आत्मामें पूर्वोत्तर उत्पन्न हुए हर्ष विषाद आदिक परिणामोंको पर्यायविशेष कहा जाता है। द्रव्य है वहाँ एक। जैसे कोई सा भी एक आत्मा ले लीजिए। उस एक आत्मामें कभी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हर्ष परिणाम होता कभी विषाद परिणाम होता तो यों हर्ष विषाद अनेक परिणाम हुए, उन परिणामोंकी कथंचित् भिन्नता है, क्योंकि प्रत्येक पर्यायानुभवन उसके काल में उस ही रूप होता है इस कारण वह पर्याय विशेष कहलाता है। यहां क्षणिकवादी शङ्काकार कह रहा है कि हर्ष विषाद आदिक भेदोंसे भिन्न कोई आत्मा नहीं है। जो हर्ष विषाद आदिक पर्यायें उत्पन्न हो रही हैं, जो भेद उत्पन्न हो रहे हैं वे सब एक-एक पदार्थ हैं। उनमें रहने वाला कोई एक आत्मा हो सो नहीं है। इस कारणसे यह उदाहरण देना बिल्कुल अयुक्त है कि आत्मामें हर्ष विषाद आदिक पर्यायें विशेष कहलाती हैं। इनमें तो एक हर्ष पदार्थ हुआ एक विषाद पदार्थ हुआ। और इस तरह से जितने भी भेद उठेंगे वे सब एक-एक पदार्थ हैं. उनमें अन्वय रूपसे रहे कोई आत्मा आदिक किसी भी नाम वाला सो बात नहीं। अब इस शंकाका समाधान करते हैं कि शंकाकारने यह बात जरा मन करके नहीं कही है। पहिले तो यह सोच लो कि अनेक आकारोंमें व्यापने वाला एक कुछ हुआ करता या नहीं। इस ही आधारपर तो तुम अन्वयी आत्माका खण्डन कर रहे हो। तो पहिले यह निर्णय कर लो कि अनेक आकारोंमें व्याप करके रहने वाला कुछ एक हुआ करता कि नहीं हुवा करता है? ऐसा तो इन क्षणिकवादियोंने भी माना। चित्रज्ञान होता है तो वह नीलाकार पीताकार आदिक अनेक व्यापारोंसेमें व्यापने वाला है और उसे अद्वैत माना है। तो इतनी बात तो माननी ही पड़ेगी कि अनेक आकारों में रहने वाला एक कुछ होता है। ऐसा नहीं कि जितने आकार हैं वे सब पदार्थ हैं। यों माननेपर चित्रज्ञानका स्वरूप न बनेगा। वहाँपर भी थे अनेक ज्ञान बन बैठेंगे। अनेकान्तात्मक एक सम्वेदन जो अद्वैत क्षणिकवादमें माना है वह न बन सकेगा। तो इसी प्रकार अनेक आकारोंमें व्याप करके रह रहा यह आत्मा कोई किसी आकारमें कोई किसी आकारमें अथवा एक साथ उत्पन्न हुए आत्मत्वके ज्ञानके आकारमें रहने वाला आत्मा एक है और वह स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे सिद्ध है। क्रमसे भी इसमें अनेक आकार आ रहे हैं। कभी हर्ष करता है कभी विषाद करता है तो उन हर्ष विषाद आदिक परिणामोंमें रहने वाला कोई एक आत्मा है। जो बात जिस तरहसे प्रतिभात होती है उसका उसी तरहसे व्यवहार करना चाहिए। जैसे कि अनेक ज्ञेयाकारोंमें एक रूपसे सम्वेदन करने वाला चित्रज्ञान एक माना गया है इसी प्रकार सुख आदिक अनेक आकारोंमें एक आत्मारूपसे प्रतिभासमान आत्मा भी तो है। इस कारण मानना होगा कि द्रव्य तो एक है वह आत्मा और उसमें पूर्वापर कालमें अनेक पर्यायें उत्पन्न होती हैं। वह पर्याय विशेष है।

हर्षविषादादि परिणामोंको सर्वथा भिन्न माननेपर अनुसन्धान ज्ञानके अभावका प्रसंग—और भी देखिये! यदि सुख दुःख आदिक पर्यायोंको परस्परमें सर्वथा भिन्न मान लिया जाय अर्थात् सुख दुःख आदिक पर्यायोंमें कोई एक आत्मा नहीं है, या एक आत्माकी वे परिणतियाँ नहीं हैं वे स्वतंत्र एक-एक पदार्थ हैं, सुख दुःख आदिक इस तरह उनमें यदि एकान्ततः भेद मान लिया जाय तो 'मैं सुखी था अब मैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दुःखी हूं" इस प्रकारका अनुसंधान ज्ञान नहीं बन सकता जैसे कि जीवोंको ऐसा प्रत्यभिज्ञान होता है कि मैं पहिले तो सुखी था, अब तो मैं बड़ा दुःखी हूं या मैं पहिले दुखी था अब सुखी हूं आदि। प्रायः अनेक लोग इस तरहसे अपनेको अनुभव करते हैं, अजी पहिले समयमें बड़े सुखी थे लोग, अब तो ये सब दुःखी हैं। मैं भी पहिले बड़ा सुखी था, अब मैं दुःखी हूँ, इस प्रकारका जो प्रत्यभिज्ञान हुआ करता है फिर वह न होगा।

वासना जाग्रतिके कारण सुख दुःखोंका अनुभवन—शंकाकार कहता है कि उस प्रकारकी वासना रहती है, उस वासनाके जगनेसे ऐसा ज्ञान हो जाया करता है कि मैं सुखी था अब दुःखी हूं या मैं पहिले दुःखी था अब सुखी हूँ। वस्तुतः कोई वह एक नहीं है, जो ही एक पहिले सुःखी था वही एक अब दुखी है। सुख दुःख आदिक जितने भी भेद हैं वे सब पूरे स्वतंत्र भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, केवल उस प्रकारकी वासना लगी हुई है उस वासनाके कारण इस प्रकारका अनुसंधान होता है। उत्तर देते हैं कि यह कथन बिल्कुल असत्य है। भला यह बतलाओ कि यह जो अनुसंधानकी वासना हुई है—जो पहिले सुखी था वही मैं अब दुःखी हूँ, इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानकी वासना बनी है सो वह अनुसंधान वासना अनुसन्धानमें आये हुए सुख आदिकसे भिन्न है अथवा अभिन्न है? अर्थात् जो हमारे ज्ञानमें हमारे प्रत्यभिजानके विषयभूत सुख दुःख हो रहे उन सुख दुःखोंसे यह प्रत्यभिज्ञानकी वासना जुदी है क्या? यदि जुदी मानते हो तो अब परखिये। मेरे आत्मामें जो सुख दुःख हो रहे हैं उनका कर रहा हूं मैं प्रत्यभिज्ञान लो यही तो मैं सुखी था, अब यही मैं दुःखी हो गया हूं। तो इसमें अब दो बातों पर विचार किया जा रहा है। एक तो प्रत्यभिज्ञानकी वासना हुई है। दूसरे वे प्रत्यभिज्ञानके विषयभूत सुख दुःख आदिक हैं तो ये दोनों क्या भिन्न हैं? यदि ये सर्वथा भिन्न हैं तो जैसे दूसरे पुरुष हमारे सुख दुःखका विषयका ज्ञान नहीं कर सकते इसी प्रकार मेरेमें जगी हुई अनुसंधान वासना भी मेरे सुख दुःखोंका ज्ञान न कर सकेगी। क्योंकि अब तो इस ज्ञान वासनाको सुख दुःख आदिकसे भिन्न मान लिया गया है। यदि कहो अनुसंधान वासना अनुसंधीयमान सुख दुःख आदिकसे अभिन्न है तब अनुसंधान वासनायें भी उतनी बन जायेंगी जितनी कि हर्ष विषाद आदिक भेद हैं, क्योंकि अनुसंधान वासनायें उन अनेकोंमें अभिन्न हो गई। तो जब उन अनेकमें अभिन्न होगई तो वासना एक कैसे रहेगी। सुख-दुख आदिक हैं अनेक पदार्थ और उन अनेक पदार्थोंमें अभिन्न रूपसे रह रही वासना तो जितने भी पदार्थ हैं उतनी ही वासनायें कहलायेंगी। फिर एक अनुसंधान कैसे कहलायेगा? जैसे घट पट आदिक अनेक पदार्थ रखे हैं उन पदार्थोंमें अभेदरूपसे उनका स्वरूप रह रहा है तब जितने पदार्थ हैं उतने ही तो स्वरूप कहलायेंगे। इसी प्रकार हर्ष विषाद आदिक अनेक भेद हैं और उनमें भेदरूपसे अनुसंधान वासना मान लिया तो जितने ही पदार्थ हैं उतनी वे अनुसंधान वासनायें बन जायेंगी। और, जब उतनी ही वासनायें बन गयीं और अभेदरूप हो गयीं तो सुख दुख आदिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो अचेतन पदार्थ हैं, सुख दुःखमें चेतनाका स्वरूप तो नही है, चेतनका स्वरूप तो ज्ञानमें है, तो अब वासना भी अचेतन बन गयी, क्योंकि जब सुख दुःखमें अभेदरूपसे रह रही है वासना तो जो सुख दुःखके गुण होंगे, जो सुख दुःखकी तारीफ होगी वही तो वासनाकी तारीफ बनेगी। तो जब वासना अचेतन होगई तो उन अनेक वासनाओं के जगनेसे सुख आदिकमें एक अनुसंधान ज्ञान कैसे पैदा हो सकता है ? जितने सुख दुःख आदिक हैं उतने ही अनुसंधान बनेंगे और फिर उनका स्वरूप भी नही बन पाता, क्योंकि वे अचेतनरूपमें हो गए। जब कारण पहिले है तो कार्य भी पहिले हो गए। सुख दुःख आदिक पहिले हैं तो सुख दुःख आदिकके सम्वेदन भी न्यारे-न्यारे तभी हो जायेंगे।

वासनाको सुखदुःखादिकसे कथंचिद्भिन्नाभिन्न माननेपर आत्माका ही अमान्तकरण—यदि सुख दुःख आदिकसे वासनाको कथंचित् ही भिन्न मान लेते हो, तब फिर यह नाम मात्रका विवाद रह गया है। उस हीका नाम आत्मा है, उस हीका नाम तुमने अनुसंधान वासना रख रखा है। अहं अहंके रूपसे स्वसवेदन प्रत्यक्षमें प्रसिद्ध जो आत्मा है, जो कि सहकारी गुणोंको और क्रमभावी पर्यायोंको आत्मसात् कर रहा है, आत्मीयरूप कर रहा है ऐसा जो आत्मा उसका 'वासना' यह दूसरा नाम रख लिया है। अर्थात् एक साथ रहने वाले ज्ञान, दर्शन चारित्र आदिक गुणोंको जो आत्मसात् कर रहा है आत्मस्वरूप बन रहा है और क्रमसे होने वाली पर्यायोंको भी अपनेमें कथंचित् तादात्म्य रूप कर रहा है ऐसे ही यह आत्मा है जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है। अह-अह रूपसे जाना जाता है, उस हीका नाम वासना रख लिया गया है। तब अन्वयी आत्मा सिद्ध हो गया ना। फिर उसमें जो सुख दुःख आदिक भेद उठते हैं वह पर्याय विशेष कहलाता है।

आत्म द्रव्यके अपलापमें ज्ञानक्षणोंमें सन्ततिकी अव्यवस्था—शंकाकार कहता है कि क्रमसे होने वाले सुख दुःख आदिकमें एक संतति पड़ी हुई है अर्थात् ये सुख दुःख आदिक क्षण एक संततिमें पड़े हुए हैं इस कारण यह संततिमें पड़ना ही अनुसधानका निमित्त बनता है। शंकाकार यह शंका इस सिद्धान्तके विरोधमें कर रहा है कि यदि सुख दुःख आदिक पर्यायोंका आधार कोई एक आत्मा न होता तो मैं दुःखी था, अब सुखी हूँ इस प्रकारका परिज्ञान नही बन सकता था इसके विरोधमें शंकाकार यह कह रहा है कि अनुसंधान बतानेके लिए आत्माको माननेकी आवश्यकता नही है किन्तु उन सुख दुःख आदिक अनेक क्षणोंमें संतति जो पड़ी हुई है वह संतति अनुसंधान का निमित्त बनती है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना भी तुम्हारा उसीके समान जैसा कि पहिले कहा था याने संतति शब्दसे तुमने आत्माको ही कह डाला। जैसे कि पहिले वासना वासना कह कहकर उसका रूप वही बनाना पड़ा था जो कि आत्मा का रूप है अर्थात् आत्माको ही वासना शब्दसे कह डाला था। तब यहाँ आत्माको ही

Version 1

संतति शब्दसे कहा जा रहा है। यदि उन सुख दुःख आदिकमें कथंचित् एकत्व न हो तो जैसे अनेक पुरुषोंके सुखोंमें संतति तो नही होती है इसी प्रकार एक देहमें होने वाले सुख दुःख आदिक अनेक पर्यायोंमें भी संतति नही बन सकती। संतति बनती ही वहाँ है जहाँ कथंचित् एकत्व होता है। फिर दूसरी बात यह है कि यदि आत्माको न माना जाय तो कृतनाश और अकृताभ्यागमका दोष आयगा। आत्माको न माननेपर एक तो यह दोष आता है कि आत्माने जो किया सो करके वह आत्मा तो नष्ट हो गया। अब उसका किया हुआ फल कौन भोगे ? मतलब यह है कि कृतका नाश हो गया और दूसरा आत्मा उसका फल भोग रहा है। तो यह भी तो बड़ा अंधेर है कि किया तो दूसरेने है और फल भोगता है कोई दूसरा यों अकृताभ्यागमका भी दोष हो गया। कर्त्ताका निरन्वय नाश होनेपर किये गए कर्मका नाश हो गया क्योंकि जिसने किया उसका तो हो गया नाश। अब उसके फलके साथ सम्बन्ध बन ही नही सकता। तो मतलब किया कराया बेकार खूब पाप करें, फल तो भोगना ही पड़ेगा, क्योंकि जो पाप करता है वह नष्ट हो गया। दूसरा दोष यह आता है कि उस संततिमें दूसरा आत्मा भी बना तो उसका फल भोगा दूसरेने। जिस बेचारेने कुछ नही किया उसको फल भोगना पड़ा। उससे आत्माको मानना ही पड़ेगा। तब किये हुए कर्मका फल भोगना यह बन जाता है।

आत्माकी प्रमाणभूतता – यह आत्मा अप्रमाणभूत नही है, क्योंकि उस आत्माके सद्भावमें प्रमाण है, स्वसम्वेदन ज्ञानसे जाना जाता है और अनुमान ज्ञानसे भी समझा जाता है। और, फिर ऐसा जो अपने अन्दर ज्ञान होता है कि मैंने जाना था और मैं ही अब जान रहा हूं अर्थात् पहिले भी मैंने जाना था और इस समय भी मैं ही जान रहा हूँ। इस प्रकारका जो ज्ञान है वह एक प्रमाताके विषयका ज्ञान सिद्ध कर रहा है कि नही ? प्रमाता कहते हैं ज्ञाताको। ऐसा कहनेमें जानने वाला एक ही है यह ज्ञान हो रहा है कि नही ? उससे भी यह सिद्ध है कि आत्मा वास्तविक पदार्थ है। जो कि सनातन अर्थात् सदा रहता है। क्षणिकवादमें एक नैरात्म्य ही मान लिया गया है, अर्थात् आत्मा कुछ नही माना। ज्ञान सुख दुःख आदिक सब समान होते भी आत्मा नही माना गया है। वह ज्ञान सुख दुःख आदिक जो क्षण हुए हैं वे हुए हैं, पर उनमें जब संतति रही नही, सत्ता रही नही सो तो आत्मा नही है, यों तो एक तरह से नैरात्म्य ही मान लिया गया है।

प्रत्यभिज्ञानसे भी आत्माकी सिद्धिका शङ्का समाधान – अब शंकाकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञानसे आत्माकी सिद्धि कैसे हो जायगी ? उत्तर देते हैं कि देखो, प्रत्यभिज्ञान जो हो रहा है वह प्रमाताके विषयमें हो रहा है। इस बातमें न क्षणिकवादियोंको विरोध है और न स्याद्वादियों को ही विवाद है। देखिये ! क्षणिकवादी प्रमाताको मानता है, पर उसे नित्य नही मानता दूसरे क्षण भी ठहरता ऐसा नही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मानता। तो प्रमाताके विषयमें ही तो यह ज्ञान हुआ ना कि मैंने ही जाता था और मैं ही जान रहा हूं। तो इतना तो विवादरहित तुम्हारा भी निर्णय है और हमारा भी निर्णय है कि ऐसा जो ज्ञान हो रहा है कि देखो ! मैंने ही पहिले जाना था और मैं ही अब जान रहा हूँ. ऐसा जाननेके सम्बन्धमें तो दोनोंका विवाद नही, अर्थात् वह प्रमाता है। अब यह बतलाओ कि वह जो प्रमाता हो रहा है क्षणिकवादमें, वह आत्मा है या ज्ञानमात्र ? आपका प्रमाता ज्ञानस्वरूप है अथवा आत्मारूप है ? अगर कहो कि ज्ञानमात्र ही है वह, आत्मारूप नही है, ज्ञान ही प्रमाता है तब तो फिर मैंने ही जाना था, मैं ही इस समय जान रहा हूँ, ऐसा एक प्रमाताके प्रत्यभिज्ञानसे जो अहं बुद्धि उत्पन्न हुई है उसका विषय ज्ञानक्षण मान रहे हो तुम, तो यह बतलावो कि यह बुद्धि अतीत ज्ञानक्षणमें हुई है या अतीत वर्तमान दोनोंमें हुई है अथवा किसी संतानमें हुई है ? क्षणिकवादियोंसे यह पूछा जा रहा है कि मैंने ही जाना था और मैं ही जान रहा हूँ, इस प्रकारका जो प्रत्यभिज्ञान होता है सो वह प्रमाता आत्मा है या ज्ञान है ? यदि ज्ञान ही ज्ञान है तो ज्ञानक्षण तो क्षणिक है। एक समयमें होते हैं, दूसरे समय नही ठहरते। तो अब यहाँ हो रहे हैं दो कालविषयक ज्ञान। मैंने ही जाना था, मैं ही जान रहा हूं। तो यह बतलाओ कि इस तरहका जो प्रत्यभिज्ञान कर रहा है ज्ञान भी क्या अतीत ज्ञान कर रहा है अथवा वर्तमान ज्ञान कर रहा है ?

क्षणिक ज्ञानक्षणों द्वारा अनुसंधानकी अशक्यता—अतीत ज्ञान ही "जो मैं पहिले जानता था वही मैं अब जान रहा हूँ' ऐसा ज्ञान कर रहा है, यदि ऐसा कहोगे तो केवल वहाँ वह ही समझ बनना चाहिए कि मैंने जाना था। अतीत ज्ञान इस तरह तो न कल्पना कर सकेगा कि मैं जान रहा हूँ। वह तो अतीत हो गया। उसमें तो यह तो युक्त कहा जा सकता कि मैंने जाना था, पर यह नही कहा जा सकता युक्त अतीत ज्ञानक्षणमें कि वह इस तरहसे जाने कि मैं ही इस समय जान रहा हूं। अतीत ज्ञान क्षण वर्तमान कालमें नही जान सकता, क्योंकि अतीतका तो पहिले ही नाश हो गया जो ज्ञान अतीत हुआ, पहिले हुआ वह तो नष्ट हो गया। अब वह इस प्रकार नही जान सकता कि मैं जान रहा हूँ। यदि कहो कि हम वर्तमान ज्ञानसे उस प्रत्यभिज्ञान को मान लेंगे, मैंने ही जाना था और मैं ही जान रहा हूँ। इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानका करने वाला वर्तमान ज्ञानक्षण रूप प्रमाता है। ऐसा द्वितीय विकल्प यदि मानते हो तो वह ठीक नही है, क्योंकि वह वर्तमान ज्ञानक्षण इस रूपमें जाने सो तो सही है कि मैं ही जान रहा हूँ, किन्तु वह कभी भी इस तरह नही जान सकता कि मैंने ही जाना था। वर्तमान ज्ञानक्षण अतीत कालके सम्बन्धी रूपको नही जान सकता और इसी कारण तीसरा पक्ष भी युक्त नही है, अर्थात् वर्तमान और अतीत दोनों ही ज्ञानक्षण हमने जाना था यों नही जान सकता और हम दोनों जान रहे हैं ऐसा भी नही जान सकता, किन्तु वहाँ एक तो जानेगा कि मैंने जाना था और एक जानेगा कि मैं जान रहा हूं। दो बातें दो कालके ज्ञान एक प्रत्यभिज्ञानको कैसे बना लेंगे ? चौथा पक्ष भी

http://sahjanandvarnishastra.org/

ठीक नही। अर्थात् उनमें कोई संतान है, वह संतान उनके एकत्वको जानता है। यह भी अयुक्त है। और अतीत और वर्तमान ज्ञानक्षणोंको छोड़कर अन्य कोई संतान ही सम्भव नही है क्षणिकवादमें अत्यन्त विविक्त स्वतंत्र भिन्न-भिन्न एक एक समयवर्ती क्षण हुआ करते हैं। तो ज्ञानक्षण भी एक एक समयवर्ती होते हैं उनमें संतान क्या सम्भव है और यदि कल्पित संतान मानोगे कि हम तो कल्पनायें करके मान लेते कि इन ज्ञानक्षणोंमें संतान है तो यों कल्पित संतान बना देनेपर भी उनमें वास्तविक ज्ञातृत्व नही आया। इस संतानने न तो पहिले जाना और न इस समय जान रहा, क्योंकि कल्पित जो कुछ भी होता है वह तो अवस्तु होता है उन क्षणिक ज्ञानक्षणोंमें एक कल्पित संतान माना तो वह तो अवस्तु रूप है। अवस्तुमें ज्ञातापन सम्भव नही होता, क्योंकि ज्ञातापन तो वस्तुका धर्म है। तो इस तरह अतीत ज्ञानक्षणमें, वर्तमान ज्ञानक्षणमें क्षणिकज्ञानोंमें प्रमातापन सम्भव नही है। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा ही प्रमाता है। तब देखो—प्रत्यभिज्ञानसे आत्मा ही तो सिद्ध हुआ। मैंने ही जाना था और अब मैं ही जान रहा हूँ इस तरहका जो अनुसंधानात्मक ज्ञान है उस ज्ञानमें एक आत्मा की ही तो सिद्धि हुई।

परियत्तपूर्वरूपादि विकल्प उठाकर आत्माकी अमान्यताके पोषका प्रयास—अब शंकाकार कहता है कि यह तो बताओ कि हर्ष विषाद आदिक पर्यायों से बँधा हुआ आत्मा क्या अपने पूर्वरूपको छोड़ चुकनेपर उन हर्ष विषाद आदिक पर्यायोंका सम्बन्ध करता है या उन सुख दुःख आदिक पर्यायोंको न छोड़कर ही वह उन पर्यायोंसे सम्बन्धित होता है। यदि कहो कि सुख आदिक पूर्वरूपको छोड़कर जो उसमें पूर्व पर्याय है उसको बिल्कुल छोड़कर यह सुख दुःख आदिक पर्यायोंके साथ सम्बन्धित होता है, तो यह बात यों ठीक नही कि यह तो निरन्वय विनाश हो गया। जिस प्रमाताने अपने पूर्व रूपको छोड़ दिया अब उसका अस्तित्व क्या रहा? क्योंकि जब आत्माने अपना पूर्व रूप छोड़ दिया तब आत्माका अस्तित्व क्या रहा? अवस्था छोड़ दी फिर स्थित रहने वाला कोई रहा ही नही। यदि कहो कि आत्मा पूर्व रूपको न छोड़कर ही सुख आदिक पर्यायोंके साथ सम्बन्धित होता है तो आत्मा अपरिणामी बन गया। जो पूर्व अवस्थामें और उत्तर अवस्थामें दोनोंमें एक सा रहे वह तो अपरिणामी कहलाता है। जब आत्माने पूर्व पर्यायको तो छोड़ा नही और उत्तर पर्यायमें आ गया तो जो पूर्वपर्याय और उत्तर पर्याय दोनोंमें अवस्थित रहे वह तो अपरिणामी कहलाता है। अब उसमें कोई परिणाम ही नही हो सक रहा। अनुमान बनाकर देख लो। जो पदार्थ पूर्व और उत्तर अवस्थाओंमें भिन्न नही हुआ करता, विशेषता नही रखता वह परिणामी नही है। जैसे कि आकाशकी पूर्व अवस्था और आकाशकी उत्तर अवस्था इन दोनोंमें आकाशमें कुछ फर्क आता है क्या? चौथे कालके समय आकाश जिस तरह परिणम रहा था और आज पंचमकालमें जो परिणम रहा है, क्या उन दोनों परिणमनोंमें कुछ भेद है? नही है भेद। तो जब पूर्व और उत्तर अवस्थाओंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विशेषता न होनेसे आकाश अपरिणामी कहलाया तो पूर्व और उत्तर अवस्थाओंमें आत्माका भी विशेष न होनेसे आत्मा भी अपरिणामी कहलाने लगेगा। फिर उसमें हर्ष विषाद सुख दुःख आदिक परिणामोंकी बात कहना बिल्कुल अयुक्त है,

परित्यक्त पूर्वरूपादिके विकल्पसे आत्माकी अमान्यताकी शंकाका समाधान शंकाकारकी शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तुमने बातें तो बहुत कही मगर बिना परीक्षा किए कही। देखो सुख आदिक पर्यायें जिनका अस्तित्व प्रसिद्ध है उन सुख आदिक पर्यायोंके साथ आत्माका सम्बन्ध सही माना गया है। याने सुख दुःख आदिक पर्यायें हुई आत्मासे भिन्न और फिर आत्माका उनमें किया जाय सम्बन्ध ऐसा नही माना है, किन्तु आत्मा ही सुख दुःख आदिक रूप पर्यायोंके रूपसे परिणम जाता है। जैसे कि क्षणिकवादियोंका चित्रज्ञान नील आदिक अनेक आकारके रूपसे परिणम जाता है इसी प्रकार यह एक आत्मा ही हर्ष विषाद आदिक अनेक परिणमनों रूपसे परिणम जाता है। अथवा दूसरा दृष्टान्त देखिये—जैसे विज्ञान स्वको जाननेकी शक्ति और परको जाननेकी शक्ति इन दोनों रूपसे परिणमता है इसी प्रकार आत्मा भी हर्ष विषाद आदिक अनेक पर्यायोंके रूपसे परिणमता है। वहाँ यह व्यवस्था नही है कि सुख दुःख आदिक परिणमन आत्मासे अत्यन्त भिन्न हों और फिर उनमें आत्मा का सम्बन्ध जुटे इस तरहका सम्बन्ध नही होता। आत्मा एक पदार्थ है और वही कभी सुख रूपमे परिणमता है कभी दुःख रूपसे परिणमता है। इस कारण जो दोष दिये गये वे दोष यहाँ नही ठीक बैठते। देखो ना—विज्ञानमें दो प्रकारकी शक्तियाँ हैं। अपनेको ग्रहण करले, पर पदार्थका भी ग्रहण करले, वहाँ ऐसा नही है कि जिस ही शक्तिसे विज्ञानने अपने स्वरूपको जाना उस ही शक्तिसे विज्ञानने पर पदार्थोंको जाना। यदि एक ही शक्तिसे आत्मा दोनोंको जाने तो उन दोनोंमें अर्थात् आत्मा और पदार्थ में फिर भेद न रहेगा अथवा उन सुख और दुःखोंमें परस्पर भेद न रहेगा, क्योंकि जिस रूपसे आत्माका सुख प्राप्त हुआ उस ही रूपसे उस ही शक्तिसे आत्माको दुःख प्राप्त हुआ, फिर सुख और दुःखमें भेद न रहेगा। इससे मानना होगा कि आत्मा एक पदार्थ है और वही सुख दुःख रूपसे परिणमता है।

नानाकारोंमें भी ज्ञानकी एकताके विघातके अभावकी तरह नाना पर्यायोंमें भी आत्माके एकत्वके विघातका अभाव—ऊपर जो एक विज्ञानका उदाहरण दिया गया है कि एक विज्ञान स्वको जाननेकी शक्ति रखता है और परको जाननेकी शक्ति रखता है यों वहां शक्तिभेद है। यों शक्तिभेदकी बात सुनकर यह शङ्का न करना चाहिये कि यदि शक्तिभेद है तो आत्माके ज्ञानमें भी भेद पड़ जायगा। क्यों न शङ्का करनी चाहिए? कि यदि ज्ञानमें भेद मान लिया जाय तब एक ज्ञान स्व और परका ग्राहक नही कहला सकता। ज्ञान तो एक ही है पर शक्तियां दो हैं कि वे स्वका भी ग्रहण करलें और परका भी। जैसे कि दीपक तो एक है, पर उस दीपकमें ऐसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्ति है कि परको भी प्रकाशित करदे और स्वको भी प्रकाशित करले। और, जैसे चित्रज्ञान नीलादिक अनेक पदार्थाकार हैं उन अनेकाकारोंरूपसे परिणमन करके भी जैसे चित्रज्ञानमें एकाकारताका अभाव नहीं मानते शङ्काकार लोग और है भी यह बात कि कोई सा भी ज्ञान हो, वह यदि अनेक पदार्थोंको जानता है तो जाने ! अनेकाकार ग्रहण हो फिर भी ज्ञान एक ही रहता है। तो जैसे चित्रज्ञान नीलादिक अनेक आकाररूपसे परिणमनकर भी उसमें एकाकारता घात नहीं होता। इसी प्रकार सुख दुःख आदिक अनेक क्रियारूपसे परिणमनकर भी आत्माके एकत्वका घात नहीं होता, क्योंकि अनेकाकाररूपसे परिणमनकर भी अपने स्वरूपसे अद्वैतताका उल्लंघन नहीं हो रहा है। वहाँ यह भेद नहीं डाल सकते कि भाई ! चित्रज्ञानमें तो एक साथ एक ही समयमें नीलादिक अनेकाकारके रूपसे परिणमन हो रहा है किंतु यहां एक आत्मामें सुख दुःखआदिक जो अनेक परिणाम होते हैं वे तो एक साथ नहीं हो रहे। वे तो क्रमसे परिणम रहे तो चित्रज्ञानका दृष्टान्त देकर सुख दुःख आदिकमें आत्माके एकत्वकी बात कहनेमें सदृशता तो न आई। उत्तर देते हैं कि देशभेदसे अनेकाकार हो या कालभेदसे अनेकाकार हो, एकताका नियामक देशका अभेद या कालका अभेद नहीं है किन्तु प्रतीति है नियामक। आत्मामें बराबर एकत्वकी प्रतीति हो रही है। चाहे देश कालसे भिन्न वस्तु हो चाहे देश कालसे अभिन्न वस्तु हो। जहाँ ही प्रतीति एकत्व का समर्थन करे वहाँ एकत्व मानना ही चाहिए और चाहे देश एक ही हो, चाहे समय एक ही हो, जहाँ प्रतीति नानात्वको कबूल करे वहाँ नानापन मानना ही चाहिए। यहाँ एक आत्मामें 'मैं सुखी था, मैं अब दुःखी हूं' यों अभेद रूपसे जो अनुसंधान होता है, प्रत्यभिज्ञान बन रहा है उससे बराबर एकत्वकी प्रतीति चल रही है।

प्रमाण प्रतिपन्न पदार्थोंमें शंका बनानेका प्रयास—शंकाकार कहता है कि सर्वरूपसे यदि अभेद बन जाय तब फिर उस जगह अभेदसे उल्टी बात कैसे कही जा सकेगी ? अर्थात् सर्वात्मक रूपसे अभेद बननेपर भेद नहीं कहा जा सकता है क्यों कि एक समयमें विधि और प्रतिषेध जो कि परस्पर विरुद्ध हैं बताये नहीं जा सकते। इस सम्बधमें अनुमान भी है कि जहाँ अभेद होता है वहाँ उससे उल्टी बात अर्थात् भेद नहीं हो सकता। जैसे कि उन्ही पर्यायोंके द्रव्यका जो प्रति नियत असाधारण आत्मास्वरूप है उसके स्वभावसे भेद नहीं है और यदि द्रव्य व पर्यायमें अभेद है तो यह बतलाओ कि पर्यायोंसे द्रव्यका अभेद है या द्रव्यसे पर्यायों का अभेद है। यहाँ शंकाकारकी ही बात बतायी जा रही कि पर्याय और द्रव्यमें एकपना मान रहे हो तो यह बतलाओ कि पर्यायोंमें द्रव्यको अभेद कर दिया या द्रव्यमें पर्यायोंको अभेद कर दिया ? यदि कहो कि पर्यायोंसे द्रव्यका अभेद बनाया है अर्थात् पर्यायें मुख्य हैं और उसमें द्रव्यको विलीन कराया है तो इसका अर्थ यह होगा कि पर्याय अनेक होती हैं इस तरह द्रव्य भी अनेक बन जायेंगे क्योंकि जो जिस अभिन्न रूप होगा वह उस हीके ढंगसे ही होगा। तो जैसा पर्यायका स्वरूप है वैसा ही द्रव्यका स्वरूप बन जायगा। पर्यायें अनेक हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्षणिक हैं तो द्रव्य भी अनेक हो गए, क्षणिक हो गए। यदि कहो कि द्रव्यसे पर्यायों का अभेद किया जाता है तो द्रव्य हुआ यहां मुख्य और पर्यायोंको किया विलीन, तो जो द्रव्यकी खासियत है वही पर्यायोंकी हो जायगी। द्रव्य है एक तो पर्याय भी एक ही रहेगी, क्योंकि अब यहाँ कहाँ है द्रव्यसे पर्यायोंका अभेद। और, द्रव्य है अनुगत स्वरूप, सबमें रहने वाला एक। और, उसमें जो कुछ भी अभिन्न बनेगा वह अनुरागात्मक ही तो रहा। उस अनुगतात्मक स्वरूपसे अभिन्न बतला रहे हो सुखदु:ख आदिक पर्यायोंको तो वे पर्यायें भी द्रव्यकी तरह केवल एक रह जायेंगी। इस तरह शङ्काकार ने उन दोनोंको नाना सिद्ध किया और क्षणक्षणवर्ती जो हर्ष विषाद आदिक क्षण हैं उनसे अलग कोई नित्य आत्मा हो उसका खंडन किया।

प्रमाणप्रतिपन्न पदार्थोंमें कुप्रश्न उठानेमें अविवेकताका प्रकाश—अब समाधान करते हैं कि इस तरहके खोटे प्रश्न उठानेका यहां अवकाश ही नहीं है। जो वस्तुस्वरूप प्रमाणसे समझा गया है उसमें इस तरहके खोटे अटपट प्रश्न नहीं उठाये जा सकते। अगर इस तरह प्रश्न उठाने लगोगे तो कुछसे भी कुछ कहा जा सकता है। जैसे कोई कहे कि यह मदोन्मत्त हाथी लोगोंको मारता चला जा रहा है। वहां प्रश्न कर दिया जाय कि क्या यह हाथी सन्निहित पुरुषको मार रहा है या दूर रहने वाले पुरुषको मार रहा है? यदि सन्निहित पुरुषको मार रहा है तो हाथीपर जो महावत बैठा है हाँकने वाला उसे भी मारनेका प्रसङ्ग आ जायगा, पर हाथी महावतको तो नहीं मार रहा। और कहो कि दूर वालेको मारता है तो दूर तो सारी दुनिया है। सारी दुनियाको मार डालनेका प्रसङ्ग आ जायगा। तो यों किसी भी बात में कुछसे कुछ प्रश्न उठाकर उसे असिद्ध किया जा सकता है एक ऐसा कथानक है कि कहीं कोई तेली अपने कोल्हूमें एक बैलको जोते हुए था। वह बैल कोल्हुके चक्कर काट रहा था। तेलीने सोचा कि हमारा व्यर्थ समय जाता है ऐसा करें कि बैलके गलेमें घण्टी बांधदें। जब तक यह बैल चलेगा तब तक घण्टी बजेगी। जब तक घण्टी सुन पड़ेगी तब तक और काम हम करते रहेंगे, जहाँ घण्टी बंद हो जायगी वहां हम समझ लेंगे कि बैल खड़ा हो गया और उसे आकर हाँक जायेंगे। यों बैलके गलेमें घण्टी बाँधकर बैलको चलाकर अपने काममें लग गया। इतनेमें कोई वकील आया। वकीलने पूछा कि यह क्या कर रहे हो? तेली बोला कि बैलके गलेमें घण्टी बांध दी है, जब तक घण्टी बजती रहेगी तब तक समझेंगे कि बैल चल रहा है और जब घण्टी बन्द हो जायगी तो समझ लेंगे कि बैल खड़ा हो गया, फिर आकर हाँक देंगे। वकील बोला कि यदि यह बैल खड़े ही खड़े रहकर घण्टी हिलाता रहे तो तुम धोखा खा जावोगे। तब तेली बोला कि जब हमारा बैल ऐसा वकील बन जायगा, तब दूसरी बात सोचेंगे। तो ऐसा खोटा प्रश्न उठाना जिसकी सम्भावना भी नहीं और कुप्रश्न उठाकर किसी भी कामको असिद्ध कर देना यह अव्यवहार्य बात है। आत्माके संबंध में सबको यह प्रतीति है कि यह ही मैं हूं। जो पहिले था सो अब हूं। और वही आगे

रहूँगा। तो हमने अपने आपमें भी एकत्वको प्रतीतिमें लिया और बाहरमें जो दिखने वाले पदार्थ हैं—तखत, चौकी, भींट दरी आदिक ये सब स्थिर मालूम हो रहे हैं। वे ही हैं और उत्पादव्ययध्रौव्य भी समझमें आ रहा है। यह समझमें आने योग्य जब परिवर्तित पर्याय बनती है तब तो स्पष्ट समझ होती है कि यह नवीन अवस्थामें आ गया और पुरानी अवस्थाका व्यय हो गया। और न भी समझमें आये तो भी यह बात युक्तिगम्य है कि क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पर्यायें उत्पन्न होती हैं और पुरानी पर्यायें विलीन होती रहती हैं। चीज वही है, वही एक है, इन पदार्थोंमें एकत्व भी प्रमाण प्रतिपन्न है। तो प्रमाणसे जाने हुए, सिद्ध हुए पदार्थोंमें खोटे प्रश्न उठाना यह हितमार्गके बिल्कुल प्रतिकूल है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थ स्वीकार करनेपर ही व्यवहार और मोक्ष मार्गकी सिद्धि—पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है केवल सामान्य कुछ तत्त्व नहीं सामान्यरहित विशेष कुछ हो ही नहीं सकता। कुछ भी हो, सत् तो होगा और जो सत् है वह एकदम अपना अभाव कैसे कर सकता है? प्रतीतिसे बिल्कुल बाहर बात है कि कोई पदार्थ सत् हो और वह अपना समूल नाश कर लेता है। तो जो भी पदार्थ होता है वह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप होता है, और उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप पदार्थके मानने पर ही हमारा लोकव्यवहार बनता है और मोक्षमार्गकी भी सिद्धि होती है। जितनी भी व्यवहारकी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं वे सब उत्पादव्ययध्रौव्यके आधारपर चल रही हैं और मोक्षमार्गमें भी यदि एक आत्मा नहीं है, क्षण क्षणमें नये-नये आत्मा होते हैं तो मोक्षमार्गकी क्या सिद्धि होगी? किसको सिद्ध कराना? जो आत्मा तपश्चरण कर गया वह एक क्षणमें मिट गया और एक क्षणमें तपश्चरण भी क्या किया। मान लो किया तपश्चरण, तो नया आत्मा मोक्ष पायगा। तो ऐसे ही किसको पड़ी हैं कि हम तो अनेक प्रकारसे श्रम करें और हम मिट जायेंगे, कोई दूसरा भोगेगा। मुक्तिकी कोई स्थिति ही नहीं बन सकती है, उनके सिद्धान्तमें तो आत्माको स्वीकार नहीं करते, यही मैं बद्ध हुआ और यही मैं मुक्त हो गया। मुझे मुक्त होनेकी आवश्यकता है क्योंकि संसारमें जन्म-मरणका बड़ा कठिन सङ्कट हैं। इससे छूटनेमें ही मेरी भलाई है। इस प्रकारका विचार जो कोई एक आत्मा करता है वही प्रयत्न करे और बद्ध मलिन इस आत्माको मुक्ति प्राप्त हो तो यह तो उसके लिए कर्तव्यकी बात है पर नवीन-नवीन आत्मा बनें और उनमें किसी अन्यके मुक्तिकी कल्पना की जाय तो वह कल्पना ही है।

संतति मानकर भी नैरात्म्यसिद्धिकी असफलता—यों भी सोचना कि उस आत्माकी संततिका मोक्ष हो जायगा व्यर्थका श्रम है। अरे, संतति क्या? क्षणिकवादमें संततिका कुछ भी अर्थ नहीं। यहां संतति शब्द तो क्षणिकवादमें इस प्रयोग के लिए है कि कहीं नित्यत्वके विरोधमें जवाब न दे सके तो उसके लिए रिजर्व शब्द क्या हो? संतति तो अवास्तविक है। तो अवस्तुको मोक्ष क्या दिलाना? जो बँधा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हो जो स्वयं मलिन हो उसको तो मुक्तिकी आवश्यकता है। जो आत्माका एकत्व माने बिना कहीं हमारी कुछ सिद्धि नही हो सकती। इस तरहके प्रश्न उठाकर अपने कार्यमें भी अनुत्साह कर देना प्रायोग्य नही है फिर तो हम चित्रज्ञानमें भी प्रश्न उठा सकते हैं। बतलावो चित्रज्ञानमें जो नीलादिक नाना आकार आये हैं वे क्या उस ज्ञानसे सर्वथा अभिन्न है ? यदि सर्वथा अभिन्न है तो चित्रज्ञान एक है तो आकार भी एक बन जायगा। यदि चित्रज्ञानका आकारोंसे अभेद है तो आकार हैं नाना और आकारसे चित्रज्ञानका अभेद है तो जैसे आकार नाना है वैसे ही चित्रज्ञान भी नाना बन पड़ेगे। तो इस तरहके खोटे प्रश्न तो किसी भी कार्य व्यवस्थाको मिटानेके लिए दोंद सकते हैं। और, फिर पदार्थ क्षणिक है यह बात तो सिद्ध हो ही नही सकती है। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। इसमें जो सामान्य तत्त्व है किसी भी एक पदार्थमें वह ऊर्द्धता सामान्य रूप है अर्थात् त्रैकालिक एक है और जो इसमें विशेष है वह ऊर्द्धता विशेषरूप है अर्थात् इसमें काल भेदसे एक नवीन-नवीन पर्यायकी बात बनती है। यों प्रत्येक पदार्थ त्रिकालवर्ती है और प्रतिक्षणमें नवीन-नवीन पर्यायको उत्पन्न करने वाला और पूर्व पूर्व पर्यायोंको विलीन करने वाला है। इस तरह पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक होता है और ऐसे ही पदार्थके प्रमाणका विषयभूत माना गया है अब इस समय व्यतिरेक विशेषके व्याख्यानके प्रसंगमें सर्वप्रथम व्यतिरेक विशेषका लक्षण और उसके उदाहरणमें सूत्र कहते हैं।

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेकः गोमहिषादिवत् ॥ ४-१० ॥

व्यतिरेक विशेषका विवरण—पदार्थान्तरमें प्राप्त जो विसदृश परिणमन है उसे व्यतिरेक कहते हैं, जैसे कि गाय भैंस आदिकमें जो परस्पर विसदृश धर्म है वह व्यतिरेक कहलाता है। अर्थान्तरका अर्थ है कि एक पदार्थसे भिन्न पदार्थ। तो अर्थान्तर के कहनेमें सजातीय अर्थान्तर भी आ जाता है और विजातीय अर्थान्तर भी आ जाता है। जैसे ५० गायें खड़ी हुई हैं तो उनमें एक गायसे दूसरी गायमें भी व्यतिरेक विशेष बता सकते हैं। और गायोंकी अपेक्षासे भैंस आदिकमें भी व्यतिरेक विशेष बता सकते हैं उन अर्थान्तरोंमें जो विसदृश धर्म पाया जाता है उसका नाम है व्यतिरेक। जैसे कि अनेक गायोंमें काली पीली, चितकबरी, खंडी मुंडो आदिक नाना प्रकारके विसदृश परिणमन जो कहे जाते हैं वे व्यतिरेक विशेष हैं। व्यतिरेक विशेषसे यह जानकारी होती है कि यह वह नही है, यह उससे भिन्न है, तब जिसका प्रयोजन हो उसमें प्रवृत्ति करलें और शेषसे निवृत्ति करलें, ऐसे ही भैंस भैंसमें परस्पर विसदृश परिणमन हो सकता है। जैसे कोई भैंस मोटी है, कोई दुर्बल है। कोई कठिन सींग वाली है, कोई थोड़ी जगह घेरने वाली सींगसे सहित है तो उनमें यह विशाल है, यह विसंकट है आदिक विसदृश परिणाम बनाना सो व्यतिरेक विशेष है। ये तो हुए सजातीयमें व्यतिरेके विशेष। अब गाय अश्व आदिक विजातीय बहुतसे पदार्थ हैं उनमें परस्परका

असाधारण स्वरूप बताना और उसको लखकर एक दूसरेसे भिन्न समझना यह विजा-नीयोंके सम्बन्धमें व्यतिरेक विशेष है। तो इससे पहिले सामान्य स्वरूपका बहुत वर्णन किया जा चुका था और अब तक विशेषका भी पर्याप्त वर्णन किया गया है तो ऐसा सामान्य और विशेष जिसके स्वरूप हों उस पदार्थको कहते हैं सामान्य विशेषात्मक। ऐसा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है केवल सामान्य प्रमाणका विषय नहीं, केवल विशेष प्रमाणका विषय नहीं, और स्वतंत्र होकर सामान्य भी और विशेष भी प्रमाणके विषय नहीं हैं। अर्थात् कोई प्रमाणका विषय तो मानें दोनोंको (सामान्य और विशेषको) किन्तु घट पटकी तरह वे दोनों अलग स्वतंत्र पदार्थ हैं और फिर उनको प्रमाणका विषय माना जाय सो भी नहीं बनता है, क्योंकि न तो किसीके ज्ञानमें केवल सामान्य आता है, न किसीके ज्ञानमें केवल विशेष आता है और न किसीके ज्ञानमें स्वतंत्र अलग अलग सामान्य और विशेष भी आते हैं। भले ही प्रयोजन वशसे किसीकी दृष्टिमें सामान्यकी प्रधानता है परन्तु उसके साथ यदि विशेष न हो तो सामान्यका ज्ञान कभी हो ही नहीं सकता, इसी प्रकार किसी मनुष्यकी प्रयोजनवश विशेषपर मुख्य दृष्टि होती किन्तु यदि सामान्य रहित विशेष मानें तो वह भी दृष्टिमें नहीं आ सकता। तो न केवल सामान्यका प्रतिभास है, न केवल विशेषका प्रतिभास है और न स्वतंत्र दोनोंका प्रतिभास है किन्तु सामान्य विशेषात्मक पदार्थका प्रतिभास हुआ करता है। उस सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें प्रयोजन वश जिस धर्म की मुख्यता होती है उस धर्मका ज्ञान होता है और उस समय यदि प्रमाणसे प्रतिपन्न सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें से सामान्यकी ही दृष्टि हो तो वह नय कहलाता है। अथवा विशेषका दृष्टि हो तो वह भी नय कहलाता है, किन्तु कोई पुरुष सामान्य विशेषात्मक पदार्थ नहीं मानें और केवल सामान्य ही मानें तो वह भी नहीं है, प्रमाण तो है ही क्या ? इसी प्रकार केवल स्वतंत्र मात्र सामान्य व विशेष ही मानें तो वह भी नय नहीं है। नय हुआ करता है प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमें प्रयोजनवश किसी एक धर्मको प्रधानतासे जानना। इस तरह पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकता प्रमाण प्रसिद्ध है।

पदार्थमें सामान्यविशेषात्मकताको असिद्ध करके विशेषवादके समर्थन का शंकाकारका प्रयास— अब यहाँपर वैशेषिक शंका करता है कि पदार्थमें सामान्य विशेषात्मकता बताना अयुक्त है क्योंकि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक रूपसे जाने जायें ऐसा जानने वाला कोई प्रमाण नहीं है, और फिर सामान्याकार और विशेषाकार इन दोनोंमें परस्पर प्रतिभास-भेद है। सामान्याकारका प्रतिभास और ढंगका है। विशेषाकारका प्रतिभास और ढंगका है इस कारण सामान्य और विशेषमें तो अत्यन्त भेद है। देखो ना—घड़ा और कपड़ा रखे हैं तो घड़ेका आकार कपड़ेके आकारसे अत्यंत जुदा है और उनका प्रतिभास भी न्यारे-न्यारे ढंगका है। घड़ेको जब जानते हैं तो क्या कपड़ा जिस तरह जाना जाता उस तरहसे जान रहे हैं अथवा कपड़ेको जब जानते

हैं तो घड़ेको जिस तरहसे जान जाया करते हैं उस तरहसे जान रहे हैं क्या ? घड़ेको जाननेमें घटाकार और भाँति और कपड़ेको जाननेमें पटाकार और भांति है। तो जब घट और पटमें प्रतिभास भेद है तो देखो ना–बिल्कुल न्यारे–न्यारे ये दोनों पदार्थ हैं इसी प्रकार जब सामान्याकार प्रतिभास बिल्कुल अलग प्रतिभास है और विशेषाकार प्रतिभास बिल्कुल अलग है तो प्रतिभास भेद होनेसे इन दोनोंमें भी अत्यन्त भेद है। फिर पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है ऐसा कहना कैसे युक्तिसंगत हो सकता है ? अनुमान प्रमाण भी कहता है कि सामान्याकार और विशेषाकार ये दोनों परस्परमें अत्यन्त जुदे हैं, क्योंकि भिन्न–भिन्न ज्ञानोंके द्वारा ग्राह्य होनेसे। जैसे घट और पट भिन्न–भिन्न ज्ञानोंसे जाने जाते हैं तो ये दोनों अत्यन्त जुदे हैं ना। जब घट और पटमें अत्यन्त भेद पया जाता तब ही तो इससे भिन्न ज्ञानोंके द्वारा ग्राह्यता है। भिन्न होनेके कारण ही ये सब पदार्थ भिन्न–भिन्न ज्ञानोंके द्वारा ग्रहणमें आते हैं। तो इसी प्रकार जब सामान्याकार और विशेषाकारका भिन्न–भिन्न रूपसे प्रतिभास हो रहा है तो कैसे नहो इसमें अत्यन्त भेद सिद्ध होगा ? यदि भिन्न–भिन्न प्रतिभास होनेसे सामान्याकार और विशेषाकारमें अत्यन्त भेद न माना जाय तो भिन्न–भिन्न प्रतिभास होनेपर भी घड़ेमें और कपड़ेमें फिर भेद न माना जायगा तब फिर घड़ेका काम कपड़ेसे करलो, कपड़ेका काम घड़ेसे करलो। कुर्ता पहिनना है तो घड़ा ही पहिन लो ना ? प्रतिभास होनेपर भी जब घड़ा और कपड़ा ये दोनों न्यारे न रहे तो फिर किसीसे भी यह अर्थ क्रिया हो जाय, इससे सिद्ध है कि प्रतिभास भेद होनेसे घट और पट परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। ऐसे ही प्रतिभास भेद होनेसे सामान्याकार और विशेषाकार ये दोनों परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। देखो प्रतिभास भेद हो और विरुद्ध धर्मका समावेश हो इनसे अलावा और कोई तीसरी बात ऐसी नहीं है जो घट और पटमें भेद सिद्ध करनेका कारण बन सके। वह घड़ा न्यारा है, यह कपड़ा न्यारा है, ऐसा जाननेके साधन ये ही दो हैं. एक तो यह कि उनके ज्ञान अलग–अलग हो रहे हैं दूसरे यह कि कपड़ेका धर्म और तरह का है घड़ेका धर्म और तरहका है। तो ये दोनों बातें सामान्याकार और विशेषाकार इन दोनोंमें भी पायी जा रही हैं। देखा ना–जब सामान्याकारका ज्ञान हो रहा है तब और तरहका प्रतिभास है, जब विशेषाकारका ज्ञान किया जाता है तब और तरहका प्रतिभास है और सामान्यमें तो है अनुगतपना और विशेषमें है व्यावृत्तपना तो देखो धर्म भी विरुद्ध–विरुद्ध हो गए ना तिसपर भी आप सामान्याकार और विशेषाकारको जुदे–जुदे नहीं मानते तो यह तो अंधेरकी बात है।

प्रतिभासभेद अथवा भिन्नप्रमाणग्राह्यत्व होनेसे अवयव अवयवीमें, गुणगुणीमें क्रिया क्रियावानमें, सामान्य विशेषणमें भेद माननेकी आशङ्का— प्रतिभासभेद और विरुद्धधर्मका अध्यास ये अवयव और अवयवीमें पाये जाते हैं। इससे अवयव और अवयवी भी भिन्न–भिन्न चीज है। अवयव अवयवीका अर्थ है कि जहाँ घड़ा है पूरा एक घड़ा उसका नाम है अवयवी और उस घड़ेमें जो छोटे–छोटे अंश हैं,

Version 1

मिट्टीके कण हैं वे हैं अवयव। तो अवयव अवयवी भी एक नहीं है, अवयव भिन्न पदार्थ है अवयवी भिन्न पदार्थ है, क्योंकि प्रतिभासभेद है। अवयवका ज्ञान जिस सकल में होता है उससे भिन्न सकल है अवयवीके ज्ञानमें और अवयवीका लक्षण और है, अवयवका लक्षण और है। इसी तरह गुण और गुणीमें अत्यन्त भेद है। जैसे कि कुछ लोग मानते हैं कि आत्मा तो गुणी है और ज्ञानदर्शन आदिक गुण हैं तो देखो! जब गुणोंका ज्ञान किया जाता है तब उस समय ज्ञानकी मुद्रा और ढङ्गकी है, और जब आत्माका, गुणीका ज्ञान किया जाता है तब ज्ञानकी मुद्रा और ढङ्गकी है। लक्षण भी जुदे हैं। तब गुण और गुणीमें भी अत्यन्त भेद है। इसी तरह क्रिया और क्रियावानमें भी अत्यन्त भेद है। मनुष्य चलता है तो मनुष्यकी गति यह तो है क्रिया और मनुष्य चलने वाला यह है गतिवान! तो गतिवानका लक्षण और है गतिका लक्षण और है, चलना—इसका जब ज्ञान किया जाता है तो उस समय प्रतिभासकी मुद्रा और प्रकार की बनती है और चलने वाला इसको जब ज्ञानमें लिया जाता है तो उसके प्रतिभासकी मुद्रा और तरहकी है। तब क्रिया और क्रियावानमें भी अत्यन्त भिन्नता है। इसी तरह सामान्य और विशेषमें भी प्रतिभासभेद पाया जाता है, विरुद्ध धर्मका समावेश पाया जाता है, इस कारण इसमें भी अत्यन्त भेद है। तब कोई भी पदार्थ सामान्यविशेषात्मक बन ही नहीं सकता। देखो ना! जैसे तंतु और पट। तंतु मायने सूत और पट मायने कपड़ा। जब कपड़ेका ज्ञान होता है तब वह ज्ञान सूतके ज्ञानके समय जो प्रतिभास होता है उससे जुदा प्रतिभास है ना? और जब सूतका प्रतिभास होता है तब कपड़ेके प्रतिभाससे विलक्षण है ना? तब यह सिद्ध हुआ ना कि पकड़ा जुदा है सूत जुदा है। तो इस तरहसे सूतमें ही देखलो! सूतमें रूप है, किन्तु जब रूपका हम ज्ञान करते हैं तो उस समयकी प्रतिभासमुद्रा न्यारी है और जब हम सूतका ज्ञान करते हैं तो उस समय उसकी प्रतिभास मुद्रा न्यारी है। तब सूतका रूप बिल्कुल अलग है। यों वैशेषिक शङ्काकार सामान्य और विशेषमें अत्यन्त भेद सिद्ध करना चाहता है।

पदार्थके अनेक धर्मात्मकत्वकी सिद्धि—अब इसके समाधानमें कह रहे हैं शङ्काकारने जो यह कहा है कि पदार्थका सामान्यविशेषात्मक रूपसे कोई ज्ञान करे, ऐसा ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं है, तो यह बात असिद्ध है। पदार्थ वास्तवमें अनेकधर्मात्मक है और इसका ज्ञान करने वाला सम्यक् प्रमाण है। अनुमान प्रयोग करके देख लीजिये! पदार्थ वास्तविक अनेक धर्मात्मक है, क्योंकि परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियावोंको करने वाला होनेसे। कोई एक पदार्थ यदि परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियावोंको करे तो उससे सिद्ध होता है कि यह अनेक धर्मस्वरूप है। जैसे कोई एक देवदत्त नामका पुरुष पिता पुत्र, भा , भानजा आदिक अनेक ढङ्गकी अर्थ क्रियावोंको करने वाला है, उसमें ये अनेक बातें पायी जाती हैं और उस ही प्रकारसे उसके सम्बन्धीजन उससे व्यवहार करते हैं, इस कारण देवदत्त अनेक धर्मात्मक हुआ कि नहीं? उसमें पितृत्व भी है, पुत्रत्व भी है, भ्रातृत्व भी है आदिक अनेक धर्म पाये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जाते हैं। यह हेतु असिद्ध नही है अर्थात् प्रकृत पक्ष है आत्मा, जिसमें हम अनेक धर्मात्मकताको सिद्ध कर रहे हैं। सो आत्मामें हेतु बराबर पाया जा रहा है अर्थात् यह आत्मा अनेक अर्थक्रियावोंको करने वाला है। देखो ना ! यह आत्मा मनोज्ञ स्त्रीका निरीक्षण करे, स्पर्श करे, सुन्दर ध्वनियोंको सुने, बहुत स्वादिष्ट पदार्थ खाये, कपूर आदिककी गंधको ले, प्रिय वचनोच्चारण करे, यहां वहां डोलता फिरे, जहां चाहे बैठ जाये, हर्षविषाद करे, कभी अच्छा ज्ञान करे, कभी खोटा ज्ञान करे, देखोना ! परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियावोंको इस आत्माने किया है। यह क्या आप सबके प्रत्यक्षमें जाना नही जा रहा है ? तब आत्मा अनेक धर्मात्मक है, इसमें संशयकी कौनसी बात है ? ये घटपट आदिक पदार्थ ये भी तो परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियाओंको करते हुए प्रत्यक्षसे प्रतीतिमें आ रहे हैं। प्रथम तो देखो ! घट पट आदिक परस्पर अपने प्रदेशादिकको अपेक्षा सदृशता विशदृशता आदिकके ज्ञानोंको उत्पन्न कर रहे हैं, यह घट स्थिर हो गया, घट जलमें चला गया, घटने जल धारण कर लिया। देखो ! कितनी अर्थक्रियायें उसमें पायी जाती हैं, तब घट अनेक धर्मात्मक हुआ ना ! और यहां जो दृष्टान्त दिया गया है, उसमें भी साध्य साधन बराबर पाये जा रहे हैं, सबमें वास्तविक अनेक विलक्षण अर्थक्रियायें पाई जाती और अनेक धर्म भी पाये जाते। इस से पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, यह प्रत्यक्षसे ही जाना जा रहा है, उसका कैसे निराकरण किया जा सकता है ?

भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व होनेसे धर्ममें अभेदकी असिद्धिकी शंकाका समर्थन व समाधान—शंकाकार कहता है कि यद्यपि किसी भी धर्मीमें अर्थात् पदार्थमें अनेक धर्मोंका सद्भाव सिद्ध है, जैसे कि ऊपर बताया गया है कि एक ही आत्मा कितनी ही अर्थ क्रियायें करता है. एक ही घटमें कितनी प्रकारकी अर्थ क्रियायें होती हैं यों वस्तुमें वस्तुगत् अनेक धर्मोंका सद्भाव सिद्ध है किन्तु वे सब धर्म भिन्न-भिन्न प्रमाणों के द्वारा ग्रहणमें आते हैं, इस कारण धर्म और धर्मीमें भेद है अथवा धर्म और धर्मी ये भिन्न-भिन्न प्रमाणोंके द्वारा ग्रहणमें आते हैं—इस कारण धर्म और धर्मीमें तादात्म्य सम्बन्ध सिद्ध नही हो सकता। उत्तर देते हैं कि यह भी अयुक्त बात है। तुम्हारे अनुमानमें हेतु क्या है ? भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व सो यह हेतु सदोष है। शंकाकारने अनुमान बनाया था कि धर्म और धर्मी जुदे-जुदे हैं क्योंकि भिन्न प्रमाणों द्वारा ग्राह्य होनेसे। तो यह जो हेतु है भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व इसमें अनैकान्तिक दोष आता है, अर्थात् भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व होनेपर भी पदार्थोंमें एकता पायी जाती है, और कहीं भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व नही भी है तो भी उनमें अनेकता पायी जाती है। तो हेतु निर्दोष नही है। देखो ना एक ही आत्मा प्रत्यक्षसे भी जाना जाता है और अनुमानसे भी जाना जाता है। मैं सुखी हू दु:खी हूँ इस प्रकारका जो स्वसम्वेदन ज्ञान है यह तो हुआ प्रत्यक्ष। इस प्रत्यक्षसे भी आत्माका ग्रहण होना और इसमें आत्मा है क्योंकि वचनालाप आदिक व्यवहार होनेसे, इस अनुमानसे भी आत्मा जाना गया। तो एक ही आत्मा देखो-भिन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाणोंके द्वारा ग्राह्य हुआ। प्रत्यक्षसे भी ग्राह्य हुआ अनुमानसे भी ग्राह्य हुआ, फिर भी आत्मा एक है। हेतु तो पाया गया "भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य होनेसे" पर आत्मा भिन्न-भिन्न है यह साध्य नहीं पाया गया। आत्मा वही एक है और अनेक प्रमाणोंसे ग्रहण किया गया तो अनेक प्रमाणोंसे ग्रहण किया जानेके कारण पदार्थोंमें भेद ही मानना चाहिए, यह बात नहीं होती। दूसरी बात देखो। दूर देशमें रहने वाले जो लोग हैं वे बहुत दूरसे देखते हैं पहाड़पर या किसी लम्बी सड़कपर तो कोई सा भी एक वृक्ष अस्पष्ट दिखता है और पासमें पहुँचनेपर स्पष्ट दिखता है तो देखिये कि वृक्ष तो वह एक ही है। पहिले तो जाना गया अस्पष्ट ज्ञान द्वारा, बादमें जाना गया स्पष्ट ज्ञान द्वारा तो भिन्न प्रमाणोंसे ग्राह्य हुआ ना, तिसपर भी वृक्ष अनेक नहीं हो गए। भिन्न प्रमाणसे ग्राह्य होनेपर भी विषय अनेक हो जायें, भिन्न हो जायें सो बात नहीं है। एक ही वस्तुको अनेक प्रमाणों द्वारा जाना जाता है, इसी प्रकार धर्म और धर्मी ये भिन्न प्रमाणों द्वारा ग्राह्य हैं। जैसे कि एक गुण पर्यायवान समूचे आत्माको जिस ज्ञानने जाना उस ज्ञानकी मुद्रा अलग है और उस आत्माके ज्ञान दर्शन आदिक गुणों का ज्ञान जानता है तो उन ज्ञानोंकी मुद्रा जुदी है अर्थात् धर्म अन्य प्रमाणोंसे जाने गए और धर्मी अन्य ज्ञानसे जाने गए, यों भिन्न प्रमाणोंसे ग्राह्य होनेपर भी धर्म और धर्मीमें अत्यन्त भिन्नता नहीं है कि वे अनेक पदार्थ हो जावें।

स्पष्टास्पष्ट प्रतिभासभेद होनेपर भी अर्थान्तरविषयताका अनियम—शंकाकार कहता है कि भिन्न प्रमाणों द्वारा ग्राह्य होनेपर भी विषय एक हो सकता है, इसकी सिद्धिमें जो वृक्षका दृष्टान्त दिया है कि वृक्ष दूरसे पहिले अस्पष्ट ज्ञान द्वारा ग्राह्य है पश्चात् स्पष्ट ज्ञान द्वारा ग्राह्य है तो देखो भिन्न प्रमाणग्राह्य होनेपर भी वृक्ष एक है। ऐसा दृष्टान्त देना गलत है क्योंकि वहाँपर भी ज्ञानके भेदसे विषयमें भेद पाया जाता है। पहिले समयमें जो ज्ञान उत्पन्न हुआ उसमें तो खाली ऊँचाई सी दीखी। भिन्न-भिन्न शाखायें तो नजर नहीं आती। दूरसे जो ज्ञान किया गया है उस अस्पष्ट ज्ञानमें केवल ऊर्ध्वता ज्ञानमें आयी। और जब पास गया तब जो ज्ञान हुआ वह स्पष्ट ज्ञान हुआ। उसमें शाखा आदिक भिन्न-भिन्न पदार्थ ज्ञात हुए, तो वहाँ एक विषय कहाँ रहा? पहिले जाना ऊँचा ऊँचापन बादमें जाना शाखा आदिक तो पदार्थ तो एक न रहा। इस कारण जो दृष्टान्त दिया है वह दृष्टान्त सही नहीं है। समाधान करते हैं कि इस तरहसे यदि वहाँ विषय भेद मान लिया जाय कि भाई पहिले स्पष्ट ज्ञानसे तो और कुछ जाना, फिर स्पष्ट ज्ञानसे दूसरा पदार्थ जाना, इस तरह यदि विषय भेद मान लिया जाता है तब फिर उस सम्बन्धमें एकत्वका अध्यवसाय (ज्ञान) न होना चाहिए कि जिसको मैंने दूर खड़े होकर देखा था उस ही को मैं अब यहाँ पाससे देख रहा हूँ ऐसा एकत्वका ज्ञान होता है ना। और अब मान रहे हो तुम विषय भेद, तो इस तरहका एकत्वका ज्ञान न होना चाहिए। यह उत्तर ज्ञानके सम्बन्धमें, शाखा आदिक भिन्न-भिन्न विशेषणोंके साथ ज्ञान करनेके सम्बन्धमें यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जान रहा है कि देखो इस ही को मैंने दूरसे यों देखा था, अब इस ही को मैं यहाँ यों देख रहा हूं तो इसीको देख रहा हूं, ऐसा जो बोध हो रहा है उससे तो यह जाहिर है ना कि एकको ही जाना था पहिले और उसको ही जाना है अब। विषयभेद कहां रहा ? हां यह बात जरूर है कि अस्पष्ट प्रतिभासमें तो सामान्य विषयपना हुआ करता है और स्पष्ट प्रतिभासमें विषय विशेष हुआ करता है। सो स्पष्टप्रति भास और अस्पष्ट प्रतिभास यह है इन दोनोंका भिन्न विषय यों तो कहा जा सकता है कि दूरसे तो सामान्य बोध हुआ और पासमें जाकर विशेष बोध हुआ, मगर चीज वही जानी गई जो दूरसे जानी जा रही थी। दूरसे उस ही वस्तुको सामान्यरूपसे जान रहे थे और पासमें उस ही वस्तुको विशेषरूपसे जाना जा रहा है, लेकिन चीज तो वहीं जानी गई। विषयभेद कहां रहा ? तब तुम्हारा जो प्रयोग है कि जो भिन्न प्रमाणग्राह्य है वह भिन्न ही होता, अनेक ही होता. यह बात तो सिद्ध नहीं होती।

प्रतिभासभेदमें भी विषयके कथंचित् भेदाभेदकी प्रसिद्धि – अब शंकाकार कहता है को बात यहाँ ऐसी है कि वृक्ष की अपेक्षा तो पूर्वज्ञानमें और उत्तर ज्ञान में विषय एक रहा अर्थात् दूरसे भी जाना था तो वृक्षको ही जाना था। पाससे जाना है तो वृक्षको ही जाना जा रहा है। तो इस तरह तो एक विषयपना है मगर सामान्य और विशेषकी अपेक्षा तो विषयभेद हुआ ना, कि बहुत दूर खड़े होकर सामान्यको जाना था, अब पासमें आकर विशेषको जाना जा रहा है। इस शङ्काका समाधान करते हैं कि चलो, तुम्हारी बात मान लें, लेकिन एकान्त तो न रहा कि भिन्न प्रमाण ग्राह्य जो हो वह भिन्न ही हो। देखो ना ! वृक्षकी अपेक्षासे दूरके ज्ञानने और समीप के ज्ञानने एकका ही विषय किया। तो एकान्त मानना तो गल सड़ गया। अब एकांत तो न रहा। तो जिस तरह यहाँ एकान्त भेद न रहा तो गुण गुणीमें, अवयव अवयवीमें, क्रिया क्रियावानमें, सामान्य विशेषमें भी सर्वथा भेद तो न रहा। कथंचित् भेद है, कथंचित् अभेद है, यह बात भी सिद्ध हुई, पर भिन्न प्रमाणग्राह्य होनेसे भेद ही होता है इस बातका तो निराकरण हो गया।

अवयव अवयवी आदिकमें भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वकी भी असिद्धि—अब दूसरी बात भी सुनो ! जो यह समझ बना रखी है शङ्काकारने कि अवयव अवयवीमें, गुण गुणीमें भिन्न प्रमाणग्राह्यता है अर्थात् अवयव अन्य प्रमाणों द्वारा जाना जाता है और अवयवी भिन्न प्रमाणों द्वारा जाना जाता है यह बात भी असिद्ध है। शङ्काकारका यह आशय था कि जैसे एक घड़ेको जाना तो घड़ा समूचा जो कुछ एक नजर में समझा गया है वह तो है अवयवी, अवयवों वाला, और उसका जो एक-एक कण है वह है अवयव। तो इन दोनोंका ज्ञान भिन्न प्रमाण द्वारा माना है लेकिन सर्वथा यह बात नहीं है कि भिन्न प्रमाणसे ही अवयव और अवयवी जाना गया। जैसे कपड़े के विषयमें ज्ञान किया कि यह कपड़ा है तो यह कपड़ा है इस मुद्रामें देखो ! अभिन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाणग्राह्यता आगई ना ! यह कपड़ा है, ऐसा ज्ञान करते समय सारे सूत जान लिए गए और कपड़ा जान लिया गया। तो देखो, एक ही ज्ञानमें अवयव भी जान लिया गया और अवयवी भी जान लिया गया। अवयव तो हुआ सूत और अवयवी हुआ वह पूरा कपड़ा।

अवयव अवयवीके अभिन्न प्रमाणग्राह्यत्वपर शङ्का व समाधान— अब शङ्काकार कहता है कि "पटोऽयम्' इस उल्लेखसे अभिन्न प्रमाणग्राह्यता कहना असिद्ध है। देखो, यह कपड़ा है इस उल्लेखसे इस प्रकारके बोधमें अवयवी ही प्रतिभासमान होता है, अवयव नहीं जाने जा रहे फिर एक ज्ञानसे अवयव और अवयवी जाने गए यह बात कैसे सिद्ध रही ? समाधान देते हैं कि अवयव और अवयवीमें भेद सिद्ध नहीं है। अवयवोंको निकाल लें, फेंक दें, और अवयवी बना रहे ऐसा हो सकेगा क्या ? वे तंतु ही ताना बानाके रूपसे विशेष अवस्थामें आये हुए कपडा कहलाता है यह कपड़ा है, उल्लेखसे वे सारे तंतु ही प्रतिभासित हो रहे हैं इस कारण तंतुवोंसे जुदा कपड़ा नहीं है, सूतसे न्यारा कपड़ा नहीं है, और यह कपड़ा है, इस ही एक ज्ञानसे वे सारे तंतु जान लिए गए हैं। तो भिन्न प्रमाण ग्राह्यता कैसे रही ? प्रमाण जिस प्रकार के वस्तुस्वरूपको ग्रहण करता है, वस्तुस्वरूप वैसा ही मानना चाहिए जहाँपर अत्यन्त भेदको ग्रहण करने वाला प्रमाण हो वहाँ तो आप अत्यन्त भेद मान लीजिए। जैसे कि घट, पट, तखत, चौकी, दरी, ईंट, चटाई, ये सब भिन्न-भिन्न हैं, इनका जो ज्ञान हो रहा है वह अत्यन्त भेदरूपसे हो रहा है। तो जहाँपर अत्यन्त भेदरूपसे ग्रहण करने वाला प्रमाण बने वहाँ तो अत्यन्त भेद समझ लेना चाहिए किन्तु जहाँपर कथंचित् भेदरूपसे ग्रहण करने वाला प्रमाण बने वहां कथंचित् भेद समझना चाहिए। अब जैसे घड़ा कपड़ा चटाई आदिक पदार्थोंमें भेद समझा जा रहा है उसी ही तरहसे कपड़ा और सूतमें या घड़ा व घड़ेके कणोंमें भी भेद मान लिया जाय कि भाई इसमें कुछ थोड़ा प्रतिभास भेद हो रहा है ना, गुण गुण कहलाता है, गुणी गुणी कहलाता है, इतने मात्रसे आप घड़ा कपड़ा चटाई आदिककी भाँति उनमें भेद समझ डालें तो यह युक्त नहीं है। हाँ प्रतिभासमें, लक्षणमें एक जानकारीमें थोड़ा भेद है कि सूत होता है एक एक तंतु और कपड़ा कहलाया यह सारा बुना हुआ, और अर्थक्रियामें भी भेद है, यदि वे तंतु न्यारे-न्यारे हों तो उनसे ठंढ कैसे मिटायी जाय ? और, वे ही तंतु संयोग सम्बन्धमें आकर कपड़ेकी अवस्था धारण करलें तो उससे ठंढ मिटाई जा सकती है। तो कपड़ा बननेसे पहिले भिन्न-भिन्न रहकर तो थोड़ा भेद था तो उस हालतमें तो कह सकते कि यह तो भिन्न चीज है। तंतु जुदी चीज है, कपड़ा जुदी चीज है, मगर आतान वितानकी अवस्थामें वे अवयव आ चुके, उनको हम यह पट है इस ज्ञानसे जान रहे हैं। उस समय भी उनमें ऐसा भेद मान डालें जैसा कि घट पटमें है तो यह युक्त नहीं है।

भिन्नप्रमाणग्राह्यत्व व अभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वसे भेदाभेदविभागका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अभाव और वस्तुस्वरूपत: भेदाभेदकी सिद्धि—यहां निष्कर्ष समझना चाहिए कि चाहे भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य हो तो भी यदि वहाँ भेद है तो भेद है और भेद नही है तो नही है। और, चाहे एक ज्ञानमें आ रहे हों पदार्थ फिर भी उनमें भेद हो सकता है जैसे आँखें खोलते ही सामने देखा तो एक साथ कई पदार्थ देखनेमें आ गए। तो देखो एक प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा ही वे पदार्थ ज्ञानमें आये और हैं वे अनेक। तो विजातीय अनेक पदार्थ भी एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य हो सकते हैं और सजातीय अनेक पदार्थ भी एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य हो सकते हैं। जैसे-गेहूँका ढेर है, एक ही नजरमें उन सारे अनेक गेहूयोंको जान लिया अथवा बाजरा चना, गेहूँ मिले हुए हैं, एक ही नजरसे हमने उन भिन्न-पदार्थोंको जान लिया तो इससे भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य होनेसे वस्तु भिन्न हो जाय, यह भी नही, एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य होनेसे वस्तु एक हो जाय सो भी नहीं।

भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतुका प्रत्यक्ष बाधितपना होनेसे अकिञ्चित्कर-त्वका प्रसंग—शंकाकारने गुण गुणीको, अवयव अवयवीको, सामान्य विशेषको भिन्न भिन्न पदार्थ सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया था भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व, वह हेतु बाधित है, कालात्ययापदिष्ट है। जैसे कि अनुमान बनाये कोई कि अग्नि ठंडी होती है द्रव्य होनेसे जलकी तरह। जो जो द्रव्य होता है वह ठंडा होता है—जैसे जल। तो क्या यह हेतु सही मान लिया जायगा? वह तो प्रत्यक्ष बाधित है। इसी प्रकार यह जो हेतु दिया गया है कि भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व भिन्न प्रमाणसे ग्रहणमें आ रही हैं, इस कारण ये भिन्न-भिन्न हैं, यों कहना प्रत्यक्ष बाधित है। घट पट आदिकमें यदि इस तरहका भेद दिख गया, भिन्न प्रमाणसे ग्राह्य है और साथ ही घट पट आदिक आपसमें अत्यन्त भिन्न हैं तो घट पट आदिकमें यदि सर्वथा भेद देखा गया और उस भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्वकी सर्वथा भेदके साथ घट पट आदिकमें व्याप्ति मिल गई तो इसके मायने यह नही है कि भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतुसे सब ही जगह अत्यन्त भेदकी कल्पना कर दीजिए। यदि इस तरह अघटित कल्पना की जाय तो किसी जगह तृण आदिकके विशेष आधार रखने वाला अग्निके साथ यदि कहीं धुवाँ दिख गया और उस धूमसे व्याप्त तृण वाली अग्नि पायी गई तो इसका अर्थ यह नही है कि धूम देखकर सब ही जगह तृण वाली अग्निकी सिद्धि की जाय। यदि कहो कि तृण वाली अग्निके भेदको छोड़कर धूम से सब अग्निमें पायी जाने वाली साधारण अग्निकी ही सिद्धि की जाती है तो ठीक है। इस ही तरह अत्यन्तभेदको छोड़कर अवयव अवयवी आदिकमें भी भिन्न प्रमाण ग्राह्यक हेतुसे भेदमात्रकी सिद्धि करो, सर्वथा भेदकी सिद्धि मत करो।

भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतुके दृष्टान्तमें साध्य विकलता एवं साधन विकलता होनेसे अप्रमाणता—और, भी देखिये—इस अनुमानमें जो शंकाकार द्वारा दृष्टान्त दिया गया है घट पट आदिकका कि जो भिन्न प्रमाणोंके द्वारा ग्राह्य होते हैं वे सर्वथा जुदे जुदे ही होते हैं—जैसे कि घट पट आदिक। तो इस दृष्टान्तमें भी सर्वथा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भेद नही पाया जा रहा इस लिए साध्य नही है, "अत्यन्त भिन्न है" यह साध्यपना यहाँ न रहा इस कारण दृष्टान्त भी गलत दिया याने हेतु गलत हुआ। देखो—घट पट आदिकमें भी अत्यन्त भिन्नता नही है। कैसे कि सत्त्व घटमें भी है और पटमें भी है। तो सदृश होनेसे घट पट आदिक विश्वके समस्त पदार्थोंमें अभेद है। भेद और अभेद अपेक्षासे देखे जाया करते हैं जितने आशयमें प्रयोजन हो उस प्रयोजनके अनुकूल भेद और अभेद सिद्ध किए जाते हैं। और, भी देखिये जो हेतु दिया है—भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व और उसके लिए जो दृष्टान्त दिया है घट पट आदिक, अर्थात् घट पट आदिक पदार्थ भिन्न प्रमाणके द्वारा ग्राह्य हैं इस कारण वे अत्यन्त भिन्न हैं। सो अभी दृष्टान्तको साध्य विकल तो बताया ही था। अब सुनो—दृष्टान्त साधन विकल भी है। किस तरह ? तुम कह रहे हो कि घट पट आदिक भिन्न प्रमाणोंके द्वारा ग्राह्य हैं, लेकिन कोई मनुष्य जब आँखें खोलता है तो आँखें खुलनेसे बाद एक ही प्रत्यक्षमें घट पट आदिका प्रतिभास सम्भव है। तो आँखें खुलते ही जितने पदार्थ सामने हैं वे सारे पदार्थ प्रतिभासित हो जाते हैं। तब देखिये यहाँ एक ही प्रमाणके द्वारा ही वे भिन्न भिन्न अनेक पदार्थ प्रतिभासमें आ गए तब घट पट आदिकमें भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हो यह नियम न बनेगा। भिन्न प्रमाण ग्राह्य भी है, और कभी किसीसे एक प्रमाणके द्वारा भी ग्राह्य हो जाता है।

प्रतिविषय विज्ञानभेद माननेपर भेदकज्ञानके अभावका प्रसङ्ग—शंकाकार कहता है कि हम तो प्रत्येक विषयमें जो विज्ञान होता है उसे भिन्न-भिन्न समझते हैं, अर्थात् प्रत्येक विषयमें होने वाला ज्ञान भिन्न-भिन्न ही है। भले ही आँखें खोलकर किसीने देखा और एक ही निरखनमें घट पट आदिक बहुतसे पदार्थ ज्ञानमें आ गए, लेकिन एक ज्ञानमें सब नही आये। जितने पदार्थ हैं उतने ही तुरन्त ज्ञान बन गए और उतने ज्ञानोंके द्वारा उनके विषयोंका ज्ञान किया गया। उत्तरमें कहते है कि इस तरह अगर मानोगे तो क्षणिकवादियोंका मेचक ज्ञान भी कुछ न रहा। अथवा सभीका मेचक ज्ञान भी तो कभी कभी होता है। मेचक मायने चित्र विचित्र। एक ज्ञानमें अनेक ज्ञेयाकार प्रतिभासित हो रहे हों ऐसा ज्ञान मेचक कहलाता है. अथवा कह लीजिए चित्रज्ञान। चित्रज्ञानका फिर अभाव ही हो जायगा। ज्ञान तो मेचक बनता ही है। जब सभी पदार्थ ज्ञानमें एक साथ झलक गये या जिसके ज्ञानमें जितने पदार्थ एक साथ ज्ञात हो रहे हैं। देखो वह ज्ञान मेचक बन गया ना, लेकिन अब यह कहनेपर कि प्रत्येक विषयके लिए ज्ञान जुदे-जुदे हैं—यदि २० पदार्थोंका एक साथ ज्ञान हो रहा है तो वे २० ज्ञान हैं एक साथ। इस तरह माना ना ! तो यों माननेपर मेचक ज्ञान नही बन सकता, अथवा किसी भी एक पदार्थको भी कुछ एक ज्ञानके द्वारा नही जान सकते, क्योंकि जैसे एक बड़ा घट जाना तो घटमें तो कितने ही अंश हैं। घटका मुंह, घटका पेट, घटकी पेंद आदिक ये सब घटके अवयव ज्ञानमें आये ना तो वहां अनेक विज्ञान मान लेना चाहिये। घटके जितने अंश हैं उतने ही ज्ञान मानोगे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो घटज्ञान भी न हो पाया। जिन अंशोंका ज्ञान किया उन अंशोंका ज्ञान हुआ। प्रत्येक पदार्थमें ऊपरी हिस्सा, मध्यका हिस्सा, नीचेका हिस्सा, यों अनेक भाग होते हैं और उन भागोंका ज्ञान हो रहा है। एक वस्तुको जानकर उसके अनेक भागोंका ही तो ज्ञान हो रहा। तो अब वे विज्ञान उतने बन बैठेंगे, फिर तो अवयवी कुछ पदार्थ ही न ठहर सकेगा। क्या है अवयवी ? सारे अवयव ही रहे, घट पट भींट आदिक कोई पदार्थ सिद्ध नही हो सकते, क्योंकि जितने विषय हैं उतने तुम ज्ञान मानते। तो एक चीजमें तो अनेक भाग होते हैं और उनका ज्ञान किया जा रहा है तो उतने ही ज्ञान हो गए। सो उन ज्ञानोंने उतने अंशोंको जाना। अंशी एक एक तो जाने नहीं जा सकते फिर तो उसके लिए तिलाञ्जलि दे दो। अब अवयवीका ज्ञान हो हीं नहीं सकता। यदि कहो कि इसमें तो प्रतीतिका विरोध है। प्रतीतिमें यह बात समाई हुई है कि यह घट एक है तो जो अवयवीकी ही तो प्रतीति हुई। इस अवयवीकी प्रतीति होनेसे अब नही कह सकते कि अवयवीका ज्ञान ही न हो सकेगा ! हो तो रहा है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात अवयव अवयवी आदिकके सर्वथा भेदमें भी तो प्रतीतिका विरोध है, फिर वहाँ क्यों सर्वथा भेद मानते ? अवयव अवयवी सर्वथा भिन्न नही है। इस तरह भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतु देकर जो शंकाकार गुण गुणीको परस्पर भिन्न, अत्यन्त भिन्न सिद्ध करना चाहता है, गुण गुणीको, क्रिया क्रियावानको, सामान्य विशेषको परस्पर अत्यन्त भिन्न सिद्ध करना चाहता है सो नही सिद्ध हो सकता।

विरुद्धधर्माध्यास हेतु द्वारा ज्ञेयोंमें अत्यन्त भेद सिद्ध करनेका शङ्काकारका पुनः प्रयास अब शंकाकार कहता है कि घट पट आदिक पदार्थोंमें विरुद्ध धर्म भी तो पाये जारहे। घटमें धर्म, आकार, अर्थक्रिया आदिक और भाँति है, पटमें अर्थक्रिया, धर्म, आकार और भांति है तो इसमें विरुद्ध धर्मोंका अध्यास समावेश है तो फिर कैसे नही ये भिन्न-भिन्न कहलायेंगे ? देखो ! पट पटत्व जाति सम्बन्धी पदार्थ हैं। जिनमें पटत्व जाति पाई जाय जो बड़ी विरुद्ध अर्थक्रियाको उत्पन्न करे। जैसे कि ठण्ठ मिटाना आदिक और जो बहुत महत्त्वका हो, बड़ा हो वही तो पट है। और तंतुवोंको देखो ! तो तंतु वे कहलाते हैं जिनमें तंतुत्व जातिका सम्बन्ध है और जो अल्प परिणाम वाले हैं, तब पटमें और तंतुमें भेद कैसे न सिद्ध होगा ? तो इसी तरह गुण गुणीमें, सामान्य विशेषमें भी सामान्य विशेष धर्मका अध्यास है। सामान्य में है सामान्यत्व, विशेषमें है विशेषत्व। सामान्य प्रतिभासमें ज्ञानमुद्रा बनती है साधारणरूपसे, विशेषके प्रतिभासमें ज्ञानमुद्रा बनती है असाधारणरूपसे, तो फिर इसमें भेद कैसे न होगा ? और, फिर आप तादात्म्य बतला रहे हो कि सामान्य विशेष एक पदार्थमें तादात्म्यरूपसे रहते हैं तो तादात्म्यका अर्थ है एकत्व ! तादात्म्यमें नाना चीजें तो नही हुआ करती और जब एकत्व उनमें है तब प्रतिभासभेद या विरुद्ध धर्मका अध्यास न होना चाहिए, अब माना है कि प्रतिभासभेद विभिन्न विषय होनेपर ही होते हैं। तब सामान्य विशेषमें अभेद सिद्ध नहीं किया जा सकता। ये दोनों अत्यन्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिन्न पदार्थ हैं। यदि जैन आदिक कोई कहें कि तंतुवोंसे भिन्न कपड़ा कुछ नहीं है, तंतुवोंका ही नाम कपड़ा है तब अब तंतुवोंकी बात बताओ ? तंतुवोंमें जो तंतुके हिस्से हैं उनसे तंतु कुछ भिन्न चीज है क्या ? वे भी क्यों भिन्न होंगे ? तो तंतुवोंके अवयवसे भिन्न कोई तंतु भी न रहे और उनके जो अंश हैं उनमें भी तो और अंश होते ना ! तो वे अपने अंशोंसे क्यों भिन्न रहेंगे ? तो उन अंशोंके अशोंसे भी अंश भिन्न न ठहरेंगे। इस तरह अंशोंके अंशोंका चिन्तन करते जाइये ! जब तक कि निरंश पपमाणु न आ जाय। तो अब निरंश परमाणुवोंसे भी अंशीका अभेद रहेगा। इसके मायने यह हुआ कि फिर किसी भी कार्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि कार्य कहलाता है वह कि जहां हों कोई दो अणुवों वाले पदार्थ और बन जाये ३-४-६ अणुवों वाले ! मगर यहां तो अवयव अवयवीमें अभेद माना जारहा है तो द्वयणुक और चतुरणुकादि ये अलग क्या रहे ? फिर तो किसी भी कार्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती। इस कारण मानना ही पड़ेगा कि पटसे तंतु भिन्न है और तंतुवोंसे रूपादिक भिन्न है, सामान्यसे विशेष भिन्न है। धर्म धर्मी, गुण गुणी, अवयव अवयवी, क्रिया क्रियावान, सामान्य विशेष ये सब परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं।

अत्यन्त भेद सिद्ध करनेके लिये दिये गये विरुद्धधर्माध्यास हेतुकी सदोषताका वर्णन—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं। पदार्थोंमें यदि भेद सिद्ध करनेके लिए शंकाकारने विरुद्ध धर्माध्यास हेतु दिया है अर्थात् विरुद्ध धर्म पाये जाने से वे पदार्थ अत्यन्त भिन्न हैं। ऐसा जो विरुद्धधर्माध्यास हेतु है उसमें अनेकान्तिक दोष आता है। कैसे ? जैसे यह सिद्ध किया जाय कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो यहां धूम नामक जो हेतु है उसमें विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं। कैसे विरुद्ध धर्म है कि वह धूम अपने साध्यका तो गमक है और साध्यान्तरका अगमक है। तो देखिये ! उस धूममें दो धर्म पाये गए, साध्य गमकत्व और साध्यन्तरागमकत्व अथवा असाध्यागमकत्व। अर्थात् अपने साध्यको तो जता देना और साध्यसे भिन्नको न जताना। तो धूममें गमकत्व और अगमकत्वरूप विरुद्धधर्म मौजूद होनेपर भी धुवांमें क्या कोई भेद हो रहा है ? वह तो एक ही है। तो अब देख लो ! विरुद्धधर्म होनेपर भी पदार्थ में भेद नहीं न रहा है। तो अनैकान्तिक दोष इस ही को तो कहते हैं कि जहां हेतु पाया जाय, कभी साध्य भी पाया जाय। जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनोंमें रहे तो उसे अनैकान्तिक कहते हैं। तो विरुद्ध धर्मका अध्यास होनेसे कहीं भेद भी सिद्ध होता है ? धूममें गमकत्व और अगमकत्व ऐसे दो धर्म होनेपर भी देखो, धूममें भेद तो न रहा तो इसी तरह अवयव अवयवीमें सामान्य विशेषमें विरुद्ध धर्म हों तो भी उनमें भेद नहीं किया जा सकता। संज्ञा संख्या प्रयोजन आदिकके भेदसे तो उनमें भेद बनता है पर अवयव कोई स्वतंत्र पदार्थ हो और अवयवी अन्य कोई स्वतन्त्र पदार्थ हो और अवयवी अन्य कोई स्वतंत्र पदार्थ हो इस तरह सिद्ध नहीं हो सकता। सामान्य कोई स्वतन्त्र पदार्थ हो और विशेष कोई स्वतन्त्र पदार्थ हो ऐसा अत्यन्त भेद नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन सकता। तो विरुद्ध धर्माध्यास होनेपर भी पदार्थं भिन्न ही हो यह नियम नही बनाया जा सकता। प्रत्येक पदार्थं परस्पर विरुद्धानेकधर्मात्मक पदार्थकी भिन्नताका नियामक नही है।

अवयव अवयवीमें सर्वथा भेद सिद्ध करनेके लिये शङ्काकार द्वारा कथित विरुद्धधर्माध्यास हेतुकी सदोषताका कथन—शंकाकारका कहना था कि विरुद्ध धर्मके रहनेके कारण पदार्थोंमें भेद सिद्ध होता है। अवयव अवयवी, गुण गुणी क्रिया क्रियावान, सामान्य विशेष इन सबमें परस्पर विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं, इसलिए इनमें अत्यन्त भेद है। इस शंकाका उत्तर यह दिया गया था कि विरुद्ध धर्माध्यास नामक हेतु अनैकान्तिक दोष सहित है, क्योंकि एक ही धूम साधन अग्निको सिद्ध करता है इस कारण गमक है और अनग्निको सिद्ध नही करता इस कारण अगमक है। तो देखो ! धूममें भी दो धर्म तो आ ही गए—अग्निका गमक होना और अनग्निका गमक न होना। लेकिन धूममें भेद कहां है ? वह तो एक ही है। इसपर शंकाकार कह रहा है कि इस धूममें भी सामग्रीभेद है। जो धूम पक्ष धर्मत्व आदिक कारणोंसे युक्त है अर्थात् जिस धूम साधनमें पक्ष धर्मत्व सपक्षसत्त्व आदिक कारण मौजूद हैं वे धूम तो हैं अपने साध्यको जताने वाले और जहां पक्षधर्मत्व आदिक न हों उससे विपरीत कारण हो, विपक्षसत्त्व आदि हो, ऐसे धूममें चूंकि अन्य सामग्री आ गई ना, इसलिए अन्य साध्यका भी गमक नही होता। एक ही धूमको हम गमक और अगमक नही कह रहे किन्तु वह धूम ही दो तरहकी है—एक पक्षधर्मत्व आदिक सहित धूम और एक विपक्षसत्त्व आदिक सहित धूम। तो धूम ही दो हो गए। जो जो धूम पक्ष धर्मादिक सहित हो सो गमक है, अन्य धूम गमक नही है। यह भी उलट फेर करके अनेकान्त मन्तव्यका सहारा लेनेकी बात हुई, क्योंकि धूम तो वही है, एक है। उस ही एक धूमको जब हमने परखा, अविनाभाव सम्बन्धका स्मरण किया, पक्ष धर्मत्व आदिक जाना, उस करके युक्त जो धूम है सो अग्निका तो गमक है और अनग्निका अगमक है। तब अनेकान्त मत ही तो हुआ। धूम कथंचित् गमक है कथंचित् अगमक। अविनाभाव सम्बन्ध स्मरण सहित यह धूम अग्निका गमक है, अन्यका अगमक है। शंकाकार कहता है कि अपने साध्यके प्रति जो गमक है वह तो धूम है अन्य, और जो अनग्निका अगमक है ऐसा धूम है अन्य। तो उत्तर देते हैं कि इस तरह यदि धूम दो तरहका मान लिया तो जो गमक धूम है, साध्यको सिद्ध करनेवाला साधन है तो उसमें तो गमकपना ही रहा, अगमकता तो रही नही। सो वह गमक ही गमक रहा करे, कभी भी अगमक न बने। दूसरा धूम अगमक है सो अगमक रहे उस की बात अभी हम नही कह रहे। सो गमक जैसे अपने साध्यका गमक है ऐसे ही साध्यन्तरका भी गमक रहे, क्योंकि दो धूम मानकर अब एक धूममें तो गमकत्व ही माना है तब एक ही धूम साधनसे दुनियाभरके समस्त साध्योंकी सिद्धिका प्रसङ्ग हो जायगा फिर अन्य हेतुवोंका कहना व्यर्थ हो जायगा।

Version 1

पटावस्थाभावितन्तुओंसे पटकी अनर्थान्तरताका प्रतिपादन—और भी सुनो—जो विरुद्ध धर्माध्यास हेतु देकर तंतु और कपड़ेको अत्यन्त भिन्न सिद्ध कर रहे हो सो यह बतलावो कि इस हेतुसे तुम पटका जो तंतुवोंसे भेद बता रहे हो तो किस प्रकारके तंतुवोंका भेद बताते हो ? क्या जो कपड़ा अवस्थामें नहीं आये, बिखरे जुदे अपनी गिड्डीमें ही पड़े हैं उन तंतुवोंसे कपड़ेका भेद बता रहे हो या कपड़ेकी अवस्थामें रहने वाले तंतुवोंसे कपड़ेका भेद बता रहे हो ? यदि कहो कि हम उन तंतुवोंसे कपड़ेको भिन्न बता रहे हैं जिन तंतुवोंने कपड़ेकी अवस्था धारण नहीं की और पूर्व अवस्था में आने ही मात्र तंतुरूपमें ही पड़े हुए हैं ऐसे तंतुवोंसे कपड़ेको हम न्यारा कह रहे हैं तो यह तो युक्त बात है, इसका कौन विरोध करता है ? जो ततु अपनी गुत्थीमें ही पड़ा हुआ है, आतान वितानमें नहीं आया है उस तंतुसे तो कपड़ा न्यारा है ही, क्योंकि पूर्व अवस्था और उत्तर अवस्थामें भेद ही क्या है ? क्योंकि जो ही पदार्थकी पूर्व अवस्था है वह ही पदार्थकी उत्तर अवस्था है सो बात नहीं। वे इकले इकले जो तंतु हैं वह तो पूर्व अवस्था है और आतान वितान होकर जो पटरूपमें आगए तंतु हैं वह उनकी उत्तर अवस्था है। तो पूर्व अवस्थामें रहने वाले तंतुवोंसे कपड़ेको भिन्न कहने पर तो बात यथार्थ है, क्योंकि पूर्व अवस्था जुदो है और उत्तर अवस्था जुदी है। पूर्व अवस्थाका ही त्याग करके तो उत्तर अवस्थाकी उत्पत्ति होती है ना ! तो सही है तुम्हारा पक्ष। यदि कहोगे कि तन्तुओंका आतान वितान होकर जो कपड़ा बना, उस पटकी अवस्थामें रहने वाले तंतुवोंसे कपड़ेको भिन्न कहते हैं तो यह हेतु असिद्ध है, क्योंकि पट अवस्थामें रहने वाले तंतुवोंसे पट भिन्न है ही नहीं। न वहाँ विरुद्ध धर्माध्यास हेतु है और न वहाँ भिन्न प्रमाण ग्राह्यपना है, और न विभिन्न कर्तासे भी कोई धर्म वहाँ पृथक् नजर आ रहे। अर्थात् पट अवस्थामें रहने वाले तंतुवोंसे पट भिन्न चीज नहीं है, और फिर तुम्हारा यह हेतु कि वहां विरुद्ध धर्माध्यास है इस कारणसे भेद है यह बिल्कुल प्रत्यक्ष वाधित है। जो ताने बानेके रूपमें आये हुए तंतु हैं उनको छोड़कर अन्य कोई कपड़ा प्रत्यक्षसे पाया नहीं जाता इस कारणसे तुम्हारे भेदका जो कथन है वह प्रत्यक्ष वाधित है।

चार विकल्पात्मक हेतुओंसे अवयव अवयवीमें भेद सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकर कहता है कि वाह ! तंतुवोंका करनेवाला दूसरा है और पटका करने वाला दूसरा है इस कारण भिन्न हैं।

जैसे कि पटका करने वाला जुलाहा है और घटका करने वाला कुम्हार है तो जब करने वाले जुदे हैं तब तो ये जुदे-जुदे ही पदार्थ हो गये ना। देखो ना, तंतुओं को सूतको तो बनाया करती हैं जुलाहोंकी स्त्रियां। वे अपने घरमें चरखा रखकर सूत कात लेती हैं और कपड़ा बनाते हैं जुलाहा लोग तो देखो—कपड़ा और तंतु इन दोनों के कर्ता भिन्न-भिन्न हो गए। जब कपड़ा और तंतु इन दोनोंके कर्ता भिन्न भिन्न हो गए तो तंतु और पट ये भी भिन्न-भिन्न हो गए। अथवा कपड़ेकी शक्ति भिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकारकी है, तंतुकी शक्ति भिन्न प्रकारकी है। तो जब भिन्न–भिन्न शक्तियां हैं तो इस से भी भेद सिद्ध होता है कि तंतु अलग चीज है, कपड़ा अलग चीज है। जैसे कि विष और अमृत। जब इनमें शक्तियां जुदी–जुदी हैं तो ये एक तो न हो जायेंगे ? इसी तरह जब कपड़ा और तंतु इन दोनोंको शक्तियाँ न्यारी–न्यारी हैं तो ये एक कैसे हो जायेंगे ? अथवा ततु तो पूर्वकालमें पैदा हुआ और कपड़ा बना बहुत समय बाद तो तंतु और कपड़ा एक कैसे हो जायेंगे ? जैसे पिता और पुत्र। पिता तो उत्पन्न हुआ था पहिले और पुत्र उत्पन्न हुआ २५ वर्ष बाद तो ये पिता और पुत्र दोनों एक तो न हो जायेंगे ? ऐसे ही तंतु बना पहिले कपड़ा बना बादमें अथवा तंतुका परिमाण तो है और किस्मका और कपड़ेका परिमाण है और किस्मका तो फिर ये दोनों एक कैसे हो जायेंगे ? जैसे कि बेर और आंवला, केला, और पपीता जब इनका परिमाण न्यारा न्यारा है तो ये एक तो नहीं हैं न्यारे हैं, इसी तरह तंतु भी पटसे न्यारे हैं। और, फिर इनमें संज्ञा भेद भी पाया जाता। तंतु तंतु ही कहलाता, पट पट ही कहलाता। इनमें फिर कैसे अभेद हो जायगा ?

उक्त चार विकल्पोंसे अवयव अवयवीमें अत्यन्त भेद सिद्ध करनेकी शंकाका समाधान—उत्तर देते हैं कि यह तंतु है यह कपड़ा है। तंतु ही कपडा है। तंतुमें बहु वचन लगाकर बोलते हैं, कपड़ेको एक बचनमें बोलते हैं। "तंतवः पटः" इस प्रकार जो सज्ञा भेद है वह पदार्थ भेदकी वजहसे नही, किन्तु अवस्था भेद की वजहसे है। कहीं अन्य–अन्य द्रव्य हैं इस कारणसे यहां संज्ञा भेद नही होता है। इस खाली तंतुकी अवस्था और किस्मकी है और आतान वितानमें आ चुके तंतुवोंकी अवस्था और किस्मकी है इससे तंतु और पट, पट अवस्थामें आये हुए तंतु और उनके समूह रूप यह कपड़ा ये दो संज्ञायें हैं, किन्तु भिन्न–भिन्न वस्तु नही हैं। जब केवल तंतु हों तो उनसे ठंड तो नही मिटा सकते, किन्तु जब उन तंतुवोंको जुलाहा अपनी हस्तादिक क्रियावोंसे कपड़ेके रूपमें ला देता है तो वह अवस्था ठंड मिटानेमें समर्थ है। तो अवस्था भेद हैं इनमें, विभिन्न कर्ता होनेसे तंतु और पटमें अन्तर आनेकी बात यों युक्त नही है कि जब वे तंतु आतान वितानमें आकर कपड़ेके रूपमें आ गए भिन्न वहाँ कर्ता भिन्नका सवाल क्या है? उस समय कोई विभिन्नता नही है वह तंतु ही पटत्व कहलाता है। और, जो यह कहा है कि विभिन्न शक्तियाँ हैं उन तंतुवोंमें और पटमें इससे परस्पर भेद है तो भाई विभिन्न शक्तियाँ हैं यह बात केवल अवस्था भेदको बताती है सर्वथा भेदको तो सिद्ध न कर सकेगी अवयव अवयवीमें अत्यन्त भेद सिद्ध न कर सकेगी। जब तंतु केवल तंतुकी ही हालतमें है उस समयको उससे शक्तियाँ जुदी हैं और जब कपड़ा रूपमें तंतु आ गए तब उसमें शक्तियाँ जुदी प्रकारकी हो गईं। तो इससे अवस्थाका भेद ही सिद्ध हुआ। यह सिद्ध नही हो सकता कि तंतु बिल्कुल अलग चीज है और कपड़ा अत्यन्तभिन्न पदार्थ है। जब वे तंतु एक पिण्ड रूप हो गए तो कपड़ा नाम जिसको भी हम कह रहे हैं उसके ये अवयव कहलाने लगे। अवयवियोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवयव अत्यन्त भिन्न नही हुआ करते । जिनका स्वरुप सत्त्व भिन्न–भिन्न है उनमें तो अत्यन्त भेद है पर जो उस एक धर्मीके ही धर्म है उनमें भेद नही हो सकता । तथा जो यह कहा कि पूर्व और उत्तर काल भावी होनेसे भी तंतु और पदार्थमें भेद है, तंतु तो उत्पन्न हुए ६ महीना पहिले और कपड़ा बना ६ महीने बाद ६ महीने पहिले वे ततु कपड़ा नही कहलाते थे, किन्तु अब उन तंतुवोंका ही नाम एक ताना बाना आ जानेके कारण पट हो गया । पट कोई भिन्न वस्तु थोड़े ही है । जब वे अकेले थे तब उनका नाम तंतु था । जब वे तंतु विधिपूर्वक एक पिण्डमें आ गए तो उसका नाम कपड़ा हो गया । तो तंतुकी पूर्व अवस्था और कपड़ा है उत्तर अवस्था । कोई दो पदार्थ नही हैं अब विभिन्न परिमाण वाली जो बात कह रहे कि देखो–तंतुवोंका परिमाण तो बिल्कुल पतला और छोटा है और कपड़ेका परिमाण है बहुत । तो कपड़ा कोई भिन्न वस्तु नही । जो तंतुवोंका समूह पहिले अलग–अलग रूपमें था वह तंतु कहलाता था, अब तान वितान होकर पिण्ड रूपमें बन गया है तो कपड़ा कहलाने लगा । वहाँ एक तंतुको निरखकर परिमाण देखा जा रहा था यहाँ अनेक तंतुवोंके समूहमें परिमाण देखा जा रहा है । कपड़ा तंतुवोंसे कहीं अलग चीज नही है ।

षष्ठी विभक्ति लगनेके कारण पदार्थोंमें परस्पर अत्यन्त भेद सिद्ध करनेकी शङ्का—अब शङ्काकार कहता है कि पटके भावको पटत्व कहते हैं । इस तरह देखो ! षष्ठी विभक्ति लगाई गई है ना ? तो यदि कपड़ा कोई वास्तविक जुदा पदार्थ न हो तो उसमें षष्ठी विभक्ति कैसे लग जायगी ? जैसे कहते हैं कि यह बाबूजी की कमीज है । तो बाबूजी अलग पदार्थ है, कमीज अलग पदार्थ है । तब तो षष्ठी विभक्ति लगाई गयी । यों ही 'पटस्य भाव: पटत्वम्' इसमें जो षष्ठी विभक्ति लगाई गई है सो भेदको सिद्ध कर रही है । साध्य ही पटत्वमें जो त्व प्रत्यय लगा है सो यदि भेद न होता तो प्रत्यय भी न लगाया जा सकता । सामान्य और विशेषमें अभेद माननेपर जैसे तंतु तो सामान्य होता है, पट विशेष हुआ या पटत्व सामान्य हुआ ? पट विशेष हुआ तो उनमें षष्ठी विभक्ति न लग सकेगी । यदि पट और पटत्व जुदे पदार्थ न माने जायें, तंतु और पटमें अत्यन्त भेद न माना जाय । लोकमें जितने षष्ठी विभक्ति वाले पद हैं वे उनके वाच्य सम्बन्धित पदार्थसे भिन्न ही होते हैं । जैसे सेठकी दुकान, गोपालका कम्बल आदि । यों ही पटका पटत्व आदि कहना भी भेद सिद्ध करता है । यों ही अवयवीके अवयव आदि भी कहे जाते हैं सो अवयवीसे भिन्न होगये ।

भिन्न पदार्थोंमें भी षष्ठी विभक्ति लगानेका अनियम—अब उक्त शङ्का का समाधान करते हैं । शङ्काकारने जो यह कहा था कि षष्ठी विभक्ति जहां लगती है वहां भेद सिद्ध होता है । जैसे मनुष्यका घर, आदिक सभी सगह षष्ठी विभक्ति भिन्न पदार्थोंमें लगती है । अभेदमें षष्ठी विभक्ति प्राप्त नही होती, सो यह बात अयुक्त है । ऐसा नियम नही बनाया जा सकता कि षष्ठी विभक्ति भिन्नमें ही लगती है । भिन्नमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी लगती है और अभिन्नमें भी लगती है। जैसे यह कहा कि छहों द्रव्योंका अस्तित्व, वैशेषिकोंके प्रति कहा जा रहा है । वैशेषिक ६ द्रव्य मानते हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। और ६ जातिके पदार्थ भी माने गए हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। पर यहां शंकाकारके लिए कहा जा रहा है—तो उसके माने हुए द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामके ६ पदार्थोंका अस्तित्व अथवा ६ पदार्थोंका समूह जब कहा जाता है तो देखो ! यहां विभक्ति तो लग गई षष्ठी, पदार्थोंका अस्तित्व, मगर उन ६ पदार्थोंका अस्तित्व उन ६ पदार्थोंसे अभिन्न है तो अभेदमें भी षष्ठी लगती है। ६ पदार्थोंका समूह, तो समूह क्या कहलाया ? ६ ही पदार्थ, तो अभेदमें भी षष्ठी लग गई। ६ पदार्थोंसे जुदा अस्तित्व तो कुछ नहीं है। जैसे पंडित जीकी धोती। तो धोती पंडितजीसे अलग है। यों ६ पदार्थोंका अस्तित्व, यह अस्तित्व ६ पदार्थोंसे जुदा कुछ नहीं है व नहीं माना है। तो यह कहना कि षष्ठी विभक्ति भिन्नमें ही लगती है सो अयुक्त बात है। अभेदका भी षष्ठी विभक्तिपर प्रयोग होता है।

ज्ञापकप्रमाणविषयत्वरूप सत्त्वकी अर्थान्तरता माननेपर अनिष्टप्रसंग

अब शंकाकार कहता है कि सत्त्वका अर्थ क्या है ? सत् अर्थात् ज्ञापक प्रमाणों का विषय। उसका नाम सत् है। सत्का अर्थ है प्रमाणका विषयभूत पदार्थ। और, उसके भावका नाम है सत्त्व। जिससे अर्थ क्या निकला कि सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणकी विषयताका नाम है सत्त्व। अर्थात् सत्ताका निर्णय करने वाले ज्ञानके विषयत्वको कहते हैं सत्त्व। तो यह जुदा धर्म हो गया ना ? और उस अस्तित्वको फिर कहते हैं कि ६ पदार्थोंका अस्तित्व। तब तो हमारा हेतु ठीक रहा ना कि जहां जहां षष्ठी विभक्ति लगती है वहां वहां भेद रहा करता है। उत्तर देते हैं कि यह बात बिल्कुल अयुक्त है। यदि ६ पदार्थोंका अस्तित्व उन ६ पदार्थोंसे व्यतिरेक कोई धर्मान्तर हुआ तब ६ की संख्या मिट जायगी। देखो ! अब यह ७ वां भी निकल आया। ६ पदार्थोंका अस्तित्व, इसमें जो अस्तित्व है वह ७ वाँ पदार्थ है, क्योंकि तुमने ही इस समय ६ पदार्थोंसे भिन्न मान लिया अस्तित्वको इससे अस्तित्व भिन्न नहीं माना जा सकता। तो अभेदमें भी षष्ठी विभक्तिका प्रयोग बन गया ना !

केवल धर्मीरूप व धर्मरूप भावविभाग करनेमें अनेक अनिष्टापत्तियां

अब शंकाकार कहता है कि बात यहाँ ऐसी समझना चाहिए कि धर्मीरूप ही जो भाव हैं वे तो हैं ये छः पदार्थ, परन्तु धर्मरूप जो भाव हैं वे छः पदार्थोंसे भिन्न हैं। वे कितने ही रह जावें। और, इसी प्रकार ग्रन्थोंमें भी कहा है कि धर्मैर्विना धर्मिणामेव निर्देशः कृतः अर्थात् इस प्रकार धर्मोंके बिना धर्मियोंका ही निर्देश किया गया है। तब बात क्या रही कि जो केवल धर्मीरूप भाव हैं वह तो है ६ पदार्थ और जो धर्मीरूप व धर्मरूप दोनों प्रकारके हैं वे उनसे अलग हैं, सो वे कितने ही रहे आवो ! यों अस्तित्व

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी यदि एक अन्य धर्म बने तो उससे ६ पदार्थोंकी संख्याका विघात नहीं होता। उत्तरमें कहते हैं कि खैर, जैसा तुम कहते हो ऐसा भी मान लिया जाय कि पदार्थ जो धर्मीरूप ही हैं वे तो हैं यहां ६ पदार्थ, परन्तु धर्मीरूप उन ६ से अलग है। मानलो थोड़ी देरको, और ऐसा माननेका प्रयोजन यहाँ यह है कि अस्तित्व भी एक धर्म है जो ६ पदार्थोंके साथ जोड़ा गया है। षष्ठी विभक्तिके द्वारा कि ६ पदार्थोंका अस्तित्व। तो अब यहां यह बतलाओ कि उस अस्तित्वका ६ पदार्थोंके साथ कौनसा सम्बन्ध है? ६ पदार्थ जुदे हैं और अस्तित्व धर्म जुदे हैं। अब अस्तित्व धर्मका ६ पदार्थोंके साथ सम्बन्ध जुड़ा है तो वह किस प्रकारका सम्बन्ध है? जो पदार्थोंके साथ अस्तित्व बना है। क्या संयोग सम्बन्ध है या समवाय सम्बन्ध है? संयोग सम्बन्ध तो यों नहीं कह सकते कि संयोग तो गुणरूप है, वह तो द्रव्यके आश्रय रहेगा। द्रव्याश्रय गुण हुआ करता है। तो संयोग हुआ गुण। यह रहेगा द्रव्यके आश्रय। मगर यहाँ तो अस्तित्व को बता दिया है धर्म और ६ पदार्थ जो कहे उनमें भी द्रव्य नामक पदार्थ है एक. तब फिर उन ६ पदार्थोंके साथ अस्तित्वका सम्बन्ध कैसे जुट सकता है? द्रव्य और द्रव्यके सम्बन्धको संयोग सम्बन्ध माना गया है। मगर अस्तित्व तो द्रव्य नहीं है, वह तो है धर्म। उसका कैसे सम्बन्ध जुट सकता है? तो षट पदार्थोंके साथ धर्मका संयोग सम्बन्ध नहीं बना। यदि कहो कि समवाय सम्बन्ध हो जायगा ६ पदार्थोंके साथ अस्तित्वका समवाय सम्बन्ध है तो यह भी बात नहीं बनती। क्योंकि समवाय सम्बन्ध तो एकत्व रूपसे माना गया है। जिसके साथ समवाय सम्बन्ध होता है वे दोनों तादात्म्य हुआ करते हैं। जैसे आत्मामें ज्ञानका समवाय सम्बन्ध है तो आत्मासे ज्ञान जुदा थोड़े ही है। एक है। और, फिर दूसरी बात यह है कि ६ पदार्थोंके साथ अस्वित्वका सम्बंध किया तो उस समवायका भी उन दोनोंके साथ कौन सा सम्बन्ध कहोगे? कहोगे कि अन्य समवाय है तो उसका भी इन सबके साथ कौन सा सम्बन्ध कहोगे? यों अन्य अन्य समवाय कहते जावोगे तो समवाय अनेक हो जायेंगे और अनवस्था दोष हो जायगा यदि कहो कि सम्बन्धके बिना ही धर्म और धर्मी भाव बन जाता है, ६ पदार्थोंका अस्तित्व, वहाँ ६पदार्थ तो हैं धर्मी और अस्तित्व है धर्म तो धर्मी धर्म सम्बन्ध यों ही बन जायगा अपने आप सम्बन्धके बिना ही, तो ऐसा माननेपर अति विडम्बना हो जायगी। वह किस तरह कि आकाशके फूलका और अस्वित्वका भी धर्म धर्मी साथ बन बैठे क्यों कि सम्बन्धके बिना अब धर्म धर्मी भाव होने लगा है। तो असत् पदार्थोंमें भी अस्तित्व का धर्म धर्मी सम्बन्ध बन जाना चाहिए।

अस्तित्वका अस्तित्व माननेपर अनवस्था और धर्मी पदार्थोंकी ६ संख्याका विघात— अब और दूसरी बात सुनो अस्तित्वमें भी क्या अन्य अस्तित्व पड़ा हुआ है? जैसे ६ पदार्थोंका अस्तित्व कह कर अस्तित्वको न्यारा स्वीकार करते हो और फिर उसका पदार्थोंमें सम्बन्ध बनाते हो तो यह भी बतलाओ कि क्या अस्तित्वका भी अस्तित्व हुआ करता है सो तो है नहीं तो जब अस्तित्वमें अन्य अस्तित्वका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभाव हो गया और विभक्ति देने लगोगे कि अस्तित्वका अस्तित्व और दूसरा अस्तित्व कुछ भिन्न है नही तो वहाँ विभक्ति कैसे बन बैठेगी ? भेद निमित्तक विभक्ति तो अब यहाँ न बनी। यदि कहो कि हम वहाँ भी और नया अस्तित्व मान लेंगे, अस्तित्वका भी अस्वित्व है तो फिर दूसरे अस्तित्वका भी अस्तित्व मानो, उस तीसरे अस्तित्वको भी अस्तित्व मानो। यों अस्तित्व माननेमें अनवस्था हो जायगा। मानते चले जावो, कहीं विश्राम ही न हो सकेगा। इसके अतिरिक्त एक दोष यह बड़ा विकट आता है कि जब कहा अस्तित्व अस्तित्व तो जिसमें लगी षष्टी विभक्ति वह तो हो गया धर्मी और जिसमें प्रथमा विभक्ति है वह हो गया धर्म। और, जब उस दूसरे अस्तित्वमें भी कहोगे कि अस्तित्व तो दूसरा अस्तित्व तो हो गया धर्मी और तीसरा अस्तित्व हो गया धर्म। और, जब तीसरे अस्तित्वके लिए ही कहोगे कि अस्तित्वका अस्तित्व तो तीसरा अस्तित्व हो गया धर्मी और चौथा अस्तित्व हो गया धर्म, तो यों उत्तरोत्तर धर्मके समावेश होनेसे उन अनेक अस्तित्व आदिकमें भी धर्मीरूपता बन गई। तो यह कहना कि धर्मी ६ ही होते हैं इस संख्याका विघात हो गया। शंकाकार कहता है कि हम तो यह मानते हैं कि जो भाव धर्मीरूप ही है—वे हैं ६ और जो ऐसे भाव है कि धर्मरूप भी हैं, धर्मी रूप भी हैं, उनको हम इन ६ संख्या वाले धर्मीमें सामिल नही करते हैं। तो उत्तर देते हैं कि फिर यह भी सारहीन बात हुई। ऐसा कहनेपर कि जो धर्मीरूप ही हैं—वे हैं ६ तो यह बतलावो कि गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये क्या धर्मरूप ही हैं ? ये तो केवल धर्म रूप हैं। तब फिर ६ पदार्थ कुछ न रहे, फिर तो एक ही पदार्थ मानो—द्रव्य ही द्रव्य, और गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इनको एक रूप ही मानो। यों ही ६ संख्याका विघात होता है तो यह कहना कि जिसमें षष्टी विभक्ति लगती है वे पदार्थ जुदे-जुदे होते हैं जैसे सेठकी दुकान, तो की लग गयी ना। तो सेठ न्यारी चीज हो गयी और दूकान न्यारी चीज हो गयी। तो का के की प्रत्यय लगा हुआ होता है, इनमें परस्पर भेद होता है, यह कहना युक्त नही है क्योंकि जिनमें भेद नही है उनमें भी का के की षष्टी विभक्ति लगती है। जैसे कहा कि आकाशका भाव आकाशत्व, मनुष्यका भाव मनुष्यत्व। अब यह बतलावो कि आकाशका भाव आकाशत्व, इस प्रयोगमें आकाश और आकाशपना ये क्या भिन्न-भिन्न चीजें हैं ? एक, मगर इनमें विभक्ति लग गयी और तद्धित प्रत्यय भी लग गया त्व, कृत्व, आकाशत्व। तो यह कहना भी अयुक्त है कि भिन्न पदार्थोंमें तद्धितका प्रत्यय लगा करता है, इस कारण षष्ठी विभक्ति और तद्धित प्रत्ययकी उत्पत्ति, ये भेद-पत्तिको ही उत्पन्न करे सो बात नहीं है।

शंकाकार द्वारा उपस्थित किये गये तादात्म्य शब्दके अर्थके तीन विकल्पोंका विवरण—अब शंकाकार कहता है कि तादात्म्य शब्दका अर्थ क्या है ? जो यह कह रहे हो कि सूत्रोंका जो समुदाय है ताना, बाना बुनकर, उसका नाम पट है याने पट तन्तुमय है। जब वह पट है तंतुमय तो मयका क्या अर्थ है ? क्या तादा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्म्यका यह अर्थ है कि कपड़ा ही है आत्मा जिन तंतुवोंका उन तंतुवोंके भावका नाम है तादात्म्य, क्या तादात्म्यका यह विग्रह करना चाहिये ? अथवा वे तंतु ही हैं आत्मा जिसका ऐसा पटका भाव तादात्म्य कहलाता, यह विग्रह करना चाहिए अथवा तंतु और पट है आत्मा जिसके उसके भावका नाम है तादात्म्य ? इन तीन अर्थोंमेंसे तादात्म्य शब्दका कौनसा अर्थ मानते हो ? कहते ना, कि कपड़ा सूतमय है । सूतसे निराला कपड़ा क्या चीज है ? इन तीन विकल्पोंमेंसे यदि प्रथम विकल्प कहोगे कि तादात्म्य का अर्थ यह है कि पट ही है स्वरूप जिसका ऐसे तंतुवोंके भावोंका नाम है तादात्म्य, तो इसमें यह आपत्ति आयगी कि जब तंतु और कपड़ा एकमेक हो गए तो तंतु अर्थात् सूत तो है अनेक और अनेकों सूतोंमय है कपड़ा तो कपड़ा भी अनेक हो जाना चाहिए, अथवा कपड़ा है एक और तन्मय है तादात्म्य तंतुका तो तंतु भी सारे एक बन जाने चाहिएं । यदि ऐसा नही होता अर्थात् कपड़ा तो रहे एक और सूत रहे अनेक तब उन उनका तादात्म्य नही माना जा सकता है । यदि दूसरा विकल्प लेते हो कि तादात्म्य का यह अर्थ है कि वह तंतु है स्वरूप जिसका ऐसा पटके भावका नाम है तादात्म्य, तो उसमें भी यह दोष है । या तो पट अनेक होना चाहिए या सूत एक रह जाना चाहिए, उन तीन विकल्पोंमेंसे तीसरा विकल्प तो बिल्कुल अयुक्त है । यह कहना कि कपड़ा और तंतु ही जिसका स्वरूप है तो कपड़ा और सूत इनके अतिरिक्त तीसरी चीज और है ही क्या ? उनसे अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ नही है । सूत और कपड़ेको छोड़कर और कोई वस्तु नहीं है, जिसका तंतुपट स्वभावत्व कहा जाय । अर्थात् तृतीय वस्तुमें पटका व सूतका स्वभाव है और तन्तु कपड़से विभक्त है । इन तीन विकल्पोंमें तादात्म्य शब्दका ठीक अर्थ नही बनता । इस प्रकार शंकाकार तादात्म्यके अर्थको बिगाड करके यह सिद्ध कर रहा है कि अवयव अवयवीमें अत्यन्त भेद है । अब इसका समाधान करते हैं ।

तादात्म्य शब्दके व्युत्पत्त्यर्थका विवरण—प्रमाणका विषय सामान्यविशेषात्मक पदार्थ है । इसका अर्थ है—पदार्थ सामान्य विशेषमें तादात्म्य रखता हुआ है । तो इस तादात्म्य शब्दके अर्थका शंकाकारने तीन विकल्प उठाकर खण्डन करना चाहा था किन्तु उन विकल्पोंमें तादात्म्य खण्डित नही होता । पूछा था कि तादात्म्यका यहांपर किस तरहसे विग्रह करना चाहिए ? तो सुनो ! तादात्म्य शब्दका विग्रह इस तरहसे देखना चाहिए—तादात्म्य शब्दमें हैं दो शब्द—तत् और आत्मा । तत् मायने वस्तु और आत्म मायने स्वरूप ! उस वस्तुकी द्रव्य और पर्याय ये दो आत्मा हैं । और इन दोनों आत्मावोंका जो भाव है उसका नाम है तादात्म्य । अर्थात् भेदाभेदात्मकपना । वस्तुमें जो भेद है वह तो है पर्याय रूपपना और जो अभेद है वह है द्रव्य पर्यायरूपपना । वस्तु भेदाभेदात्मक है । इसका अर्थ है द्रव्य पर्यायस्वभाव है, सो निरख लीजिए । पदार्थ न केवल द्रव्यमात्र निकलेगा और न पर्यायमात्र निकलेगा । द्रव्य पर्यायात्मक समुदायका ही नाम वस्तु है । अब अलग अलगसे अगर पूछा जाय कि द्रव्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तु है या नहीं, या पर्याय वस्तु है या नही ? तो अलग अलग पूछनेपर यह उत्तर आगया कि द्रव्य न वस्तु है न अवस्तु है। इसी प्रकार पर्याय न वस्तु है न अवस्तु है, किन्तु वस्तुका एक देश है। पदार्थमें रहने वाला धर्म जो सामान्य है, द्रव्यरूप है वही पूर्ण वस्तु तो नही और विशेषमें रहने वाला जो विशेष धर्म है पर्यायरूप है वह भी तो वस्तु नही वस्तुका पुर्णरूप नहीं, किन्तु ये सब वस्तुके एक देश है। जैसे कि कोई समुद्रकी एक बूँदके बारेमें पूछे कि बतलावो वह बूँद समुद्र है या नही ? तो उत्तर यह होगा कि यह समुद्रका एकदेश अंश है। यह समुद्रका एक घड़ा प्रमाण जल भी न समुद्र है न असमुद्र है। अगर यह कह दें कि यह समुद्र है तब फिर समुद्रमें डूबें, नहावें, जहाज चलायें, तो घड़ा प्रमाण जलमें जहाज चलाकर देखिये—कैसे चलता है। यदि कहो कि यह समुद्र नही है तो उतने उतने प्रमाण सारे जल हैं, वे समुद्र न रहें तो सारा पानी मिलकर भी समुद्र न कहलायेगा। तो समुद्रका जैसे थोड़ा जल न समुद्र है न असमुद्र है किन्तु समुद्रका एक देश है इसी प्रकारसे सामान्य न वस्तु है न अवस्तु है, किन्तु वस्तुका एकदेश है, इसी प्रकार विशेष पर्याय, यह भी न वस्तु है, न अवस्तु है, किन्तु वस्तुका एक देश है।

तादात्म्य शब्दके अर्थका विकल्पोंसे अखण्डन—सामान्य विशेष होते हैं दो दो प्रकारके। तिर्यक सामान्य और तिर्यक विशेष ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेष जो एक साथ अनेक पदार्थोंमें सदृश धर्म हो वह तो है तिर्यक् सामान्य और तिर्यक् विशेष जो एक साथ अवस्थित पदार्थोंमें विसदृश धर्म हो। ऊर्ध्वता सामान्य एक ही पदार्थमें त्रिकालवर्ती जो सदृशधर्म है वह है ऊर्ध्वता सामान्य। ऊर्ध्वता विशेष एक ही पदार्थमें काल भेदसे जो अवस्थाएँ हु हैं उनमें जो विसदृश धर्म हैं, अवस्थायें हैं वे ऊर्ध्वता विशेष हैं। ये चारों ही वस्तुमें गुम्फित हैं और उन्हींको तादात्म्य माना गया है। तादात्म्यके सम्बन्धमें शंकाकारने एक विग्रह करके दोष दिया था कि तादात्म्यको क्या यह अर्थ है पटके उदाहरणमें घटाकर कहा था कि वह पट है आत्मा जिन तंतुवोंका उनका नाम हैं तादात्म और उसके भावका नाम है तादात्म्य। इस विग्रहमें जो दोष दिया था कि फिर तो वे सारे तंतु एक हो जाने चाहिएँ, क्योंकि पटके साथ तंतुवोंका तादात्म्य हो गया—और पट है एक। तो यह दोष भी नही है। अवस्था विशेषको अपेक्षा देखो तो उन सब तंतुवोंका एकत्व इष्ट ही है। उन सब तंतुवोंकी अवस्था है पट रूप। अब उस पट रूपकी औरसे देखो—जो समस्त तंतु एक हैं, एकत्व में आये हैं, ये तो इष्ट ही हैं। शंकाकारने दूसरा विग्रह करके दोष दिया था—क्या यह विग्रह है कि तंतवः आत्मनस्य वे समस्त ततु जिसके आत्मा हैं, किसके पटके, वे तो हुए तादात्म और उसके भावका नाम हुआ तादात्म्य। इस विग्रहमें चूँकि तंतु अनेक हैं तो पटमें भी अनेक बन बैठेंगे, यह दोष दिया था शंकाकारने, लेकिन यह दोष नही दिया जा सकता। जरा विचार करें कि तंतु अनेक हैं इसलिए पटको भी अनेक बनना पड़ेगा, इसमें पटको अनेक बनना होगा इस अनेकपनेका अर्थ है क्या ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या इस अनेकपनेका अर्थ यह है कि अनेक अवयव रूप बनना ? यदि यह अर्थ मानते हो कि पटको अनेक अवयवरूप बनना पड़ेगा तो यह तो इष्ट ही है, क्योंकि आतान वितान रूपमें आये हुए जो अनेक तंतु हैं वे ही तो कपड़ेके अवयव हैं और कपड़ा उन समस्त अवयवोंमें तादात्म्य रूप है, अवयवात्मक है, उन समस्त तंतुवोंका ही तो पिण्ड पट है, इस कारण अनेकपनेका यदि यह अर्थ किया जाता है कि अनेक अवयवात्मक होना तो यह युक्त बात है। यदि उस पटकी अनेकताका अर्थ यह किया जाय कि प्रत्येक तंतु पट कहलायेंगे तो यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है। प्रत्येक तंतुमें परिणाम कहाँ है। समुदित होकर उन ततुवोंमें आतान वितान रूप जो परिणाम है वही तो तंतुवों में देखा जा रहा है और आतान वितान रूप परिणाममें आये हुए जो तंतु हैं वे ही पट की आत्मा है तो इसमें कौन सा विरोध है इससे तादात्म्यका अर्थ ठीक बैठ जाता है। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है. यह अर्थ बिल्कुल युक्त हो गया, इस कारण न केवल सामान्य मानो, न केवल विशेष मानो। है ही नही ऐसा स्वरूप। तो प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है।

भेदाभेदात्मक वस्तुमें संशयादि दोषोंकी असिद्धि तथा संशयदोषकी असिद्धिका प्रतिपादन—अब शंकाकार कहता है कि तंतु और पटमें इसी प्रकार अन्य दृष्टान्तोंमें कथञ्चित् भेदाभेदात्मकपना जो माना है वह बात अयुक्त है, क्योंकि भेदाभेदात्मक माननेमें संशयादिक अनेक दोष उपस्थित होते हैं। वे कितने दोष आ जाते हैं ? कथञ्चित् भेदाभेदात्मककी मान्यता करनेमें ? संशय, विरोध, वैयधिकरण उभय, संकर, व्यतिकर, अनवस्था, अभाव। ये सारे दोष उपस्थित होते हैं। जैसे कि वस्तुको माना कथञ्चित् भेदरूप कथञ्चित् अभेदरूप, तो यहां यह संशय हो जाता है है कि भला किस रूपसे तो इतमें भेद है तंतु और पटमें और किस तरहसे अभेद है ? कथञ्चित् भेदाभेद शब्द सुनकर यह संशय हो जाता है, क्योंकि भेदाभेदात्मकपना माननेपर किसी असाधारण आकारका निश्चय नही कर सकते तो फिर बात है क्या, भेद है या अभेद ? ऊहापोहमें उपयोग भ्रमानेका नाम तो संशय है। समाधानमें कहते हैं कि वस्तुको भेदाभेदात्मक माननेपर संशयादिक कोई दोष नही लग सकता, जिनपर क्रमसे विचार करके निर्णय कर लीजिये। देखो ! भेद और अभेदकी अप्रतीतिमें संशय हो सकता है, पर भेद और अभेद जहां जाने जा रहे हैं वहां संशयका काम क्या ? देखो ! कुछ अंधेरे-उजेलेमें घूमने जो चले तो थोड़ी दूर खड़ा हुआ ठूठ दीखा। अब उसमें जो संशय बन गया कि यह ठूठ है या पुरुष है ? तो यह संशय तो तभी बना जब ठूठ और पुरुषमें प्रतीति नही हो रही। न ठूठ समझा जा रहा, न पुरुष तो दोनोंमें अप्रतीति होनेरूप ही संशय हो रहा है, तो यों ही न भेद समझा जा रहा हो, न अभेद समझा जा रहा हो, दोनोंकी अप्रतीति बने तब तो संशय कहलायेगा, मगर वस्तुमें जब भेदकी प्रतीति हो रही है और अभेदकी भी प्रतीति हो रही है तो फिर संशयका कहां स्थान रहा ? जैसे कि ठूठ भी जाननेमें आ रहा हो और पुरुष भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाननेमें आ रहा हो तो उसके संशय फिर रहा कहाँ ? चलित प्रतीतिका ही तो नाम संशय है। पुरुष है या ठूठ ? ऐसी प्रतीति हो तो संशय है। इसी तरह वस्तुमें यदि ऐसी चलित प्रतीति बने कि भेद है या अभेद ? कुछ समझमें नही आ रहा तब तो संशयका रूप बना, पर जहाँ वस्तुमें दोनों बातें समझमें आ रहीं —लो यह है भेद, लो यह है अभेद, तब वहाँ संशयका क्या काम ? देखो ! जब पदार्थको हम द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो अभेद नजर आता है। तो द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा अभेद है। जब पर्यायदृष्टिसे निरखते हैं तो वहाँ भेद समझमें आता है, तो पर्यायदृष्टिसे भेद है। जैसे कोई किसी पुरुषके बारेमें कहे कि वह पिता भी है और पुत्र भी है तो दोनों बातें जब समझ में आ रही हैं कि अमुकका पिता है अमुकका पुत्र है। ये दोनों बातें सही हैं, तो दोनों की जब प्रतीति बन रही है तो संशय तो नही कहा जा सकता। हाँ यदि अप्रतीति हो जाय —यह पिता है या पुत्र ? तो संशय कहलाया ! तो यों ही जब वस्तुमें भेद और और अभेद दोनोंकी बराबर प्रतीति हो रही है तो संशयका क्या अवकाश ?

भेदाभेदात्मक वस्तुमें, भेद और अभेदमें विरोधदोषकी असिद्धि— अब शंकाकार कहता है कि वस्तुको भेदाभेदात्मक माननेमें विरोध आ रहा है, क्योंकि जहाँ अभेद है वहाँ भेदका विरोध है. जहाँ भेद है वहाँ अभेदका विरोध है। अभेद है तो भेद कैसा ? भेद है तो अभेद कैसा ? जैसे शीत और उष्ण स्पर्श ! यदि कहीं शीतस्पर्श है तो उष्ण तो नही होता। जहाँ उष्ण स्पर्श है वहाँ शीत स्पर्श तो नही होता। इसी प्रकार वस्तुमें यदि भेद है तो अभेद नही हो सकता, यदि अभेद है तो भेद नही हो सकता, इस कारण वस्तु भेदाभेदात्मक नही है। और जब भेदाभेदात्मक नही है वस्तु तो वह सामान्यविशेषात्मक भी नही है। अब इसके समाधानमें कहते हैं कि वस्तुमें भेद और अभेद इन दोनोंका विरोध नही है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायकी अपेक्षासे भेद और अभेद विवक्षित है। जैसे कि विवक्षाके अनुसार सत्त्व और असत्त्व दोनोंका एक वस्तुमें विरोध नही है। वस्तु अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है। तो देखो ! वस्तुमें अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही हो गए ना ! जब हम वस्तुके स्वरूपकी अपेक्षा करते हैं तब उसमें सत्त्व प्रतीत होता है। जब हम परवस्तुकी अपेक्षा करते हैं तो उस अपेक्षासे वस्तुमें नास्तित्व हो गया। तो जैसे विवक्षित सत्त्व और असत्त्वका एक पदार्थमें विरोध नही है इसी प्रकार विवक्षित भेद और अभेदका एक पदार्थमें विरोध नही है और भेदाभेदात्मक रूपसे पदार्थकी प्रतीति भी हो रही है। जो बात प्रतीतिमें आ रही है उसका विरोध कैसे कहा जायगा ? क्योंकि विरोध तो अनुपलम्भ साध्य है, अर्थात् न पाया जाय तो समझ लेना चाहिये कि विरोध है, पर भेद भी पाया जा रहा है वस्तुमें, अभेद भी पाया जा रहा है। त्रिकाल अन्वयरूपसे रहने वाला सामान्य तत्त्व भी पाया जा रहा है और प्रतिक्षण भिन्न भिन्न रूपसे रहने वाले विशेष तत्व पाये जा रहे हैं तो विरोध कैसे ? जैसे कि वस्तुका सर्वथा सद्भाव होना स्वरूप नही है। क्या घटका सर्व अपेक्षाओंसे सत्व है ? यदि घड़ा घट आदिककी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपेक्षासे भी सत् है, तब घटका सत्व खतम ! यों ही वस्तुका सर्वथा अभाव होना भी स्वरूप नहीं है। यदि वस्तुका सब प्रकारसे सद्भाव होना स्वरूप बन जाय तो अपने स्वरूपसे जैसे सत् है उसी प्रकार पररूपसे भी वह सत् बन बैठेगा। इसी तरह वस्तुमें सर्वथा अभाव भी नहीं है। यदि वस्तुमें सर्वथा नास्तित्व मान लिया जाय तो जैसे पररूपसे नास्तित्व है, इसी प्रकार स्वरूपसे भी नास्तित्व आ जायगा। तो जैसे सत्व और असत्व ये सर्वथा नहीं हैं, अपेक्षाओंसे हैं, यों भेद अभेद भी अपेक्षासे है। यदि वस्तुमें सर्वथा भेद मान लिया जाय तो वह भेद, वह विशेष कैसे अन्वयमें रह सकता है ? भेदका भी अभाव हो जायगा ? यदि वस्तुमें सर्वथा अभेद मान लिया जाय तो वस्तुका कोई व्यक्त रूप ही न बन सकेगा। तो अभेद भी दृष्टिसे ओझल हो जायगा। इस कारण वस्तु कथंचित् भेदाभेदात्मक है। जो भेद स्वरूप है वह तो है विशेषत्व, और जो अभेद स्वरूप है वह है सामान्य तत्व। तो यों पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, और ऐसा ही पदार्थ प्रमाणका विषयभूत होता है।

अपेक्षणीय भेदके निमित्तसे भिन्न-भिन्न धर्मोंकी एक वस्तुमें अबाध प्रतीति—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य तो द्रव्यरूप और अभेदरूप है, विशेष पर्यायरूप और भेदरूप है। सो चाहे पदार्थको सामान्य विशेषात्मक कहो, द्रव्य पर्यायात्मक कहो, आशय प्राय: एक है। इस प्रसङ्गमें शंकाकार यह आपत्ति बता रहा था कि वस्तुको भेदाभेदात्मक माननेसे तो विरोध आयगा। जो भेद है वह अभेदस्वरूप कैसा, जो अभेद है, वह भेदस्वरूप कैसा ? तो उसका उत्तर चल रहा है कि जैसे जो अभेद है वह भेदस्वरूप कैसा ? तो उसका उत्तर चल रहा है कि जैसे भाव और अभावका सत्व और असत्वका एक वस्तुमें विरोध नहीं है क्योंकि उनकी अपेक्षायें न्यारी-न्यारी हैं। जैसे कि स्वरूपसे सत्व होना, पररूपसे असत्व होना इसी तरहसे भेद और अभेदका भी एक वस्तुमें विरोध नहीं है। द्रव्यदृष्टिसे अभेद होना, पर्यायदृष्टि से भेद होना उसमें ये दो अपेक्षायें हैं। यहाँ शंकाकार कहता है कि ये दो बातें पृथक पृथक नहीं हैं। स्वरूपसे होनेका नाम ही पररूपसे न होना है। और, पररूपसे न होने का नाम ही स्वरूपसे होना है। कोई दो बातें नहीं हैं—सत्व और असत्व जिसको एक पदार्थमें समावेश बताकर विरोधका अभाव अथवा अभेद सिद्ध कर रहे हो। उत्तर देते हैं कि स्वरूपसे होनेका ही नाम पररूपसे अभाव हो सो बात नहीं. पररूपसे अभाव होनेका ही नाम स्वरूपसे भाव हो सो बात नहीं, क्योंकि इसमें अपेक्षणीय निमित्तसे भेद है। यदि यही अर्थ होता स्वत: तो अपेक्षा और दृष्टि लगानेकी जरूरत क्या थी ? देखो ! स्वद्रव्यादिक निमित्तकी अपेक्षा करके तो सत्वका ज्ञान उत्पन्न करता है पदार्थ और परद्रव्यादिककी अपेक्षा करके अभेद प्रत्ययका ज्ञान किया जाता है। जैसे कि एकत्व और द्वित्व ये दो संख्यायें हैं। एकत्व तो अपनी अपेक्षासे माना गया है और द्वित्व परकी अपेक्षासे माना गया है। जब तक अन्य चीज न हो तब तक द्वित्व तो नहीं कहा जा सकता। तो जैसे स्व अपेक्षासे एकत्व है उसी तरह परकी अपेक्षासे द्वित्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, यों ही सत्व और असत्वमें भी भेद है। स्वकी अपेक्षासे सत्व है और परकी अपेक्षा से असत्व है। तो अपेक्षणीय निमित्तका भेद होनेसे अभाव और भावको एकरूप नही कह सकते वे दो आशय हैं, दो धर्म हैं और उनका एक वस्तुमें अविरोध रूपसे रहना बन रहा है। कहीं ऐसा नही है कि एक द्रव्यमें अन्य द्रव्यकी अपेक्षा करके प्रकट हुई द्वित्व आदिक संख्या रखने वाली एकत्वकी संख्यासे अन्य न प्रतीति होती हो अर्थात् द्वित्व और त्रित्व आदिक जो अनेक संख्यायें हैं वे द्रव्यान्तरकी अपेक्षासे ही बनती हैं। एकत्वमें द्रव्यान्तरकी अपेक्षा नही होती और न ऐसा ही है कि वह एकत्व द्वित्वादिक संख्या संख्यावानसे अत्यन्त भिन्न ही रहती हो। अगर संख्या सख्यावान पदार्थसे अलग ही रहती हो तो पदार्थमें असंख्येयता बन बैठेगी क्योंकि पदार्थोंमें तो संख्याका कोई विचार या सम्बन्ध ही नही रहा। संख्या पदार्थोंसे भिन्न मान ली गई। यदि कहो कि संख्याके समवायसे संखेयपना आ जायगा—ये पदार्थ दो हैं, चार हैं, गिनने योग्य हैं, ऐसा जो संखेयपना है वह संख्याके सम्बन्धसे है। कहते हैं कि यह भी बात भली नही जच रही है, क्योंकि समवाय कथञ्चित् तादात्म्यको छोडकर अन्य कुछ भी नही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अपेक्षणीय निमित्तके भेदसे एकत्व द्वित्व आदि संख्याकी तरह सत्व असत्वमें भेद है और इसी तरह भेद और अभेद ये भी दो धर्म न्यारे-न्यारे स्वरूपके हैं। और इनका भी एक वस्तुमें समावेश है। भिन्न-भिन्न सत्व असत्वका एक वस्तुमें बराबर ज्ञान हो रहा है ना, तो कैसे विरोध है? देखो! स्पष्ट बोध हो रहा है चौकी चौकी है, चौकीके सिवाय अन्य सारे पदार्थ नही हैं। तो सत्व और असत्व दोनोंका ज्ञान अपेक्षणीय निमित्तके भेदसे बराबर चल रहा है। इसी तरह द्रव्यत्व और पर्यायत्वकी अपेक्षासे अभेद और भेदका भी प्रत्यय हो रहा है, उसका विरोध नही है अर्थात् पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है, भेदाभेदात्मक है इन दोनों धर्मोंका विरोध नही है

सामान्य और विशेषके एक पदार्थमें रहनेका अविरोध—शंकाकार कहता है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है' वस्तुमें भेद और अभेद दोनों अविरोध रूप से रहते हैं यह तो मिथ्या प्रतीति हो रही है। उत्तर देते हैं कि यह बात असंगत है, क्योंकि इसमें कोई बाधक है ही नही। स्पष्ठ प्रत्यक्षसे जान रहे, युक्ति अनुमानसे भी समझ रहे, भेद और अभेदसे एक वस्तुमें बराबर समावेश है। शंकाकार कहता है कि विरोध तो बाधक है। भेद और अभेद जो एक दूसरेके निषेधात्मक हैं, बिल्कुल विरूद्ध हैं तो यह विरोध बाधक है। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही। इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। जब विरोध सिद्ध होने लगे तब तो इस ज्ञानके बाधित होनेसे मिथ्यात्व की सिद्धि हो और जब ज्ञानमें मिथ्या पनकी सिद्धि हो तब विरोधकी सिद्धि हो। तो देखिये-विरोध नाम है किसका? विरोधका निश्चय बनता कैसे है? सम्पूर्ण कारण वाला कोई एक पदार्थ हो रहा है। जैसे कि ठंढ वातावरण है, वहाँ पर ठंढा हो रही है तब द्वितीय चीज आ जाय अर्थात् कोई उष्ण वस्तु आ जाय तो ठंढका अभाव हो

Version 1

जाता है। इससे समझा गया है कि शीत स्पर्शमें और उष्ण स्पर्शमें विरोध है परन्तु यहाँ ऐसा नही देखा जा रहा कि भेदके सन्निधान होनेपर अभेदका अभाव हो जाय अथवा अभेदके सन्निधान होनेपर भेदका अभाव हो जाय यह बात यहाँ नही देखी जा रही, अर्थात् पदार्थमें द्रव्यत्व होनेपर भी पर्यायत्व बराबर चल रहा है। पर्यायत्व होने पर भी द्रव्यत्व भी बराबर बन रहा है। वहाँ तो कुछ भी विरोध नहो।

सामान्य विशेषमें सहानवस्थानरूप विरोधका अभाव—यदि भेद अभेद में सामान्य विशेषमें विरोध ही मानते हो तो यह बतलावो कि किस प्रकारका विरोध है भेद और अभेदमें सामान्य और विशेषमें ? क्या एक साथ न रह सकता इस तरह का विरोध है इन दोनोमें या एक दूसरेके हटाकर ही रह सके ऐसे स्वभावका होना इस प्रकारका विरोध है या वध्य–घातक रूप विरोध है याने एक दूसरेको मार डाले, दूसरा मर जाय, इस प्रकारका विरोध है। इन तीन प्रकारके विरोधोंसे अतिरिक्त और तो कोई विरोधका लक्षण होता नही है। तो भेद अभेदमें सामान्य विशेषमें किस प्रकारका विरोध है ? एक साथ न रह सके इस प्रकारका विरोध तो इसमें है नही। क्योंकि ये भेद और अभेद यद्यपि एक दूसरेके स्वरूपसे विपरीत हैं। ये अपने आपमें अपना–अपना स्वरूप रख रहे हैं, किन्तु एक ही आधारमें भेद अभेद दोनों ही एक दूसरे को हटाये बिना अविरोध रूपसे प्रतिभास मान हो रहे हैं, जैसे कि सत्त्व और असत्त्व, ये दोनों बातें एक वस्तुमें एक साथ प्रतिभासमान हो रही हैं, और वहाँ यह बात नही है कि सत्त्व असत्त्वको हटा दे और असत्त्व सत्त्वको हटा दे। दोनों ही रहते हैं। इसी प्रकार द्रव्य पर्याय अथवा सामान्य विशेष या भेद अभेद ये परस्पर एक दूसरेको अलग किए बिना एक पदार्थमें अविरुद्ध रूपसे रह रहे हैं, यद्यपि इनका स्वरूप एक दूसरेसे विपरीत है पर अपेक्षणीय निमित्तके भेदप ये दोनों भिन्न स्वरूप वाले होकर भी एक पदार्थमें रह रहे हैं, इस कारण सहानवस्थारूप विरोध तो इसमें कहा नही जा सकता।

विद्यमानोंमें ही परस्पर परिहार स्थिति हो सकनेसे एक पदार्थमें सामान्य विशेष धर्मके होनेका अविरोध—यदि कहो कि इसमें परस्पर परिहार स्थितिरूप विरोध है सो इसकी भी बात सुनो। परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध उनमें ही हो सकता है जो एक साथ रहते हों। जैसे एक आम फलमें रूप, रस ये दोनों रहते कि नही रहते ? रहते और रसका परिहार करता हुआ रहता है, याने रूपका स्वरूप रसस्वरूप तो नही बन जाता, रसका स्वरूप रूपस्वरूप तो नही बन जाता। तो परस्पर परिहार करके रह रहे हैं दोनों और बराबर एक पदार्थमें रहते हैं, तो परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध तो विद्यमानोंमें हुआ करता है, अविद्यमान पदार्थोंमें नही हुआ करता। जैसे गधेका सींग और घोड़ेका सींग इन दोनोंमें क्या कोई विरोध होता है ? विरोधकी कोई बात ही नही है। परस्पर परिहार क्या करे ? वह स्वयं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

असत् है, अथवा दोमें एक हो असत् तो उनमें भी परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध नहीं चल सकता। तो जैसे ऐक ही आम फलमें रूप और रस परस्सर परिहार स्थिति रूपमें रह रहे हैं और उनका एक अधिकरण बराबर बन रहा है इसी तरह सामान्य विशेषका भेद अभेदका भी एक पदार्थमें रहना बनता है और स्वरूप दृष्टिसे वे दोनों परस्पर परिहार स्थिति रूपसे रहते हैं।

धर्म और धर्मीमें परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध असंभव होनेसे एक पदार्थमें अनेक धर्मोंकी अविरोध रूपसे वृत्ति—अच्छा अब यह बतलावो कि यह विरोध जो परस्पर परिहारस्थिति रूप कह रहे हो—क्या दो धर्मोंमें बता रहे हो या धर्म और धर्मीमें परस्पर बता रहे हो अर्थात् क्या तुम्हारा यह आशय है कि दो धर्मोंमें परस्पर परिहारस्थिति रूप विरोध है या तुम्हारा यह मतलब है कि धर्म और धर्मीमें, गुण और गुणीमें परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध है। यदि कहो कि धर्म धर्मोंमें है विरोध कि वे परस्पर एक दूसरेका परिहार करते हुए ही रह सकते हैं। उत्तर देते हैं कि यह बात तो युक्त ही है। धर्मोंका तो यह लक्षण है कि दूसरे का परिहार करके रहा करें अर्थात् कोई सा भी धर्म दूसरे धर्मके स्वरूपको अंगीकार नही करता। अन्यथा वह धर्म ही क्या रहेगा ? तो यह धर्मोंका लक्षण ही है कि वह दूसरेका परिहार करके हुए अपने स्वरूपको बनाये रहे, मगर उन सब धर्मोंका एक ही धर्ममें रहना रहे इसमें कोई विरोध नही है। जैसे एक आमफलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों धर्म रह रहे हैं और ये चारों धर्म परस्पर एक अन्य तीनके स्वरूपको अंगीकार नही करते और फिर भी एक फलमें रह रहे हैं तो इसी तरह सामान्य विशेष भेद अभेद ये यद्यपि परस्पर एक दूसरेके स्वरूपका परिहार करके ही रह सकते हैं, लेकिन इसका ऐकाधिकरण बराबर है याने वे एक अधिकरणमें रह सकते है। इसमें किसी प्रकारका विरोध नही है। यों धर्मोंमें विरोधकी बात कहते हैं तो यह कोई समस्याकी बात नही है। यदि कहो कि धर्म और धर्मीमें विरोध है तो यह बात अयुक्त है, क्योंकि धर्म और धर्मीमें विरोध हो जाय। ज्ञान और आत्मामें विरोध हो जाय। रूप और पुद्गलमें विरोध हो जाय तो धर्मीमें धर्मकी प्रतीति ही न होगी। पर ऐसा तो नही है। बराबर धर्मीका ज्ञान हो रहा है और उसमें धर्मोंका निर्बाध प्रतिभास हो रहा है। इससे धर्म धर्मीका परस्पर परिहारस्थिति रूप भी विरोध नही कह सकते।

सामान्यविशेषमें वध्यघातकरूप विरोधका अभाव—भेद अभेदके विरोध में शंकाकारसे पृष्टव्य तीसरा जो विकल्प है कि भेद अभेदमें बध्य घातक भावरूप विरोध होगा, तो देखो ! बध्य घातक भावरूप विरोध होता है—बलवान और निर्बल में जैसे सर्प और नेवला। कभी सर्प बलवान है तो नेवला बध्य हो जाता है, कभी नेवला बलवान है तो सर्प बध्य हो जाता है, तो बलिष्ठ और निर्बलोंमें बध्य घातक भावरूप विरोध जाना गया है। मगर सत्व और असत्वमें कौन तो बलवान है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कौन दुर्बल है ? उनमें बध्य घातक भावरूप विरोध नही है। सत्व असत्वमें बध्यपना घातकपना नही है। अच्छा बतलावो ! एक पदार्थमें सामान्य विशेष रहता है तो उनमें कौन बलवान है और कौन दुर्बल है ? दोनों ही समान बलवान हैं, इस कारण सामान्य विशेषमें भेद अभेदमें भी परस्पर बध्य घातक भावरूप विरोध नही है, क्योंकि भेद अभेद अथवा सत्व असत्व, अपना सामान्य विशेष, नित्यत्व अनित्यत्व, द्रव्यत्व पर्यायत्व आदि सब धर्म अपनी अपनी अपेक्षामें पूर्ण समान बलवान हैं।

सर्वथा अथवा कथंचित् विरोधके विकल्पोंका प्रकरण करके एक वस्तु में धर्मोंके अविरोधकी सिद्धि—भेद और अभेदमें किसी भी प्रकारका विरोध सिद्ध नही हो सकता, अर्थात् न सहानवस्थारूप दोष है, न परस्पर परिहारस्थितिरूप विरोध है, न बध्य घातकरूप विरोध है। कदाचित् थोड़ी देरको स्वीकार भी कर लिया जाय कि किसी भी प्रकारका विरोध है भेद और अभेदमें तो भी यह बतलावो कि भेद और अभेदमें सर्वथा विरोध है या कथंचित् ? सर्वथा विरोध तो कह नही सकते। सर्वथा विरोध तो तुम्हारे दिये गए दृष्टान्तमें भी न मिलेगा। शंकाकारका दृष्टान्त है शीतस्पर्श और उष्णस्पर्श। इन दोनोंमें परस्पर सर्वथा विरोध नहीं है, क्योंकि शीतस्पर्श भी सत् है, उष्णस्पर्श भी सत् है। तो सत्व धर्मसे दोनोंमें समानता है अर्थात् सत्वकी दृष्टिसे शीत और उष्णमें विरोध नही रहा। और, एक आधारकी अपेक्षा भी देखो, तो एक धूपदहनमें किसी जगह शीतस्पर्श है और किसी जगह उष्णस्पर्श है, तभी तो धूपदहन उठाकर इधरसे उधर रख देते हैं। यदि यह कहो कि गर्म और ठंढे प्रदेशोंमें भेद है अर्थात् धूपदहनमें हैं बहुतसे अवयव, सो उसमें कोई हिस्सा ठण्ढा है और कोई गर्म। एक ही तो ठण्ढा और गर्म न बन सका। उत्तर देते हैं कि भले ही हो प्रदेशमें भेद, लेकिन धूपदहन जो एक पिण्ड है उस एककी अपेक्षा तो भेद नही है। वह एक धूपदहन देखो ! कहीं ठण्ढा है और कहीं गर्म है। यह तो कह ही नही सकते कि एक धूपदहन ठण्ढा है तो ठण्ढा ही है, गर्म है तो वह गर्म ही है। कहीं शीत है कहीं उष्ण, दोनों धर्मोंका आधार है यह धूपदहन ! इसका निषेध तो कर नही सकते, क्योंकि निषेधमें प्रत्यक्ष विरोध है। हाथसे उठाकर, छूकर देख लिया, एक ही धूपदहन कहीं शीत मिलेगा तो कहीं उष्ण मिलेगा। एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह रखते हैं ही जब चाहे, सो इसमें सर्वथा विरोध नही है। और कथंचित् विरोधकी बात कहोगे तो यह विरोध सर्वत्र समान हो जायगा याने इस तरहका विरोध तो अत्यन्त भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भी दिखा सकते हैं जैसे घट और पट। घटमें जो आकार है उसका पट में अभाव है, तो क्या विरोध हो गया ? अथवा स्वरूपकी दृष्टिसे विरोध कहें तो वह इष्ट ही है। भेदका जो स्वरुप बुद्धिमें आता है वही अभेदका स्वरुप नही है, अभेदका का जो स्वरुप बुद्धिमें आता है वही भेदका स्वरूप नही है, सो स्वरुप जुदा है, इसका खण्डन नही किया जा रहा है, किन्तु अपना-अपना लक्षण रखकर भी भेद और अभेद धर्म एक ही पदार्थमें रह रहे हैं, यह कहा जा रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विरोधकी भावोंसे भिन्नता व अभिन्नताके विकल्पोंकी मीमांसा करके एक वस्तुमें धर्मोंके अविरोधकी सिद्धि—अच्छा, अब और भी बताओ कि विरोध रहा भावोंके साथ, तो वह विरोध उन भावोंसे भिन्न है या अभिन्न है ? जैसे भेद और अभेदमें विरोध बता रहे तो बतावो उस भेद व अभेदसे विरोध न्यारी चीज है या उन ही रुप है जिन भावोंसे विरोध बता रहे हो ? जैसे सामान्य और विशेषमें विरोध कह रहे हो तो वह विरोध सामान्य विशेषसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है तो विरोध करने वाला रह ही न सका। जो पदार्थसे अभिन्न है वह क्या पदार्थका विरोध कर सकता है ? जैसे पदार्थोंसे स्वरुप अभिन्न है तो पदार्थोंका स्वरुप पदार्थका विरोधक बन जायगा क्या ? तो यहां विरोधको भी पदार्थोंसे अभिन्न मान लिया। जब विरुद्ध पदार्थोंसे अभिन्न मान लिया तो फिर विरोधक हो नही सकता और अभिन्न होनेपर भी अगर विरोधक मान लेते हो तो जैसे भावका विरोधक विरोधको कह रहे हो तो हम यह कह बैठेंगे कि विरोधका विरोधक भाव है। जब भाव और विरोध दोनों एक स्वरुप हो गए तो उनमेंसे विरोधको भावका विरोधक कहें और भावको विरोधका विरोधक न कहें, यह विभाग कैसे बन सकता है ? यदि कहो कि विरोध भावोंसे भिन्न है तो वह भी विरोधक नही है, क्योंकि विरोध तो भिन्न हो गया, अनात्मभूत हो गया। तो जैसे अन्य–अन्य पदार्थ एक दूसरेके विरोधक नही होते हैं इसी प्रकार विरोध भी भावोंका विरोधक न होगा। जैसे घटका पट विरोधी तो नही। एक जगह एक घरमें एक कमरेमें घट और पट दोनों रह सकते हैं। घटपर कपड़ा ढांक भी देते हैं, घटमें छन्ना रख देते हैं, क्योंकि भिन्न हैं, भिन्न विरोधक कैसे होगा ? इस तरह भावोंसे भिन्न मान लिया विरोधको तो विरोधभावका विरोध नहीं कर सकते।

भावोंका विशेषण बनाकर विरोध सिद्ध करनेकी अशक्यता—यदि कहो कि विरोध यद्यपि भावोंसे भिन्न है तो भी भावका विरोधक है, क्योंकि भावोंका विशेषण बन गया विरोध। जैसे सामान्य विशेषका विरोध। तो सामान्य विशेष तो हो गए विशेष्य और विरोध हो गया विशेषण। जैसे इस मनुष्यकी कमीज–तो मनुष्य तो हो गया विशेष्य और कमीज हो गयी विशेषण, तारीफ करने वाली, लेकिन सामान्य विशेषका घड़ा यों तो कोई नही कहत', क्योंकि घड़ो उसका विशेषण नही या जिसका जो विशेषण नही वह विरोधक नही, मगर विरोध तो भावोंका विशेषण है इस कारण विरोध भावोंका विरोधक बन जायगा, अन्य भाव न बनेंगे, क्योंकि भावान्तर विशेषण नही बनता। इसका समाधान करते हैं कि यह बात यों युक्त नही कि विरोध होता है तुच्छरूप अभाव। विरोध मायने क्या ? क्या विरोधके अंग हैं, कि अवयव है, कि सत्त्व है, कि सकल सूरत है। विरोध तो तुच्छाभाव रूप हुआ करता। और तुच्छाभावरुप विरोध यदि भावोंका विशेषण बन जाय तो भावोंका लोप हो जायगा। जैसे शीत और उष्ण पदार्थोंका विरोध है यों कहा। अब विरोध है शीत उष्ण पदार्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषण और विरोध है तुच्छाभावरुप, तो अभाव जिसका विशेषण है सो जैसा अभाव है वैसा ही भाव हो पड़ेगा। तो जैसे अभाव न देखनेकी बात है इसी तरह वे पदार्थ भी न दीखेंगे, क्योंकि विरोधका याने अभावका उन शीत और उष्ण पदार्थोंमें सम्बन्ध है। शीत और उष्ण द्रव्यके वे विशेषण हैं। यदि कहो कि भावसे विरोधका, अभाव का सम्बन्ध नहीं है फिर भी वह विशेषण बन जाता है। जैसे शीत उष्णका विरोध। इस विरोधी अभावका शीत उष्णसे सम्बन्ध नहीं है फिर भी विशेषण बन गया है। जैसे कहते हैं ना कि यह विरोध है शीत उष्णका, यह विरोध है सामान्य विशेषका। अब इसका उत्तर देते हैं कि विरोधका भावसे सम्बन्ध न होनेपर भी विशेषण मान लोगे तो बड़ी बिडम्बनायें हो जायेंगी। जो चाहे विरोध हो, जिस चाहेका विरोध बन बैठे, क्योंकि बिना सम्बन्धके ही जब विरोध विशेषण बनने लगा तो जैसे कहा शीत उष्णका विरोध। अब उस विरोधका भी शीत उष्णके साथ सम्बन्ध है नहीं तो विरोध है पुरुष और मकानका, यों विरोधको जहाँ चाहे थमक दिया जाय।

विरोधको अन्यतर पदार्थका विशेषण बताकर विरोध सिद्ध करनेकी अशक्यता—अब शङ्काकार कहता है कि विरोध विशेषण तो है पर उन दो पदार्थोंमें से एकका विशेषण बनता है याने विरोध दोनोंका विशेषण नहीं। जैसे कि कहनेमें भी आता कि शीतका विरोधी उष्ण है तो विरोध एकमें रहा ताकि वह उसके साथ न रह सके तो उन दो पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थका विशेषण माना जायगा ऐसी शंका की गई है। अब उसका उत्तर देते हैं कि इसमें भी यही दूषण आता है कि विरोध जिसका विशेषण हो उसका अदर्शन हो जायगा। शीत और उष्णमेंसे यदि विरोध शीतका विशेषण है तो शीत खतम, फिर विरोध किसमें दिखाते हो? और जिसका भी विशेषण दिया जाय वही विरोधी रहा, परस्पर विरोध तो न रहा। एक पदार्थमें विरोध नहीं हुआ करता है, विरोध तो द्विष्ठ होता है अर्थात् दो पदार्थोंमें रहा करता है। यदि विरोध दो पदार्थोंमें न रहे, एकमें ही रह जाय तो सभी पदार्थोंमें सदा ही विरोधका प्रसङ्ग आ जायगा, कोई चीज ही न रह सकेगी। जैसे कि सत्ताके संबंध में सद्रूप कहलाता ना पदार्थ, तो अब विरोध तो एकमें ही रहने लगा। सत् भी विशेषण है तो वह भी विरोधरुप हो गया। यदि न सत्व रहेगा, न रुपादिक स्वभाव रहेंगे तो फिर कुछ भी न रहा। जब विरोध एक पदार्थमें ही रहने लगा तो सकल शून्य हो जायगा।

विरोध्यविरोधकभाव सम्बन्धकी अपेक्षासे उभय विशेषण कहकर विरोधको सिद्ध करनेकी अशक्यता—अब शङ्काकार कहता है कि विरुध्यमानपना और विरोधपना इनकी अपेक्षासे कर्म और कर्तामें रहने वाला विरोध है अर्थात् विरोधक होना, विरोधी बनना, यह तो हुआ कर्तारुप और विरुध्यमानपना रहना यह हुआ कर्मरुप। जैसे कि शीत जगहमें उष्ण पदार्थ लाया गया तो उष्ण तो हुआ विरोधक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

और शीत हुआ विरुध्यमानपना और विरोधकपना इनकी अपेक्षासे कर्म और कर्तामें रहने वाला विरोध बन गया और विरोध सामान्यकी अपेक्षासे दोनोंका विशेषण भी बन गया। इससे वह विरोध द्विष्ठ बन गया। देखो ! अब दोमें रहने लगा, पर दोमें इस तरहसे रहने लगा कि एकमें विरोधकत्वरुपसे और एकमें विरुध्यमानत्वरुपसे। यदि समानतासे दोनोंमें विरोध मानते होते तो दोनोंका अभाव होता, पर यहां माना जा रहा है कर्म कर्तामें रहने वाला विरोध, तो उससे भावका अभाव न हो पायगा। हां एकका अभाव हो गया। तो विरुध्यमानपना और विरोधपना इसकी अपेक्षासे रहने वाला विरोध है। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं कि यदि विरोध्य और विरोधक भाव इस सम्बन्धकी अपेक्षासे विरोध माना है तो रूपादिकमें भी द्विष्ठताकी आपत्ति हो जायगी, क्योंकि रूपमामान्य भी द्विष्ठ है, दोमें रहने वाला है। इस समय शंकाकार यह कह रहा था तो विरोध अभावरूप तो नही है, पर गुणरुप है। तो यदि विरोध गुणरुप हो गया और गुणरुप होकर दोनोंमें रहने लगा तो गुण तो रुपादिक भी है। जो गुण होता है वह दोनोंमें रहता है। तो रुप भी द्विष्ठ हो जायगा, दोमें रहने वाला हो जायगा पर ऐसा हो जाय तो पदार्थोंमें संकरता आ जायगी। कोई पदार्थ न रहेगा। यदि कहो कि विरोध अभावरुप है तो फिर सामान्य और विशेषपने का अभाव नही बन सकता क्योंकि विरोध अभावरुप है और अभावका कोई प्रभाव नही होता। यदि कहो कि अभाव गुणरुप है तो यह बात यों नहीं बनती कि गुणमें विशेषणपना नहीं माना। निर्गुणा: गुणा: गुण गुण रहित होते हैं। अब सामन्य विशेष तो खुद गुण है, खुद धर्म है, भेद अभेद तो खुद धर्म है फिर उनमें विरोध नामका एक गुण कहाँ से आ जायगा ? तो इस तरह सामान्य विशेषमें किसी भी प्रकारका विरोध सिद्ध नहीं होता।

प्रमेयके सामान्य विशेषात्मकत्वकी प्रमाण सिद्धता—सामान्य विशेष तो एक वस्तुके धर्म हैं, स्वतन्त्र हैं। उन धर्मोंमें परस्पर स्वरूप नहीं जा रहा, यह बात तो है, अर्थात् सामान्यका जो स्वरूप है वह विशेषमें नहीं घटित होता है, विशेषका जो स्वरूप है वह सामान्यमें नहीं घटित होतापर सामान्यविशेष एक पदार्थमें रहें इसमें कोई विरोध नही। जैसे कि आत्मामें ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक अनेक गुण हैं तो इन गुणोंका जो परस्परमें विरोध है अर्थात् एक गुणका जो स्वरूप है वह अन्य गुणमे नही बनता। ज्ञानका स्वरूप ज्ञानमें ही है, दर्शन आनन्द आदिकमें नही है। आनन्द का स्वरूप आनन्दमें ही है, अन्य गुणमें नही हैं, तो परस्पर परिहारस्थिति रूप विरोध गुणोंका परस्परमें तो होता है अन्यथा गुणका अभाव हो जायगा। यदि परस्पर परिहार स्थिति गुण धर्ममें न हों तो सब एक बन गए। एक बननेके मायने सबका अभाव हो गया। सो गुणोंमें तो धर्मोंमें तो परस्पर परिहारस्थिति रूप विरोध है। ज्ञान ज्ञान ही हैं, दर्शन, दर्शन ही है, आनन्द आनन्द ही है, एक गुण दूसरे गुण स्वरूप न बन जायगा, लेकिन उन सब गुणोंका अभिन्न आधार आत्मा है। आत्मा उन सब गुणोंमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

तादात्म्य रूपसे है इसमें कोई विरोध नही। इसी तरह सामान्य विशेष इनका स्वरूप न्यारा न्यारा है। सामान्य सदृश धर्मकी अपेक्षासे हैं, विशेष विसदृश धर्मकी अपेक्षासे है। तो यों सामान्य और विशेषमें स्वरूपसे तो विरोध हुआ, अर्थात् स्वरूप एक नहीं है। न रहा स्वरूप एक। यह तो गुण ही है। यदि स्वरूप एक हो जाता तो न सामान्य कुछ था, न विशेष कुछ था। सो यह तो इष्ट सिद्धिकी बात है, लेकिन सामान्य और विशेष दोनों एक ही पदार्थमें तादात्म्य रूपसे रहें, इसमें किसी भी प्रकारका विरोध नही है। और, तभी सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक कहे गए हैं, न केवल सामान्य रूप कोई पदार्थ है और न केवल विशेषरूप कोई पदार्थ है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है। जैसे- कि स्पष्ट ज्ञात भी होता है कि द्रव्य रूपसे पदार्थ हैं, सदाकाल रहता है, पर्यायरूपसे पदार्थ देखा तो क्षण-क्षणमें नया-नया होता है। तो ये दोनों धर्म एक पदार्थमें रहे उसमें कोई विरोध तो न रहा। तो सामान्य विशेषका कोई विरोध नही है। एक पदार्थमें तादात्म्यरूपसे रहते, इस कारण यह बात अविरुद्ध है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है और सामान्य विशेषात्मक ही पदार्थ प्रमाण का विषयभूत होता है।

विरोधको पदार्थ विशेष माननेपर विरोधका विरोध्योंके साथ सम्बन्ध की मीमांसमें तीन विकल्पोंका उत्थापन—शंकाकार कहता है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोंसे भिन्न कोई विरोध नामका पदार्थ विशेष है जो अनेकमें रहता है, और विरोध्य विरोधकज्ञान विशेषसे प्रसिद्ध होता है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक है ऐसे स्याद्वादवादियोंके कथनपर शंकाकारने यह आपत्ति दी कि सामान्यका स्वरूप और है, विशेषका स्वरूप और है सो इनमें विरोध है। जहाँ सामान्य है वहाँ विशेष नही रह सकता, जहाँ विशेष है वहां सामान्य नही रह सकता उस विरोधके सम्बन्धमें चर्चा चल रही हैं कि विरोध है नही। भले ही सामान्य के स्वरूपमें विशेषका स्वरूप नही है विशेषके स्वरूपमें सामान्यका स्वरूप नही है किन्तु सामान्य और विशेष दोनों एक साथ पदार्थमें रहें, इसमें कोई विरोध नही। उसकी चर्चा बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक आलोचना हुई कि विरोध तो एकमें नही होता, अनेकमें होता है। तो उन अनेकोंमें विरोध किस तरह रहे? भेद रूपसे, अभेद रूपसे। यह सब बात जब न बनी तो शंकाकारने यह कहा कि विशेषण रूपसे रहता है। अर्थात् सामान्य विशेषका विरोध है बस षष्ठी विभक्ति लगनेसे विशेषण बन गया, इसका भी निर्णय हो गया कि विशेषण रूपसे विरोधका समर्थन नही बन सकता। उसपर यह शंका शंकाकार कर रहा है कि ६ पदार्थोंसे भिन्न कोई विरोध नामक पदार्थ विशेष है जो अनेकमें रहता है। इसपर समाधान करते हुए पूछा जा रहा है कि यह बतलावो कि ऐसा विरोध जो द्रव्योंको विशेषण बनता है सामान्य विशेषका विरोध, तो यों विरोध तो हुआ विशेषण और सामान्य विशेष हुआ विशेष्य तो उनका यह 'विरोध विशेषण सामान्य विशेषरूप विशेष्योंसे असम्बद्ध होकर विशेषण है या सम्बद्ध होकर?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विरोध जिनमें होता है उनसे यह विरोध असम्बद्ध रहकर ही विशेषण बनता या सम्बद्ध होकर ? यदि कहोगे कि असम्बद्ध होकर ही विशेषण बनता है तो इसमें तो बड़ी विडम्बनायें बन जायेगी ? जिस चाहे चीजको जिस किसी चीजका विशेषण कह दें, क्योंकि अब सम्बन्धके विना भी विशेषण होना मान लिया है, पर एसी प्रतीति तो नही। दंडादिकका सम्बन्ध न हो और फिर कहें कि यह अमुक बूढ़ेका डंडा है, ऐसा तो नही देखा जाता। सम्बन्ध हुए बिना विशेषणका भान किसीने नही किया। पुरुष के द्वारा असम्बद्ध हो दंड और फिर वह पुरुषका विशेषण कहलाये ऐसा तो कभी नही देखा गया है। तो यह विरोध भी अगर सामान्य व विशेषसे सम्बद्ध नही है तो सामान्य विशेषका यह विरोध है वह विरोध विशेषण है यह कैसे बन सकेगा ? यदि कहो कि विरोधका सम्बन्ध है, सामान्य विशेषके साथ जिन जिनका विरोध है उनके साथ विरोधको सम्बन्ध होता है तो वह कौन सा सम्बन्ध है ? क्या संयोग सम्बन्ध है अथवा समवाय सम्बन्ध या विशेषण भावरूप सम्बन्ध है किस सम्बन्धसे वह पदार्थ विरोधको समा देता है ?

विरोधका विरोध्योंसे संयोग, समवाय व विशेषण भावरूप तीनों सम्बन्धोंकी असम्भवता संयोग सम्बन्धसे तो विरोधको विरोध्य सामान्य व विशेषका विशेषण कह नही सकते, क्योंकि संयोग तो द्रव्य नही है। द्रव्य द्रव्यमें संयोग सम्बन्ध माना है। द्रव्य और गुणमें समवाय सम्बन्ध है। द्रव्य कर्ममें समवाय सम्बन्ध है। जो द्रव्य द्रव्य हों उनमें संयोग संबंध होता है। तो विरोध तो द्रव्य है नही, सो वह संयोगका आश्रय नही बन सकता। यदि कहो कि विरोध पदार्थोंमें समवाय सम्बन्धसे सम्बद्ध हो जायगा तो समवायी पदार्थ तो द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष है। ५ प्रकारके पदार्थोंको छोड़कर अन्य कोई समवायी है ही नही। विरोधका पदार्थोंके साथ समवाय कैसे हो जायगा ? यदि कहो कि विशेषण भावरूप सम्बन्धसे विरोधका सम्बन्ध पदार्थोंमें हो जायगा। जैसे कहते हैं ठंढ और गर्मीका विरोध है। तो विशेषण बन गया ना, इस रूपमे पदार्थोंमें सम्बन्ध हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि अन्य सम्बन्धोंसे जब तक सम्बन्ध वस्तुमें न बन जाय तब तक विशेषण भाव भी असम्भव है। विशेषण भावका सम्बन्ध हम तब लगाते हैं जब हम और सम्बन्धसे उसका सम्बन्ध जान पाते हैं। जैसे नील कमल है, तो कमलके नीलपनका हम विशेषण सम्बन्ध तब लगा पाते हैं जब हम उस कमलमें खुद देख लेते हैं कि कमलमें नीलका तादात्म्य सम्बन्ध हो रहा, समवाय सम्बन्ध हो रहा या जिस किसीका जो सम्बन्ध हो तो अन्य सम्बन्धसे जब हम सम्बन्ध जान लें तब हम इस विशेषण भावका सम्बन्ध लगा सकेंगे, अन्यथा अर्थात् सम्बन्धान्तरसे सम्बन्ध न हो वस्तुमें और फिर भी विशेषण मान लिया जाय तो जैसे जिस दण्डके साथ पुरुषका कभी संयोग न हो, न जिसे कभी पास रखते, उसे भी विशेषण मानना पड़ेगा। जगतमें अनन्त पदार्थ पड़े हैं, क्या वे हमसे चिपके हैं ? चिपके तो नही हैं, पर सारी दुनियाको विशेषण बना दिया

जायगा फिर तो संयोग आदि संबंधोंकी कल्पना करनेका परिश्रम व्यर्थ है तथा शंकाकारने जो यह कहा था कि विरोध विरोध्यविरोधक प्रत्ययसे जान लिया जाता है। हां, सो जान तो लिया, विरोध्यविरोधक ज्ञानसे समझ तो लिया कि इन पदार्थोंका विरोध है लेकिन उस ज्ञान विशेषने एक विशिष्ट वस्तुधर्मका आलम्बन किया। विरोध नामका कोई सत्तावान पदार्थ है और उसका पदार्थोंमें सम्बन्ध है इसका ज्ञापन थोड़े ही किया विरोध्य विरोधक प्रत्ययने। यह विरोध्य है, यह विरोधक है ऐसा जानकर कोई धर्म ही समझा है, पदार्थ नही समझा। तो विरोधनामक कोई पदार्थ नही है। तब विचार करनेपर विरोधकी कोई सिद्धि नही होती, इस कारण सामान्य और विशेषमें विरोध घटित नही होता।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकतामें वैयधिकरण दोषका भी अभाव – अब शंकाकार कहता है कि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक यों नही हो सकते कि सामान्य तो है अभेदरूप, उसका तो स्वभाव है एकत्वका और विशेष है भेदरूप उसका स्वभाव है अनेकत्वका, तो एकत्व स्वभाव वाले अभेदका आधार तो होगा अन्य कुछ और अनेकत्व स्वभाव वाले भेदका आधार बनेगा और पदार्थ, याने एकाधिकरणने एक ही पदार्थमें एकत्व स्वभाव वाला अभेद भी रह जाय और अनेकत्व स्वभाव वाला भेद भी रह जाय यह नही हो सकता। उसका स्वभाव भेद है तो उसका आधार भी संयोग न्यारा होगा। जैसे–जलका स्वभाव शीतलता है, अग्निका स्वभाव गर्मी है तो ये दोनों एक आधारमें तो नही है। भिन्न–भिन्न आधारमें हैं। तो सामान्य धर्म तो अभेद रूप है और विशेष धर्म भेद रूप है तो विरुद्ध धर्मोंका ऐकाधिकरण्य नही बन सकता। यों इसमें एक वैयधिकरण नामका दोष आता है। समाधानमें कहते हैं कि जहाँ निर्बाधरूपसे भेद और अभेद प्रतिभासमें आ रहे हों और एक ही पदार्थमें, तब फिर उसका विरोध करना बिल्कुल अविवेक है। अनेक पदार्थोंको देखकर उसमें हमें सदृश धर्मरूप सामान्यका भी बोध होता है, जैसे–गाय–गाय सब समान हैं और गाय भैंसोंको निरख कर विसदृश धर्मरूपका बोध होता है, यह उनसे विलक्षण है। तो जैसे–प्रत्यक्ष समझ में आ रहा कि देखो–इस पदार्थमें सदृशता भी है, विसदृशता भी है, फिर उनका विरोध कैसे मान लिया जाय? अथवा एक ही पदार्थमें अन्वय भी पाया जा रहा तीनों काल एक असाधारण स्वभाव साधारणतया बराबर सब पर्यायोंमें चला जा रहा है और क्षण–क्षणमें नवीन नवीन अवस्थायें भी हैं तो भेद और अभेद दोनों एक आधार में रह गए कि नही? उनका विरोध कैसे माना जाय? निर्बाध ज्ञानमें भेद और अभेदका, सत्त्व और असत्त्वका एक आधार रूपसे बराबर ज्ञान हो रहा है इस कारण पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं, इस कथनमें वैयाधिकरण दोष नही आता।

पदार्थोंकी सामान्य विशेषात्मकतामें उभय दोषका भी अभाव—अब शंकाकार कहता है कि देखो जो एकान्तसे एकात्मक है उसमें तो अनेक स्वभावपना त

http://www.jainkosh.org

आ सकेगा और जो एकान्तसे अनेकान्तात्मक है उसमें एक स्वभावपना न आयगा । तो जिस किसी दार्शनिकने जब यों निरखना चाहा कि यह एकान्तसे एकात्मकता मान रहा है तो उसमें दोष देते हैं कि फिर तो इसमें एक स्वभावता नही आ सकती, और कोई एकान्त से अनेकात्मक माने पदार्थको तो उसे दोष देते हैं कि फिर उसमें एक स्वभावपनेकी बात कभी न आ सकेगी । लेकिन ये दोनों दोष तो तुम्हारे इस सामान्य विशेषात्मक पदार्थके माननेमें आ रहे । देखो–सामान्यात्मक है पदार्थ तो उसमें विशेषत्व तो आ ही नही सकता । विशेषात्मक है पदार्थ तो उसमें सामान्यपना आ ही नही सकता तो उभय दोष हो गया । उत्तर देते हैं कि इसमें उभय दोषकी कुछ भी बात नही है । जैसे दुनियामें चोर पुरुष भी रहते हैं और अचौर भी रहते हैं चोर तो अचौर से भिन्न जाति स्वरूप है उनका अलग, रहते हैं एक दुनियामें, तो यों ही सामान्य और विशेष स्वरूप इनका भिन्न है, सामान्यसे विशेष अलग स्वरूप रखता है, विशेष सामान्यसे अलग स्वरूप रखता है और एक पदार्थ उनका आधार है तो इसमें विरोध क्या है ? हैं दोनों, और एक पदार्थमें रह रहे हैं । यदि इस भेद और अभेदको परस्पर निरपेक्ष रखकर एकत्व मानें तब तो दोष दे सकते हैं अर्थात् सामान्य स्वतंत्र धर्म हो, विशेष स्वतत्र धर्म हो, ऐसा दोनोंको अति स्वतंत्र मानकर फिर इसमें एकत्व कराये तो तब तो दोष दे सकते हैं पर अन्योन्य निरपेक्ष होकर इनमें एकता नही है । फिर कैसा है ? द्रव्य तो प्रर्यायकी अपेक्षा रखकर रह रहा है, पर्याय द्रव्यकी अपेक्षा रखकर रह रहा है जैसे घट और पट दोनों अलग–अलग स्वतंत्र स्वतंत्र रह रहे हैं इस तरह द्रव्य और पर्याय स्वतंत्र स्वतंत्र नही रहते । पर्यायको साथ लेकर ही द्रव्य रह सकते हैं, द्रव्यत्वको साथ लेकर ही पर्याय रह सकती है । और इस तरह परस्पर अपेक्षासे उनकी प्रतीति भी होती है । इस कारण पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है ऐसा माननेमें उभय दोष नही आता ।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकतामें संकरव्यतिरेक दोषका भी अभाव

अब शङ्काकार कहता है कि देखो ! पदार्थको सामान्य विशेषात्मक माना अर्थात् एकानेक स्वभाववाला माना, तो देखो ! जिस स्वभावसे एकस्वभावता है पदार्थमें उसी स्वभावसे अनेक स्वभावपना भी आ बैठेगा । यदि एक पदार्थमें सामान्य और विशेष मानते हो तो जिस स्वभावसे उसमें सामान्यपना है उस ही स्वभावसे उसमें विशेषपना आ बैठेगा तथा जिस स्वभावसे विशेषपना है उस ही स्वभावसे सामान्यपना आ जावेगा, तो संकर दोष हो जायगा । संकरके मायने जिस चाहेको जहाँ जाहे फिट करदे । समस्त धर्म एक साथ आ जायें, समस्त स्वभाव एक साथ पदार्थमें लग बैठें इसको कहते है संकर । और यहां संकर दोष ही नही, व्यतिकर दोष भी आ जाता है, पदार्थको सामान्यविशेषात्मक माननेपर । यह किस तरहसे ? कि जिस स्वभावसे एकत्व है उसी स्वभावसे अनेकत्व लग बैठा पदार्थमें और जिस स्वभावसे पदार्थमें अनेकत्व है उसी स्वभावसे पदार्थमें एकत्व आ जायगा । परस्पर एक दूसरे विषयमें पहुँच जाने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का नाम व्यतिकर है। तो सामान्यविशेषात्मक माननेसे संकर और व्यतिकर दोनों दोष आते है। समाधान करते हैं कि पदार्थको सामान्यविशेषात्मक माननेमें न संकर दोष आता, न व्यतिकर ! क्योंकि पदार्थमें स्वरूपसे ही सामान्य और विशेषकी प्रतीति हो रही है। और फिर पदार्थ एक स्वभाव भी है अनेक स्वभाव भी है। द्रव्य दृष्टिसे पर्याय दृष्टिमें पदार्थ अनेक स्वभाव है। तो पदार्थ ही जब सामान्य विशेषात्मक प्रतीति में आ रहा तो उसमें संकर और व्यतिकर दोष बताना व्यर्थ है।

पदार्थोंकी सामान्य विशेषात्मकतामें अनवस्था दोषका भी अभाव— अब शंकाकार कहता है कि पदार्थको सामान्य–विशेषात्मक माननेपर अनवस्था दोष आ गया। जिस रूपसे भेद है (विशेषमायने भेद) उस रूपसे कथंचित् भेद है और जिस रूपसे अभेद है उस रूपसे भी कथचित् अभेद है। तब भेदको सिद्ध करनेके लिए अन्य भेद बताने होंगे और अभेदको सिद्ध करनेके लिए फिर अन्य अभेद बताने होंगे क्योंकि यहाँ उत्तरोत्तर भेद या अभेद धर्म ज्ञानसे पूर्व पूर्वके भेद अभेद धर्मी बनते जावेंगे और नये नये भेद अभेदोंका विराम ही नही हो सकेगा। उत्तर देते हैं कि पदार्थको भेदाभेदात्मक माननेपर अनवस्था दोष नही आ सकता। क्योंकि अनेक रूप तो धर्मी हुआ करते हैं। धर्म अनेक रूप नही हुआ करता। जो धर्म है वह एक रूप है, जैसे आत्मामें ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक धर्म है तो प्रत्येक धर्म अपने अपने एक स्वभावको लिए हुए हैं, किन्तु उन सब धर्मोंका समुदायरूप जो एक द्रव्य है वह तो अनेक धर्मी है। पदार्थ अनेक धर्मी होते हैं, उसमें अनेक रूप होते हैं। परन्तु धर्मोंका अनेक रूपत्व कभी नही होता। तो वस्तुका जो अभेद है वह तो धर्मी ही रहता है। और वस्तुका जो भेद है वह धर्म ही रहता है इस कारणसे अनवस्था दोष नही आता।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकतामें अभाव दोषका भी अभाव— शंकाकार कहता है कि सामान्य विशेषका अथवा भेदाभेदका स्पष्ट परिज्ञान किसीको नही है और संशयादिक दोष भी इसमें प्रतीत हो जाते हैं इस कारण इनका अभाव है। समाधानमें कहते हैं कि कोई विश्लेषण कर सके या न कर सके किन्तु सभी प्राणियोंको पदार्थ अनेकान्तात्मक ही अनुभवमें आ रहे हैं और पदार्थ अनेकान्तात्मक हों, सामान्य विशेषात्मक हों तब ही उनका अनुभवमें आ सकना सम्भव है। देखो ना, प्रत्यक्षसे भी सामान्य विशेषात्मक दृष्टिमें आ रहा, गाय गायकी दृष्टिसे सब गायें सामान्य रूप हैं, गाय भैंसोंके मुकाबलेमें विसदृशता आ गयी अथवा किसी एक मनुष्यत्वकी अपेक्षा सारी उमर भर भी मनुष्य समझमें आ रहा और उसके बचपन जवानी आदिक की अपेक्षासे विशेष समझमें आ रहा है। भेदाभेदता द्रव्यपर्यायरूपता ये सभी प्रमाण सिद्ध हैं इस कारण अभाव दोषका कहना तो बिल्कुल ही अयुक्त है। पदार्थ अनेकान्तात्मक है, सामान्य विशेषात्मक है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माके नित्य एकरूप होनेसे सर्व पदार्थोंकी अनेकांतात्मकताके खण्डनकी आशंका—अब शंकाकार कहता है कि सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं, यह बात नही कही जा सकती है क्योंकि देखों ना—आत्मा नित्यएकरूप है। यह आत्मा जो शरीर इन्द्रिय, बुद्धि इनसे न्यारा है, इच्छा आदिक गुणोंका आश्रयभूत है, उस आत्मा में जब नित्यत्व और एक रूपत्व बराबर प्रसिद्ध हो रहा है, फिर यह कैसे कह दिया कि सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक होते हैं ? कोई यदि ऐसा कहे कि आत्मा अगर नित्य और एकरूप मान लिया जाय तब फिर उसमें कतृत्व, भोक्तृत्व, जन्म, मरण, जीवन, हिसकत्व आदिक कुछ भी व्यपदेश नही किए जा सकते, क्योंकि आत्मा नित्य एक रूप है। जब उसमें परिणमन ही नही तो फिर कर्ता भोक्ता कैसे कहा जा सकता है किनी को ? वह भी शंका कोई न करे। शंकाकार कहता जा रहा है कि इनका अर्थ तो पहिले समझ लो। कर्तृत्वका अर्थ है ज्ञान, चिकीर्षा (करनेकी इच्छा) एवं प्रयत्न इनका समवाय होना, आत्माके साथ सम्बन्ध होना इसका नाम है कर्तृत्व। आत्या तो अपरिणामी नित्य एक रूप है, पर ज्ञान चिकीर्षा प्रयत्नका आत्माक साथ समवाय सम्बन्ध होता है, बस इस ही का नाम कर्तृत्व है। और सुखादिक सम्वेदनका आत्मा के साथ समवाय होना इसका नाम भोक्तृत्व है। सुख दुःखादिकका ज्ञान हो रहा, उन ज्ञानोंका आत्माके साथ समवाय सम्बन्ध बनना, उसका नाम भोक्तृत्व है। और अपूर्व नये-नये शरीर इन्द्रिय बुद्धि आदिकसे सम्बन्ध बनना आत्माके साथ इसका सम्बन्ध होना, इसका नाम है जन्म, और शरीर इन्द्रिय बुद्धि आदिकसे वियोग होना इसका नाम है मरण। सो देखते जावो कि आत्मा नित्य एक रूप भी रहता है और जो ये सारे काम हो रहे हैं ये आत्माके काम नही हैं। आत्मासे इनका सम्बन्ध मात्र है। काम तो जिस विधिसे हो रहे सो हो रहे हैं देखो ना—जीवन भी किसका नाम है ? सशरीर आत्माका धर्म अधर्मकी अपेक्षा रखते हुए जो मनके साथ सम्बन्ध हो रहा, इस ही का नाम जिन्दगी है और शरीर नेत्रादिकका वध होनेसे हिंसकपना है। शरीर और इन्द्रियका वध हो गया इससे हिंसकपना आता है। कहीं आत्माके वध होनेसे हिंसकपना नही आता। आत्मा तो नित्य एक रूप ही है। कार्यका आश्रय और कर्ता इनका वध होनेसे हिंसा कहलाया करती है कार्याश्रय है शरीर क्योंकि सुख दुःखादिक जितने भी कार्य हैं उनका आश्रय बनता है शरीर और कर्ता कहलाती हैं इन्द्रियाँ, क्योंकि पदार्थोंकी उपलब्धिके करने वाली ये इन्द्रियां हैं। इन्द्रियाँ ही पदार्थोंको जानती हैं। तो इन इन्द्रियोंका वध होनेसे और कार्याश्रय शरीरका वध होनेसे हिंसा कहलाया करती है। तो ये सारी बातें भी बन गयी और आत्मा देखो ना नित्त एक रूप ही बन गया। तो जब आत्मा नित्य है, एक रूप है तो कैसे कह दिया कि जगतमें सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं।

आत्माकी सर्वथा नित्यैकरूपता असम्भव होनेसे पदार्थोंके अनेकांतात्मकताकी सिद्धि—अब इस शंकाका समाधान करते हैं कि आत्माको नित्य एकरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो तुमने कहा तो यह सब बिना विचारे ही कहा है, उसपर यदि विचार करोगे तो समझ जाओगे कि आत्मा भी अनेकान्तात्मक है. नित्य एकरूप एकान्ततः नहीं है। देखो ! यदि आत्मा अपने पूर्वरूपका सर्वथा परित्याग न करे, किसी भी दृष्टिसे पूर्वरूप का परित्याग उसमें न समझा जाय तो आत्माके साथ ज्ञानादिक गुणोंका समवाय हो नहीं सम्भव हो सकता। यदि अपना पूर्वरूप जरा भी छोड़े बिना ज्ञानादिक गुणोंका समवाय मान लिया जाय तो आकाशके फूलमें या गधेके सींगमें भी ज्ञानका समवाय करके दिखा दीजिये ! क्योंकि अब तो पूर्वरूपका परित्यागके ही बिना ज्ञानादिकका समवाय मानने लगे। और, जब ज्ञानादिकका समवाय अपरित्यक्त पूर्वरूप आत्मामें सम्भव नहीं है तब फिर समवायकी दृष्टिसे कह देना पड़ेगा कि आत्माके साथ सुख सम्वेदनका समवाय होना तो उस समयका भोक्तृत्व है और फिर बादमें हुआ दुःख सम्वेदनके साथ समवाय तो यह उत्तर समयका भोक्तृत्व है। और, तब कहना ही पड़ेगा कि देखो ! पहिले आत्मा सुख सम्वेदनमें समवाय सम्बन्ध वाला बन रहा था, अब वह न रहकर आत्मा दुःख सम्वेदनके समवाय वाला बन रहा है। कुछ भी पूर्वरूप परित्याग न हो तो समवाय सम्बन्ध भी नहीं बन सकता और यदि कहो कि पूर्वरूपका परित्याग हो जाता है, तब अनेकान्तात्मक कैसे सिद्ध न होगा ? यही तो अनेकान्तात्मकता है कि पूर्वरूपका तो हो व्यय और उत्तरपर्यायका हो उत्पाद और दोनों अवस्थाओंमें रहता हुआ वह पदार्थ रहे, तो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक बन गया ना, बस यही तो अनेकान्तात्मक है। इस आत्माकी अनेकान्तात्मकता स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे भी सिद्ध हो रहा है। देखो यह पर्यायकी अपेक्षासे तो आत्मा व्यवृत्तात्मक है अर्थात् उस पर्यायसे देखो यह अलग है। अब इस पर्यायसे भी देखो अलग है। इस तरह भिन्न-भिन्न पना होना यह भी ध्यानमें आ रहा है ना और चैतन्यकी अपेक्षासे देखा आत्माको तो अनुगमात्मक प्रतीतिमें आ रहा। वही वही हैं ना आत्मा चैतन्य स्वरूप जो पहिले था सो ही स्वरूप अब है। तो पर्यायकी अपेक्षा तो इसमें व्यावृत्ति पायी जाती है और चेतन की अपेक्षा इसमें अनुवृत्ति पायी जाती है। सबके स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। अभी आत्मा में सुख हो फिर दुःख आ गया। फिर शान्ति आयी फिर चिन्ता हुई आदिक स्वरूप की अपेक्षासे तो आत्मामें व्यावृत्ति है और आत्मामें वहीं चैतन्यस्वरूप जो पहिले था सो अब भी है। वही द्रव्यत्व सत्त्व आदिक स्वरूप जो पहिले था सो अब भी है। तो व्यावृत्तिसे भी युक्त और अनुगमसे भी युक्त आत्मा है यह बात प्रत्यक्षसे ही प्रसिद्ध है।

प्रमाणप्रतिपन्न वस्तुस्वरूपमें अनुवृत्तव्यावृत्त स्वरूपके विरोधका अनवकाश—शंकाकार कहता है कि अनुवृत्तका स्वरूप है और कुछ व्यावृत्तका स्वरूप है और कुछ। सब भिन्न स्वरूप हैं, अनुवृत्त तो सदृश धर्मसे बनता है, व्यावृत्त विसदृश धर्मसे बनता है तो ऐसे भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले इस अनुवृत्ति और व्यावृत्तिमें जब परस्पर विरोध है तो फिर आत्माको अनुवृत्ति व्यावृत्यात्मकता कहना कहाँ तक युक्त है। अर्थात् सामान्यविशेषात्मक कह देना कहाँ तक सही है ? अनुवृत्ति सामान्यसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

व्यावृत्ति विशेषसे बनी। तो इन दोनों में विरोध है, अतः आत्माको सामान्य विशेषात्मक नहीं कहा जा सकता। उत्तर देते हैं कि यह कहना भी तुम्हारा असत्य है प्रमाण से जानी गयी वस्तुके स्वरूपमें विरोधका अवकाश नहीं होता। देखो एक सर्पने अपने शरीर की कुण्डली बना लिया। अर्थात् गोल गोल बनकर बैठ गया फिर उस कुण्डली को खतम कर दिया लम्बा होकर चल दिया तो उस सर्पमें जो दो अवस्थायें आयी कुण्डली की और अकुण्डली की उन दोनों अवस्थाओंकी अपेक्षा देखो तो व्यावृत्ति रही कि नहीं। पहिले कुण्डल अवस्थामें था अब अकुण्डल अवस्थामें है, पर इस व्यावृत्ति के होनेपर भी क्या सर्प अन्य–अन्य हो गया? वह तो अनुमात्मक ही रहा। अथवा जैसे अंगुली टेढ़ी किया पोछे सीधी किया तो टेढ़ी और सीधी स्वभाव कि अपेक्षासे तो उसमें व्यावृत्ति पायी जा रही। जो सीधी है सो टेढ़ी नही जो टेढ़ी है सो सीधी नहीं किन्तु इतने मात्रसे क्या वह भिन्न–भिन्न पदार्थ बन गया? वह तो वही है। पहिले टेढ़ी अवस्थामें थी अब सीधी नवस्थामें आई, तो यों ही आत्माका भी परिज्ञान हो रहा कि सुख दुःखादिक स्वरूपकी अपेक्षासे तो इसमें व्यावृत्ति प्रतीत होती है, जो पर्याय सुखमयतामें था सो दुःखमयतामें न रहा, पर इतने मात्रसे चैतन्यस्वरूप आत्मा भी क्या भिन्न भिन्न पदार्थ बन गया? वह तो वही एक है। तो यों आत्मवस्तुमें अनेकान्तात्मकता बराबर प्रसिद्ध है।

सुखदुःखादिक अवस्थाओंकी आत्मासे अत्यन्त भिन्नताकी असिद्धि— अब शंकाकार कहता है, कि सुखदुःख आदिक अवस्थायें हैं वे आत्मासे अत्यन्त जुदी हैं, तो सुख दुःख आदिकमें अगर व्यावृत्ति चलती है, अभी सुख था, अब न रहा, अब दुःख आ गया। अब दुःखकी भी व्यावृत्ति हो गई तो यों सुखदुःखादिकमें व्यावृत्ति बनी रहो, पर आत्मासे जब ये सुखदुःख आदिक अवस्थायें अत्यन्त भिन्न हैं तो सुखदुःख आदिककी व्यावृत्तियोंसे आत्मामें क्या आ गया जिससे आत्माको भी तुम व्यावृत्तात्मक कर रहे हो? उत्तर देते हैं कि यह कहना तुम्हारा यों अयुक्त है कि सुखदुःख आदिक परिणतियां होती हैं और विलीन होती हैं। नवीन परिणतियां होती हैं। तो सुखदुःखादिक जब आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं ही नही तो कैसे न यह माना जा सकेगा कि आत्मा अभी सुखी था सो अब दुःखी होगया, तो व्यावृत्ति आ गई। शंकाकार कहता है कि आत्मा और सुखदुःखादिक अवस्थायें इनमें तो स्वरूपभेद है, ये भिन्न कैसे न हुए? यदि आकारभेद होनेपर भी अर्थात् स्वरूपभेद होनेपर भी आत्मा और सुखआदिकको एक मान लिया जाय, नाना न समझा जाय तो घट और पट इनको भी एक मान लो। जब आकारभेद होनेपर भी, स्वरूपभेद होनेपर भी आत्मा और सुख आदिकको एक मान लिया तब तो भींट पहाड़ आदिक सारी दुनिया के पदार्थोंको एक ही मान लो! हैं तो नही वे एक घट पट आदिक, क्योंकि उनमें आकारभेद है, स्वरूपभेद भी है। तो इसी तरह आत्मा और सुख आदिक अवस्थायें, इनमें स्वरूपभेद है। इस कारण ये एक नही हो सकते, ये भिन्न ही हैं। उत्तर देते हैं

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि तुम्हारी बात बिना बिचारे तो बड़ी सुन्दर लगती है पर विचार करनेपर इसमें शोभा नहीं जचती। क्योंकि आत्मामें जैसा पूर्वपर्याय और उत्तर पर्याय ज्ञानमें तादात्म्य है, स्वरूप है, इस तरहके तादात्म्यरूपसे घटमें पट प्रमाणसे कहां प्रतीत हो रहा है ? देखो ! पूर्वपर्याय ज्ञानके साथ भी आत्माका तादात्म्य है। उत्तर पर्याय ज्ञानके साथ भी है। तो जैसे एक वस्तुमें पूर्वोत्तर क्रियाका तादात्म्य मिल रहा है उस तरह अत्यन्त भिन्न घट पट आदिकमें तो इस तादात्म्यकी प्रतीति नही हो रही, और प्रतीति मान लोगे तो फिर मान लो, स्वरूपभेद होनेपर भी उनमें भी नानापन नही है, पर प्रतीति तो नही है। जैसे—प्रत्यभिज्ञान ज्ञान एक ही है, और उसमें स्मरण और प्रत्यक्ष दो प्रकारके आकार आते हैं। पदार्थ एक ही है और उसमें सामान्य और विशेष दो आकार (धर्म) हैं। संशयज्ञान एक ही है, पर उसमें अनेक कोटियोंका आकार आता है, चित्रज्ञान एक है और उसमें आकार नाना आ रहे हैं तो यों आत्मा एक रहे और उसमें सामान्य विशेषपना रहे, इसमें क्या विरोध है ? कुछ भी विरोध नही। अतः निर्विवाद यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होते हैं और सामान्यविशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाणके विषयभूत होते हैं।

पदार्थको सामान्यविशेषात्मक न मानकर द्रव्यगुण आदिको स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ माननेकी शङ्का—शङ्काकार कहता है कि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है यह बात तो जोड़–मेलकी की गई है। वास्तवमें तो परस्पर अत्यन्त भिन्न–भिन्न द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामके ६ ही पदार्थ होते हैं। जिस सामान्य व विशेषसे तादात्म्य मिलाकर पदार्थ बना हो वह सामान्य व विशेष स्वयं स्वतन्त्र पदार्थ है। अब इन सब पदार्थोंका क्रमसे वर्णन सुनो ! प्रथम पदार्थ है द्रव्य। द्रव्य होते हैं ६ - पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। द्रव्य वह कहलाता है जिसमें गुण, कर्म, सामान्य, विशेष मौजूद रहा करते हैं। जो स्वयं कोई पदार्थ है स्वतन्त्र, पिण्डरूप, जिसकी अर्थक्रिया होती है, जिसका ग्रहण होता है ऐसा प्रधान पदार्थ द्रव्य नामसे कहा जाता है और वे द्रव्य ६ होते हैं – जिनमेंसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार द्रव्य तो नित्य भी होते और अनित्य भी होते। पृथ्वी दो प्रकारकी है –नित्य और अनित्य। जल दो प्रकारका है–नित्य और अनित्य, अग्नि दो प्रकारकी है—नित्य और अनित्य। वायु भी दो प्रकारकी है—नित्य और अनित्य। जो परमाणुरूप हैं पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु वे सब नित्य हैं, क्योंकि परमाणुरूप नित्य पदार्थ अकारण हुआ करता है, वह किसी कारणसे उत्पन्न नही होता। जैसे कि स्कध है वह कारणसे उत्पन्न होता है। अनेक परमाणुवोंका मिलकर स्कंध होता है तो स्कध अनित्य हो गए, पर जो परमाणु हैं वे परमाणुरूप द्रव्य तो नित्य ही हैं क्योंकि अकारणवान हैं। हाँ, उन परमाणुवोंसे रचे गये जो द्वयणुक आदि कार्य हैं वे नित्य हैं। तो ऐसे परमाणु पृथ्वीमें होते और जल, अग्नि वायुमें भी होते। वह भी परमाणुवोंका पिण्डरूप है। तो वे सब इस दृष्टिसे नित्य भी हैं और अनित्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी हैं। और, आकाश, काल, दिशा आदिक द्रव्य नित्य ही हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति नही होती। और, इन सभीके सभी ९ द्रव्योंमें द्रव्यत्वके सम्बन्धसे द्रव्यरूपता आती है नाम तो है यह द्रव्य पर इसमें द्रव्यत्वका सम्बन्ध होता है उससे यह द्रव्य कहलाता है।

विशेषवादमें द्रव्यत्वसंबद्ध द्रव्यका समर्थन—यह शंकाकार वैशेषिक सिद्धान्तवादी है। वैशेषिक सिद्धान्तमें भेदवादका महत्त्व दिया है। जहाँ जानते जानते कुछ भी अन्तर सहित सोनना होवे बस वहाँ मान लिया जाता है कि यह प्रथक् पदार्थ है। जैसे- रूप जाना, रस जाना, गंध, स्पर्श जाना तो ये सब प्रथक् पदार्थ हो गए, पर रूपी भी तो जाने जाते। तो जो भी रूपी जाने गए, भिन्न रूप जाने गए वे प्रथक् पदार्थ हैं। जिस जिसके ज्ञानमें किसी भी प्रकार रंच रंच भी अन्तर आये तो वे प्रथक् प्रथक् पदार्थ कहलाते हैं। तो इस वैशेषिकसिद्धान्तकी कुञ्जीसे ये द्रव्य गुण कर्म सामान्य आदिक प्रथक् प्रथक् पदार्थ माने गए हैं। तो शकाकार कह रहा है कि पदार्थ ६ जातिके होते हैं, जिनमें द्रव्य ९ प्रकारके हैं और इन ९ प्रकारके द्रव्योंमें असाधारण स्वरूप क्या है जिससे ये भिन्न–भिन्न जाने जाये ? इनका असाधारण स्वरूप यह है कि ये इतरका व्यवच्छेद करके रहते हैं। अर्थात् पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा, आत्मा, मन ये ९ पदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म आदिकको हटाकर रहते हैं अर्थात् उनका स्वरूप और कुछ है, और इनका स्वरूप और कुछ है। पृथ्वी आदिक मनः पर्यन्त समस्त द्रव्य अन्य गुण आदिकसे भिन्न रहा करते हैं और उनको किन शब्दोंसे कहा जाव। वह क्या चीज है यह स्वयं नही बताया जा सकता, किन्तु द्रव्यत्वके सम्बंध से उनको द्रव्य है ऐसा व्यवहार करते हैं। जिनमें द्रव्यत्वका सम्बन्ध नही है उनमें द्रव्य है ऐसा व्यवहार नही किया जाता जो द्रव्य नही है जिसमें द्रव्यका व्यवहार नही होता उनमें द्रव्यत्वका सम्बन्ध नही है। जैसे गुण कर्म सामान्य विशेष, समवाय, इनको कोई द्रव्य नही कहता। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु. आकाश, दिशा आत्मा और मन इनको सब लोग द्रव्य कहा करते हैं, तो जिनको लोग द्रव्य शब्दसे कहा करते उनमें द्रव्यत्वका सम्बन्ध है।

द्रव्यके पृथ्वी आदिकके आभ्यन्तर भेदोंमें द्रव्यत्वकी व्यवस्था–पृथ्वी आदिक आवान्तर भेदोंमें भी यही बात है। पृथ्वीत्वका सम्बन्ध होना पृथ्वीका लक्षण और फिर पृथ्वी द्रव्यजातिके भी अन्दर अन्य द्रव्योंसे भिन्न रहा करती है पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा, आत्मा और मन इन ८ द्रव्योसे निराला है। इसी प्रकार जल अन्य ८ द्रव्योंसे निराला है। तो इसका जो लक्षण है द्रव्यका कि अन्यका व्यवच्छेदक रहना, दूसरेसे हटा हुआ भिन्न रहना यह है पदार्थका लक्षण, इससे जाना जाता है पदार्थ। सो यह लक्षण समष्टिरूपसे और व्यक्तिरूपसे भी द्रव्यमें घटित है। और, फिर जैसे पृथ्वी कहलाती है पृथ्वीत्वके सम्बन्धसे, जल है जलत्वके सम्बन्धसे, इसी प्रकार समस्त पदार्थ अपनी जातिके सम्बन्धसे रहा करते हैं। जो पृथ्वी आदिक ९

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य बताये गए हैं और उनका लक्षण यह बताया है कि वे गुण कर्मादिक अन्य सब पदार्थोंसे भिन्न रहा करते हैं तो इसी लिए उनमें द्रव्यका व्यवहार होता है तो यहां कोई जानना चाहे कि पृथ्वी आदिकमें भेद और पृथ्वी आदिकका व्यवहार किस कारण से है तो उसका भी कारण यह है कि पृथ्वी अन्य शेष ८ द्रव्योंसे भिन्न है और पृथ्वी-त्वका उनसे सम्बन्ध है जिससे पृथ्वीका व्यवहार चलता है, अब कोई पृथ्वी पृथ्वीके अन्तर जानना चाहे जैसे घट पट ये सब पृथ्वी ही तो हैं। अब घटमें पृथ्वी व्यवहार कैसे बना ? तो घट घटको छोड़कर अन्य पटादिक जितने पिण्ड हैं उन सबसे भिन्न हैं और साथ ही घटमें घटत्वका सम्बन्ध है सो घटत्वके सम्बन्धसे यह घट कहलाता है। हाँ कह दो पदार्थ जो नित्य हैं, निरंश हैं, एक हैं उनमें आवान्तर भेद नहीं बनता। उनमें केवल गुण कर्मादिकका भेद है। यदि आकाशके अनेक प्रकार होते या अनेक आकाश होते, तो उनमें भी परस्पर भेद बताया जाता, लेकिन इनका आवान्तर भेद ही सम्भव नहीं है। तो इन पृथ्वी आदिकमें आवान्तर भेदका भी साधन यही रहा कि अन्यसे तो भेद है और इनकी जातिका इनमें सम्बन्ध है। इस तरह द्रव्य ६ प्रकारके होते हैं।

पृथ्वी आदिक द्रव्योंमें गुणोंकी व्यवस्था—अब इन द्रव्योंकी और गुणों की ओरसे पहिचान करें तो पृथ्वीमें है गंध जलमें है रस, अग्निमें है रूप और वायुमें है स्पर्श। जैसे–जैन लोग बताते हैं कि प्रत्येक पुद्गलमें चार गुण होते हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श तो प्रत्येक अणुमें ४ ही गुण हों यह बात नहीं बनती, किन्तु जातिके विभाग से उनमें विभाग है। पृथ्वीमें गंध गुण है। जलमें रस गुण है। अब किसी जलमें अगर गंध आती है तो वह गंध जलकी नहीं है वह तो जो पार्थिव तत्व हैं, अर्थात् जो मिट्टीके कण हैं उनका गंध है, इसी प्रकार पृथ्वीमें रस गुण आया, जैसे किसी सूखे फलमें रसका ज्ञान होता है तो वह रस पृथ्वीका गुण नहीं है किन्तु उसमें जल तत्त्व मिला है उसका वह गुण है। इस तरह इन चार द्रव्योंमें भिन्न भिन्न चारों प्रकारके गुण रहा करते हैं और इस तरह इन द्रव्योंकी व्यवस्था है। और, आकाश, काल, दिशा ये अनादि सिद्ध हैं और इनमें भावान्तर भेद नहीं हुआ करते।

गुण और क्रियानामक पदार्थोंका निर्देश—द्रव्यके सत्त्वकी भांति रूपादिक २४ गुण भी सत् होते हैं वे गुण सब अपने–अपनेमें अपना अपना जुदा–जुदा स्वरूप रखते हैं और, वे भी सत् हैं इस लिए पदार्थ कहलाते हैं। या यों कह लीजिए कि पद का जो अर्थ हो सो पदार्थ। जितने भी पद हैं. जितने भी शब्द हैं उनका कुछ न कुछ वाच्य अर्थ होता है। नहीं तो पद बन कैसे गया ? कुछ अर्थ न हो, कुछ चीज न हो, वस्तु न हो और बन जाय पद, तो नहीं बन सकते। भले ही उनमें ऐसा विचार कर सकते हैं कि गधेके सींग कहाँ होते, तो भले ही गधेके सींग नहीं लेकिन गधा कोई पदार्थ है और सींग कोई पदार्थ है। कोई पदार्थ न हो तो ये पद, शब्द भी नहीं बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

सकते। तो रूपादिक २४ गुण होते हैं ये भी पदार्थ हैं। उत्क्षेपण आदिक ५ अर्थ क्रियायें होती हैं वे भी पदार्थ हैं। फिकना, आना, जाना, गोल घूमना ये सब क्रियायें हैं वे सब पदार्थ हैं।

सामान्य और विशेष नामक पदार्थोंका निर्देश— सामान्य भी पदार्थ है। वह सामान्य दो प्रकारका होता है एक पर सामान्य और एक अपर सामान्य। किन्तु सामान्यका जो लक्षण है वह दोनों प्रकारके सामान्यमें घटित होता है। सामान्यका लक्षण है अनुगत ज्ञानका कारण बने। यह सत् है यह सत् है इस तरह अनुगत ज्ञान का कारण सामान्य होता है। यह द्रव्य है यह द्रव्य है अथवा यह गुण है यह भी गुण है इस प्रकारका जो अनुगत ज्ञान बनता है उसका कारण सामान्यका सम्बन्ध है। और वह सामान्य दो प्रकारका होता है पर सामान्य और अपरसामान्य जो उत्कृष्ट सामान्य है, जिससे बढ़कर और कोई व्यापक नही है वह तो पर सामान्य है और परसामान्य के भेद कर देनेपर फिर एक भेद कोई सामान्य दृष्टिसे दिखता है तो वह अपरसामान्य है। जैसे—पदार्थ ६ होते हैं—तो पदार्थ यह तो हुआ परसामान्य। अब ६ बताये गए द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तो उनमेंसे एकको ग्रहण करो, द्रव्य कह लो, तो द्रव्य हो गया अपरसामान्य क्योंकि यह भी पदार्थमें गर्भित हो जाता है। तो यों दो प्रकारके सामान्य होते हैं विशेष भी पदार्थ है और विशेष अत्यन्त व्यावृत्ति बुद्धि का कारणभूत है, एक दूसरेसे अलग है। इस प्रकार अलगावका ज्ञान करानेका कारण भूत होता है विशेष।

समवायनामक पदार्थका निर्देश और शंकाकारका उपसंहार—छटवाँ पदार्थ है समवाय। अयुत सत् पदार्थोंमें अर्थात् जो अलग–कलग नही हैं, एक ही हैं ऐसे पदार्थोंमें याने जो आधार्य और आधारभूत हैं, उनमें ऐसा ज्ञान बनता है कि इसमें यह है, तो इसमें यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं। जैसे यह बोध होता है कि आत्मामें ज्ञान है—अब आत्मा और ज्ञान ये अयुत सिद्ध हैं, ज्ञानको छोड़कर आत्मा किसीने देखा, आत्माको छोड़कर ज्ञान कहीं किसीने देखा है ज्ञान और आत्मा सदा एक साथ रहते हैं। अयुत सिद्ध सम्बन्ध है, फिर भी इसमें ऐसा ज्ञान तो होता है लोगोंको कि आत्मामें ज्ञान गुण है, पर ऐसा कोई नही ज्ञान करता कि ज्ञानमें आत्मा है। जैसे पृथ्वीमें गंध है, यों तो ज्ञान कर सकते हैं, पर गंधमें पृथ्वी है इस प्रकारका कोई व्यवहार नही करता। तो जो अयुत सिद्ध पदार्थमें जो कि आधार्य आधारभूत है उनमें इसमें यह है इस प्रकारके ज्ञानका जो कारणभूत है, ऐसा ज्ञान बनता है। उस सम्बन्धका नाम है समवाय इन ६ पदार्थोंमें जैसे कि द्रव्य नित्य भी होते, अनित्य भी होते इसी प्रकार गुण भी कोई नित्य होते हैं कोई अनित्य होते हैं। जो नित्य द्रव्यके आश्रयमें रहने वाला गुण है वह नित्य ही होता है और जो अनित्य द्रव्यके आश्रयमें रहने वाला गुण है वह अनित्य ही होता है। पर क्रियायें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब अनित्य होती है। परन्तु सामान्य, विशेष, समवाय ये तीन पदार्थ नित्य ही होते हैं। इस तरह लोक ६ पदार्थोंका समूह है, इस कारण पदार्थोंको सामान्यविशेषात्मक कहना ठीक नही, किन्तु इस तरह ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बनाना ठीक है।

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायके रूपसे ६ पदार्थोंकी असिद्धि
अब उक्त शंकाओंका समाधान करते हैं। वैशेषिकसिद्धान्तमें जो यह कहा गया है कि प्रमाणके द्वारा प्रमेय द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामके ६ ही पदार्थ हैं और उनकी व्याख्यायें भी जो बतायी हैं वे सब भी कथनमात्र हैं क्योंकि जब उनपर विचार करते हैं तो द्रव्यादिक ६ पदार्थ सही नही उतर सकते। प्रथम तो यह बात है कि पदार्थोंकी जातियां उतनी मानना चाहिये कि जिनमें कोई पदार्थ जातिमें छूट न जाय। और, जो अपने आपकी जातिमें दूसरा कभी आ न सके, जातियाँ उतनी होती हैं, किन्तु इस प्रकारके नियंत्रण आपके ६ पदार्थोंमें नही बन सके। देखो ना! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन ५ की जातियाँ यों अलग-अलग नही हो सकतीं कि चूँकि उनमें एक दूसरेरूप गुण परिणमन बन सकते हैं। जैसे जलके अणु कभी हवा बन सकते हैं, पृथ्वीके अणु वनस्पति बन सकते, वनस्पतिके अणु पृथ्वी बन जाते हैं। जो अब सजीव पेड़ खड़ा है उसे तो मान रहे वनस्पति और जब वह सूख जाता है, निर्जीव हो जाता है तब उसे मानने लगते हो पृथ्वी, तो यों जातियाँ तो नहीं ठीक बन सकीं चार अलग द्रव्य नही रह सके। दूसरे—इनमें अनेक पदार्थ छूट भी गए हैं, इस का भी वर्णन आगे करेंगे। तो ये ६ प्रकारके इस ढङ्गके पदार्थ ठीक युक्तिमें नहीं उतरते।

सर्वथा नित्य द्रव्यकी असिद्धि—और भी विचार करो! जो यह कहा है कि पृथ्वी आदिक चार प्रकारके द्रव्य नित्य भी हैं और अनित्य भी हैं। सो किसी भी पदार्थको नित्यात्मक व अनित्यात्मक मानना तो युक्त है लेकिन यों नित्य अनित्य मानना कि उसमें यह तो नित्य ही है और यह अनित्य ही है, यों स्वतंत्र स्वतन्त्र नित्य ही अनित्य मानो तो वह अयुक्त बात है, क्योंकि जिसको नित्य माना उसको तो नित्य ही मान लिया। वह कथंचित् अनित्य भी है जिसकी गुञ्जायश न रखी, जिसको अनित्य माना उसे अनित्य ही मान लिया। वह कथंचित् नित्य है ऐसी गुञ्जायश नही रखी गई है। तो देखो! जो एकान्त नित्य है उसमें किसी भी प्रकारसे अर्थक्रिया नही बन सकती। न तो क्रमसे अर्थक्रिया बनेगी और न एक साथ। और, अर्थक्रिया हो, परिणमन हो, काम हो तभी वह सत् रह सकता है। अर्थक्रिया नही है तो वह असत् हो जायगा। किस तरह? जैसे माना है कि जो परमाणु है वह तो नित्य ही है और जो परमाणुवोंका कार्य है—दो अणुवोंका सम्बन्ध बन जाता, अनेक अणुवोंका पिण्ड बन जाता वह अनित्य है। तो यह बतलावो कि आपके उन परमाणुवोंमें द्वयणुक आदिक कार्य द्रव्यको उत्पन्न करनेका स्वभाव है या नही? यदि कहो कि परमाणुवों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में द्वयणुक आदिक कार्योंके उत्पन्न करनेका स्वभाव है तो एक साथ ही सारे कार्य क्यों नहीं उत्पन्न हो जाते ? क्योंकि परमाणुवोंमें कार्यजनकत्व स्वभाव है। और, जब स्वभाव है तो सदा ही कार्य एक साथ ही एक समय हो जाना चाहिए, क्योंकि जो सम्पूर्ण कारणसहित है वह एक ही साथ उत्पन्न हो जाया करता है। जिसके कारण पूरे मिल चुके हैं वे सब एक साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे कि बहुतसे बीज जमीन में बो दिए गए। अब सारे कारण मिल गए—खेत, पानी, खाद आदिक सब कारण मिल चुके हैं तो वे सारे अंकुर एक ही समयमें उत्पन्न हो जाते हैं। अब अणुवोंको कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव वाला मान लिया है, अब कारणकी क्या कमी रही ? जब स्वभाव ही अणुवोंमें कार्यद्रव्यको उत्पन्न करनेका मान लिया गया तब सारे द्वयणुक आदिक कार्य एक साथ उत्पन्न हो जाने चाहियें। और, यदि मानलो कि द्वयणुक आदिक कार्योंके उत्पन्न करनेका स्वभाव है परमाणुवोंमें, द्वयणुक आदिक कार्योंके सारे कारण एक साथ मिल चुके हैं और फिर भी कार्य उत्पन्न न हो तब फिर कभी भी कार्य उत्पन्न न होना चाहिए। तो इससे नित्यकी व्यवस्था बन नहीं सकती। और यदि मान लोगे कि अणुवोंमें द्वयणुक आदिक कार्य उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नही है तब फिर कभी भी कार्य न होना चाहिए। फिर अनित्य द्रव्य कोई रहे ही नही।

शंकाकार द्वारा कार्यके तीन प्रकारके कारणोंका प्रतिपादन—शंकाकार कहता है कि बात यह है कि कारण होते तीन प्रकारके। समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण इसका हम लक्षण अभी ही कहेंगे। प्रकरणमें यह जानना कि अणुमें कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है और वह नित्य है, लेकिन जब तक तीनों कारण नही मिल जाते तब तक द्वयणुक आदिक कार्य उत्पन्न नही होते। कारण तीन प्रकारके होते हैं समवायिकारण असमवायिकारण और निमित्तकारण। समवायि कारण तो वह कहलाता कि जिसमें कार्य उत्पन्न होता है। जैन सिद्धान्तमें उपादान कारण माना गया है उसका भी अर्थ यह ही किया करते हैं कि जिसमें कार्य उत्पन्न हो उसे उपादान कारण कहते हैं इस किंतु इन दोनों कारणोंमें यह अन्तर है कि उपादान कारणसे कार्यको अप्रथक्भूत माना है, किन्तु समवायि कारणसे कार्य प्रथक्भूत है। अर्थात् जिसमें कार्य प्रथक् रूपसे उत्पन्न होवे उसको समवायि कारण कहते हैं। जैसे कि दो अणुवोंसे द्वयणुक स्कध बनता है तो द्वयणुक हुआ कार्य और उसका समवायि कारण हुये वे दोनों अणु। असमवायि कारण उसे कहते हैं कि जो कार्यके एक पदार्थ में समवाय रूपसे रह रहा हो अथवा कार्यके कारणभूत एक पदार्थमें जो समवाय सम्बन्धसे रहता हो और कार्यको उत्पन्न करे उसे असमवायि कारण कहते हैं। जैसे कि कपड़ारूप कार्यकी उत्पत्ति होनेमें तंतुवोंका संयोग है, वह असमवायि कारण हैं। कपड़ा रूप कार्यके बननेमें समवायि कारण तो हुए वे सब अणु जिनमें कि कार्य उत्पन्न होगा, पर उन अणुवोंमें समवेत है संयोग। संयोग गुण माना गया है और गुण और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्यका होता है समवाय सम्बन्ध। तो संयोगका उन तंतुवोंमें समवाय सम्बन्ध है। तो वह बतलाया जा रहा है कि कपड़ा बननेका समवायि कारण तो हैं वे तंतु और असमवायि कारण है तंतुवोंका संयोग। जैसे द्वयणुक कार्यकी उत्पत्ति होनेमें समवायि कारण तो हैं वे दो अणु पर उन दो अणुवोंका जब तक संयोग न बनेगा तब तक द्वयणुक तो न बनेगा तो संयोग है असमवायि कारण। अथवा यों समझिये कि पटमें भी समवेत है रूपादिक। कपड़ामें रूपादिक गुणोंका समवाय तो है, अब उन रूपादिकके उत्पन्न होनेमें पटको उत्पन्न करने वाले तंतुवोंके रूपादिक असमवायि कारण हैं। शेष सब जितने भी उत्पादक कारण हैं वे निमित्त कारण कहलाते हैं। इन तीन कारणोंका संक्षेपमें स्पष्ट स्वरूप यह हुआ कि जिसमें कार्य बनता है वह तो है समवायिकारण, पर उन समवायि कारणोंका संयोग बने तो वह है असमवायि कारण, और बाकी जितने भी और कारण हैं, जो उत्पत्तिके हेतुभूत हैं वे सब हैं निमित्त कारण। जैसे—भाग्य, आकाश आदि। जिन जीवोंके भाग्यके उदयसे उनका उपयोग होगा तो उनके कार्योंके बननेमें भाग्य भी तो निमित्तकारण है।

असमवायि कारण सदा न मिलनेसे परमाणुसे सर्वथा कार्यकी अनुत्पत्तिका शंकाकार द्वारा प्रस्ताव—समवायि कारण, असमवायि कारण व निमित्त कारण ये तीनों कारण जब मिलें तो कार्यकी उत्पत्ति होती है। उनमेंसे अपेक्षणीय जो संयोग है उसका जब अभाव है तो सारे कारण हुए, कहाँ मिले अतः द्वयणुक आदिक कार्य नहीं बनते। शंकाकार कह रहा है कि नित्य परमाणुवों जो द्वणिक आदिक कार्य द्रव्य बनते हैं, जो कि अनित्य हैं तो यह कह कर कि परमाणुवोंमें यदि द्वयणुकादि कार्य उत्पन्न करनेका सामर्थ्य है तो सब कार्य एक साथ क्यों नहीं हो जाते ? सो यह आक्षेप ठीक नहीं है। उसका कारण यह है कि सारे कारण पूरे हुए कहाँ ? समवायि कारण तो हर जगह मौजूद है पर असमवायि कारण तो नहीं मिल पा रहा। अर्थात् अणु-अणु हैं मौजूद पर जब उनका संयोग बने तब ना द्वयणुक आदिक कार्य बनेंगे। तो संयोग नामक असमवायि कारण नही मिला हुआ है इस कारण पूरे कारण नही मिल पाये अतः कार्यकी उत्पत्ति नही होती। उसमें यह दोष देना अयुक्त है कि अणुवोंसे समस्त कार्य क्यों नहीं एक साथ हो जाते ?

शंकाकारकथित अपेक्षणीय संयोगकी कारणतापर ऊहापोह—अब उक्त शंकाका उत्तर देते हैं कि समवायि असमवायि कारणका विभाग करके कार्यको उत्पत्तिकी व्यवस्था बनाना सही नही है, क्योंकि यहां शंकाकार कह रहा है कि अपेक्षणीय जो संयोग है वह अभी नही मिल पाया इसलिए द्वयणुकादिक कार्य नही बन रहे हैं। तो उन अणुवोंको क्या संयोगकी अपेक्षा करनी पड़ रही है ? जो नित्य होते हैं उनको तो किसीकी अपेक्षा नही करनी पड़ती। यदि कोई पदार्थ किसीकी अपेक्षा करे कि इसकी अपेक्षा करके यहाँ यह कार्य उत्पन्न हो सक रहा है तो उस कारणभूत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पदार्थमें नित्यता न ठहर सकेगी, क्योंकि उनमें अब दो स्वभाव आगए—अपेक्षा करके कार्य उत्पन्न कर सकना और अपेक्षा न करके कार्य उत्पन्न न कर सकना, नित्य पदार्थमें संयोगकी अपेक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि संयोगादिक उसमें कोई अतिशय ही नहीं धर सकते। अपेक्षाका तो अर्थ यह है कि जिसकी अपेक्षा की गई, उसका संयोग हो जानेपर कोई अतिशय पैदा कर दिया जाता है। अतिशय अगर नहीं पैदा किया जा सकता तो अपेक्षाकी आवश्यकता ही क्या? किन्हीं दो पदार्थोंको मिलाकर विज्ञान में कोई एक जात्यंतर तीसरी प्रयोगकी बात बनाया करते हैं। दो रसायन मिलाकर कुछ एक नया प्रभाव बनाते हैं उन दो रसायनोंका संयोग कुछ अतिशय ही तो पैदा करता है तब तो उसकी अपेक्षा पड़ती है। इसी तरह नित्य परमाणुवोंको संयोगकी जो अपेक्षा पड़ रही है तो यह बतलावो कि उनमें अतिशय क्या कर दिया जाता है?

संयोगको ही परमाण्वतिशय माननेपर विडम्बनाओंका प्रदर्शन—यदि कहो कि संयोग हो जाना ही परमाणुवोंका अतिशय कहलाता है क्योंकि और अतिशय कुछ कहे जायें तो उनकी नित्यताका घात होता है। ऐसा यह अतिशय है कि उन परमाणुवोंका संयोग हो जाता है। तो पूछते हैं कि वह अतिशय नित्य है अथवा अनित्य, परमाणुवोंमें जो अतिशय पैदा किया गया उसे चाहे संयोग नामसे ही कहकर दोषोंसे परे होनेकी चेष्टा की लेकिन वह भी अतिशय है। अथवा अनित्य न कहकर संयोग नामक अतिशय नित्य है तो सदा कार्यकी उत्पत्ति होनी चाहिए, क्योंकि परमाणुवोंमें द्वयणुक आदिक कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव तो था ही और असमवायि कारण जो संयोग है वह भी नित्य मान लिया गया तब तो सभी ही कार्य उत्पन्न होने चाहियें। यदि कहो कि वह संयोग अथवा अतिशय अनित्य है, तो जब वह अतिशय अनित्य है तो इसका अर्थ है कि अभी उस अतिशयको भी पैदा करना पड़ रहा है। जो अनित्य है वह पैदा किया जाता है और नष्ट होता है, यह नीति है तो वह अतिशय आदि अनित्य है सो उस कल्पित उत्पत्तिमें किसकी उत्पत्ति मानी जाय? संयोग अथवा कार्यकी? परमाणुवोंके संयोग नामका अतिशय और वह है अनित्य तो उसकी उत्पत्तिका कारण क्या है? यदि संयोग कहते हो तो वही संयोग कारण है या अन्य संयोग कारण है? यदि कहोगे कि वही संयोग कारण है तो अभी तो उस संयोगकी सिद्धि नहीं हो पा रही। उस की तो चर्चा चल रही है उस संयोगकी तो अब तक भी सिद्धि नहीं हो सकी। और फिर अपनी ही उत्पत्तिमें अपने ही व्यापारका विरोध है। अर्थात् संयोग संयोग को उत्पन्न करनेमें वहीं संयोग व्यापार करके इसका विरोध है, क्योंकि जो स्वयं उत्पन्न—नहीं हो रहा उसका अपने आपमें व्यापार कैसे हो जायगा? उस ही संयोगकी उत्पत्तिकी ही बात पूछ रहे हैं। यदि कहो कि अन्य संयोगसे उस संयोगकी उत्पत्ति हो जायगी तो प्रथम बात यह है कि अन्य संयोग माना नहीं गया है शंकाकारके सिद्धान्तमें और फिर मान भी लिया जाय अन्यसंयोग तो फिर उस द्वितीय संयोगकी उत्पत्तिमें कारण मान लिया जायगा तृतीय संयोग नामका अतिशय, फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तृतीय संयोगकी उत्पत्तिमें कारण माना जायगा चतुर्थ संयोगातिशय। तो अनवस्था दोष आयगा, इसलिए संयोग संयोग नामक अतिशयको उत्पन्न करनेमें कारण नही है। यदि कहो कि क्रियाका अतिशय संयोग नामक अतिशयको उत्पन्न करनेमें समर्थ है तो उस क्रिया अतिशयमें भी पूछा जायगा कि उसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इस तरह अनवस्था आदिक दोष बराबर रहेंगे। तो संयोग नामक अतिशय असमवायि कारण मान कर परमाणुवोंमें हमेशा कार्य नही होता यह सिद्ध करना अयुक्त है।

अदृष्टापेक्ष आत्मपरमाणुसंयोगसे द्व्यणुकादि कार्य माननेकी शंकाका समाधान – शंकाकारकी एक यह मान्यता है कि अदृष्टकी अपेक्षा रखकर आत्मा और परमाणु संयोगसे परमाणुवोंमें क्रिया उत्पन्न होती है और उनका यह अनुमान है कि द्व्यणुक आदिक कार्य आत्माके अदृष्टके कारण होते हैं क्योंकि आत्मा व्यापक है और उसका अदृष्ट सब जगह फैला हुआ है। जहाँ अणुवोंमें द्व्यणुक आदिक कार्य हों उसमें कारण आत्माका अदृष्ट पड़ता है। तो ऐसा माननेवालोंसे यह पूछना है कि आत्मा और परमाणुका जो संयोग बना तो उस संयोगकी उत्पत्तिमें क्या अन्य अतिशय है सो तो बताओ ? यदि कुछ अन्य अतिशय बताये जायेंगे तो अनवस्था दूषण आता है। शंकाकारकी ऐसी मान्यतामें कुछ यह बुद्धि भी उनको सहयोग दे रही है कि जितने भी द्व्यणुक आदिक कार्य हो रहे हैं वे सब कार्य तो आत्माके लिए हो रहे। जो भी दुनियामें स्कंध बन रहे हैं उनका उपभोग कौन करेगा ? आत्मा करता है। तो आत्माके भाग्यसे ही ये सारे काम हो रहे हैं। तब यों मानों कि अदृष्ट पेक्ष आत्मा और परमाणुके संयोगसे परमाणुवोंमें द्व्यणुक आदिक क्रियायें होती हैं तो इनमें कोई अतिशय बताया जाना चाहिए जिसके कारण इनमें ही संयोग बनता है और संयोगसे कोई उन परमाणुवोंमें अतिशय पैदा होता है। यदि अन्य अतिशयकी बात कहोगे तो अनवस्था दोष होगा।

द्व्यणुकादिकार्यनिर्वर्तक संयोगका परमाण्वाद्याश्रितत्व, अन्याश्रितत्व व अनाश्रितत्व इन तीन विकल्पोंमें निराकरण – और भी बतलाओ कि द्व्यणुक आदिकका रचने वाला यह संयोग क्या परमाणु आदिकके आश्रित है या किसी अन्य निमित्त कारणके आश्रित है अथवा अनाश्रित है ? अणु बिखरे हुए अलग-अलग थे, अब उनका संयोग हुआ वे द्व्यणुक बन गए, स्कंध बन गए तो इस प्रकारका जो कार्य बना उस कार्यका रचने वाला है संयोग तो वह संयोग किसके आश्रयमें रह रहा है ? क्या उन परमाणुवोंके आश्रयमें रह रहा या अन्य आकाश अदृष्ट आदिक निमित्त कारणोंमें रह रहा है अथवा कहीं भी नही रहता, अनाश्रित ही है ? उक्त तीन विकल्पोंमेंसे यदि कहोगे कि संयोग परमाणु आदिकमें रहता है तो यह बतलावो कि संयोगकी उत्पत्तिके समय संयोगका आश्रय भी उत्पन्न होता है या नहीं ? यदि कहो कि परमाणुवोंमें जो संयोग रहता है उस संयोगकी उत्पत्तिके समय संयोगका आश्रयभूत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमाणु भी उत्पन्न होता है या परमाणुवोंमें भी कुछ अतिशय उत्पन्न होता है तब तो परमाणु भी कार्य कहलाने लगे । परमाणुको आप कार्य मानते नही, उन्हें नित्य मानते हो । यदि कहो कि संयोगकी उत्पत्तिके समय आश्रयभूत परमाणु उत्पन्न नही होते तब तो संयोग परमाणुके आश्रित नही कहलाये, क्योंकि वहां तो उन परमाणुवोंमें तो कारकपना कुछ भी नहीं आया ? संयोग भी कैसे उत्पन्न हो गया ? और, वे सब परमाणु अब अकारक रहे, कारण नहीं रहे, क्योंकि कोई अतिशय ही न बने । यदि कहो कि संयोगको उत्पन्न करनेके स्वभावका अतिशय तो परमाणुवोंमें नही होता. फिर भी वे कार्यको उत्पन्न करते हैं तब तो सदा काल कार्य उत्पन्न करनेके प्रसंग आयगा क्योंकि अब निरतिशयपना तो सदाकाल रह रहा है यदि उसमें अन्य अतिशयकी कल्पना करोगे तो अनवस्था है । उस अतिशयको करनेके लिए अन्य अतिशयोंकी कल्पना करनी पड़ेगी । इससे परमाणुको सर्वथा नित्य माननेपर कार्य होनेसे स्कंध बननेकी व्यवस्था नही हो सकती, इस कारण ऐसा ही मानो कि वे परमाणु जब कि बिखरे हुए थे तब तो असंयोग रूप थे, अब उन परमाणुमें असंयोगताका तो किया त्याग और संयोग रूपसे बनाया तब स्कंध कार्य बना और ऐसा माननेपर यह सिद्ध होगा कि परमाणु भी कथंचित् अनित्य हैं । द्रव्य दृष्टिसे तो वे नित्य हैं । कोई द्रव्य मिटता नही हैं पर परमाणुवोंमें भी नाना प्रकारकी परिणतियां होती हैं उस दृष्टिसे वे कथंचित् अनित्य हैं । यदि कहो कि संयोग अन्याश्रित है । निमित्त कारणोंके आश्रित है तो जितने दोष अभी बताये गए थे वे सब दोष इसमें भी लगेंगे । यदि अनाश्रित मानते हो कि संयोग किसीके आश्रय ही नही रहता तो इसका अर्थ यह हुआ कि निर्हेतुक उत्पत्ति हो गयी । कुछ कारण ही न था और उत्पत्ति हो जाती । जब निर्हेतुक उत्पत्ति होने लगी तो कार्योंका सदा सत्त्व होना चाहिए, क्योंकि संयोग सदा काल है, और समवायि कारण परमाणु सदाकाल है। और निमित्त कारण सदा रहा ही करता है तो समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण सदा ही जुटे हुए रहे तो कार्य सदा होना चाहिए। और फिर यह बतलावो कि संयोगको यदि अनाश्रित मानते हो तो वह गुण कैसे कहलायगा ? गुण तो वह कहलाता जो द्रव्यके आश्रय हो । द्रव्याश्रयः निर्गुणः गुणः । यह स्वरूप वैशेषियकोंने भी माना । गुण उन्हें कहते हैं जो द्रव्यके आश्रय हों और स्वयं गुण रहे हों । तो संयोग यदि अनाश्रित है तो वह गुण नही कहला सकता--आकाश आदिककी तरह । जैसे —आकाश किसीका गुण है क्या ? वह तो स्वतन्त्र है, ऐसे ही अनाश्रित होनेसे संयोगमें गुणत्व ही नही रहा ।

असमवायि कारणरूप संयोगकी सर्वदेशसे तथा एक देशसे परमाणुवों में रहनेकी असिद्धि—अच्छा अब यह बताओ कि यह संयोग अणुवोंमें सर्वरूपसे है अथवा एक देशसे है ? शंकाकारका यह सिद्धान्त है कि भिन्न-भिन्न परमाणुवोंसे जो स्कंध बन जाता है तो उस स्कंध बननेमें तीन कारण पड़ते हैं । समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण वे परमाणु स्वयं समवायी कारण कहलाते हैं जिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमाणुवोंमें द्वयणुक आदिक स्कंध बनते हैं और उनका जो संयोग होता है वह है असमवायि कारण। फिर बाहरका जो वातावरण है वह कहलाता है निमित्त कारण। तो परमाणु परमाणुवोंमें जो संयोग बना है तो क्या सर्वरूपसे उनका संयोग होता है या एक देशरूपसे होता है? अगर कहो कि सर्वरूपसे संयोग होता है, दो अणु हैं भिन्न-भिन्न और उनका संयोग ऐसा हुआ कि सर्वरूपसे हो गया वह पिण्ड एक अणु ही तो कहलायेगा। अर्थात् सर्वात्मना अणुवोंवोंमें संयोग होनेसे पिण्ड भी अणु माना हो जायगा। और फिर उसमें अवयव न बन सकेंगे। जैसे दो अणु सर्वरूपसे संयुक्त हो गए फिर अवयव क्या रहा? कोई पदार्थ इतना बड़ा है और उसके ये हिस्से हैं यह अवयव कैसे बनेगा? यदि कहो कि उन परमाणुओंका संयोग एकदेशसे होता है तो परमाणुवोंमें भी अंशपना आ गया। परमाणु परमाणुवोंमें एक देशसे संयोग होता है, तो इसका अर्थ है कि एक परमाणुके एक देशमें तो संयोग हुआ और शेष बचे रहे तब परमाणु निरंश कहाँ रहा? उसके तो अनेक अंश हो हो बैठे। तो इस तरह जब विचार करते हैं संयोगके बारेमें तो द्वयणुक आदिक कार्योंमें संयोगकी सिद्धि नहीं बनती। तो जब संयोग ही सिद्ध नहीं हो पारहा तो फिर संयोगको परमाणुवोंका अतिशय क्या कहा जाय? और निरतिशय होकर वे परमाणु यदि कार्यको उत्पन्न करदें याने परमाणुवोंमें कोई अतिशय प्रभाव कुछ भी न हो और वह स्कंध कार्यको उत्पन्न करदे तो फिर एक ही साथ समस्त कार्योंकी उत्पत्ति हो जाना चाहिए परन्तु ऐसा होता तो नहीं, इस कारण परमाणुवोंमें यह बात पाई गई कि पहिले तो अजनक स्वभाव है अर्थात् जब परमाणु बिखरे हुए थे तो उस हालतमें इनमें स्कंधको उत्पन्न करनेका स्वभाव न था। यह पर्यायस्वभावकी बात कह रहे हैं। और, विशिष्ट संयोग परिणामसे परिणत हो रहे तो परमाणुवोंमें अब जनक स्वभाव आया। वहां स्कंधको उत्पन्न करदे ऐसा स्वभाव सम्भव हो गया। इससे परमाणुवोंमें कथंचित् अनित्यपना सिद्ध होता है। अब परमाणु सर्वथा नित्य न रहे जैसे कि मान रहा था शंकाकार कि पृथ्वी, जल, अग्नि वायु ये दो दो प्रकारके हैं नित्य और अनित्य। जो कारणभूत परमाणु हैं वे तो हैं नित्य और जो कार्यभूत द्रव्य हैं वे हैं अनित्य। ऐसी स्वतंत्र-स्वतंत्र परमाणुवोंमें सर्वथा नित्यत्व और अनित्यत्वकी व्यवस्था नहीं है। पदार्थ तो वह एक है, परमाणु परमाणु सब प्रत्येक एक एक हैं और वे ही कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य हैं। वे परमाणु कथंचित् अनित्य कैसे बने? यह तो अनुमानसे भी सिद्ध होता है। जो क्रम वाले कार्योंके हेतुभूत होते हैं वे अनित्य होते हैं। जैसे क्रम वाले अंकुर आदिककी रचना वाले बीज आदिक देखो ना! अनित्य हैं। जैसे वहां पहिले थोड़ा फुलाव हुआ, उसमें फिर फँसा फूटा, फिर अंकुर हुआ, फिर बड़ा बना। तो ये कार्य जब क्रमसे देखे जा रहे हैं तो सिद्ध होता है कि इनकी रचना वाला जो भी कारण है वह भी अनित्य है। इसी तरह परमाणुकी बात है। ये परमाणु क्रम वाले कार्यके हेतुभूत हैं, इस कारण ये भी अनित्य हैं। तब यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नित्यानित्यात्मक होते हैं। अब उसीको ही इस निगाहसे देखलो ! जो सामान्यस्वरूप है वह तो नित्य है और जो विशेषस्वरूप है वह अनित्य है। तो परमाणु कथंचित् अनित्य सिद्ध होता है।

परमाणुके नित्यत्वकी सिद्धिके लिये सद्कारणवत्व हेतुका शङ्काकार का प्रस्ताव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि परमाणु तो नित्य ही होता है क्योंकि सत् है अकारणवान है। उसका कोई कारण नही है, आकाशकी तरह। जैसे कि आकाश सत् है और उसका कोई कारण नही है, इसी प्रकार परमाणु भी सत् है और अकारणवान है, इस कारण नित्य है। देखो ! यह बात असत्य नही है। इतनी बात तो जैन भी मानते हैं कि परमाणु है कुछ। परमाणुके सत्वमें तो किसीको भी विवाद नही है, न इस शंकाकारको, न अन्य दार्शनिकोंको। अब रही अकारणत्वकी बात, सो देखिये ! परमाणुमें अकारणपना है, अर्थात् वह किसी कारणसे उत्पन्न नही होता, क्योंकि परमाणुका जो परिमाण है उससे छोटा परिमाण वाला कुछ पदार्थ ही नही। किसी भी कार्यका कारण जो कुछ भी होता है वह अल्प परिमाण वाला हुआ करता है। कार्य होता है बड़ा और कारण होता है छोटा परिणाम वाला। और, जब परमाणुसे छोटा परमाणु कुछ है ही नही तब यह सिद्ध होता है कि परमाणु अकारणवान है। कारण जितने भी होते हैं वे कार्यसे अल्प परिणाम सहित ही होते हैं। द्वयणुक अवयवी द्रव्य कैसे उत्पन्न होता है ? अपने परिणामसे अल्प परिणाम वाले अणुवोंसे उत्पन्न होता है। जो भी कार्य हुआ करते हैं वे अपने परिमाणसे अल्प परिमाण वाले कारणोंसे रचे जाते हैं। जैसे कपड़ा कार्य अपने परिमाणसे अल्प परिमाण वाले तंतुवोंसे बनाया गया है। कपड़ेका कारण क्या ? सूत ! तो सूतका परिमाण बड़ा होता है कि कपड़ेका ? कपड़ेका परिमाण बड़ा होता है। तो कार्य जितने भी होते हैं वे कारणके परिमाणसे बड़े होते हैं। कार्यके जितने भी कारण होते हैं वे कार्यके परिमाणसे छोटे परिमाण वाले होते हैं। तो जब परमाणुसे और छोटे परिणाम वाला जगतमें कुछ भी नही है तो इससे सिद्ध है कि परमाणु अकारणवान है। तो यों जब परमाणु सत् है और अकारणवान है तो उससे यह सिद्ध है कि वह नित्य ही होता है। जैसे कि आकाश सत् है और कारणवान है, इस कारण नित्य होता है।

शंकाकारद्वारा कहे गये परमाणुके अकारणतत्त्वकी असिद्धि—अब इसका समाधान करते हैं कि परमाणुका सत्त्व तो सिद्ध है। याने परमाणु तो सत् है कुछ किन्तु वह अकारणवान है यह सिद्ध नही ? याने जैसे स्कंध हैं बहुतसे और उन स्कंधोंसे टूटकर परमाणु कोई रह गए तो वे परमाणु कार्य रूप रहे। स्कंधोंकेविच्छेद से परमाणुकी उत्पत्ति हुई। जैसे—कहते हैं ना—भेदादणुः। परमाणु भेदसे उत्पन्न होता है। तो स्कन्धके भेदसे उत्पन्न परमाणकी जो परमाणुरूपता है वह कार्य कहलाती है। और, कार्य कारणसे बना। परमाणु स्कंधका याने अवयवी द्रव्यका भेद अथवा विनाश

http://sahjanandvarnishastra.org/
होनेसे उत्पन्न हुआ करता है। अवयवी द्रव्य बिखरे तब परमाणु हुआ करते हैं। इससे परमाणु कार्यभूत हो गए, अकारणवान न रहे। देखो—ना। जैसे घटका विनाश होनेसे खपरियोंकी उत्पत्ति होती है। तो खपरियाँ भी अकारणवान हुआ करती हैं कि सहेतुक ? खपरियाँ अकारणवान नही क्योंकि वे घट पिण्डके विनाशसे उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार स्कधके अवयवी द्रव्यके विनाशके कारणसे जब परमाणु उत्पन्न हुए हैं तो परमाणुवोंको अकारणवान नही कह सकते। यह साधन असिद्ध भी नहीं है। देखो जब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्यका विनाश होता है तब ही परमाणुका सद्भाव जाना गया है। अतः परमाणु अकारणवान नही हैं, और जब सहेतुक है परमाणु तो वह सर्वथा नित्य नही रहा। अतः परमाणु द्रव्य कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य वहाँ यह विभाग नही कर सकते कि नित्य परमाणु अलग हुआ करता है और अनित्य परमाणु कोई दूसरा हुआ करता है।

द्रव्यपर्यायात्मक परमाणु द्रव्यमें नित्यानित्यात्मकताका कथन— वैशेषिक सिद्धान्तमें परमाणु दो प्रकारके माने गए हैं—एक परमाणु और एक कार्य परमाणु अर्थात् कार्य द्रव्य। कारण परमाणुको तो नित्य कहा है और कार्य परमाणु को याने अनित्य कहा है। इसपर यह कहा गया है कि जब परमाणु किसी स्कंधसे बिखर करके उत्पन्न होते हैं तो परमाणु बिखर गए ना और जो कार्य होता है वह अनित्य होता है। तो जब दो अणु वाले स्कधमेंसे टूटकर परमाणु निकला तो वह परमाणु अनित्य हो गया। जो जो स्कंध द्रव्यके विनाशके कारण उत्पन्न हुआ है उसको आप अकारणवान कैसे कह सकते ? वह तो कारणसे उत्पन्न हुआ। जैसे कि घटका विनाश होनेपर खपरियाँ उत्पन्न होती हैं तो खपरियाँ अकारण तो न कहलाती, इसी प्रकार जब परमाणु स्कंधके अवयवीके विनाश पूर्वक होते हैं तो उन्हें अकारण नही कह सकते। वे सकारणरूप हैं और इसी कारण अनित्य हैं। हाँ द्रव्य स्वरूपकी अपेक्षा वे नित्य हैं। जब स्कंध अवस्थामें थे परमाणु तब भी वे अपना वही स्वरूप सत्त्व बनाये रखे थे और वही अनन्तकाल तक रहेगा, तो द्रव्य दृष्टिसे परमाणु नित्य है और पर्याय दृष्टिसे परमाणु अनित्य है।

परमाणुके कार्यरूपत्वके साधक स्कन्धावयवभेद पूर्वकत्व साधनमें भागासिद्ध दोषका अभाव—अब यहाँ अवयवी द्रव्यके विनाश पूर्वक उत्पन्न होनेसे परमाणुको अनित्य सिद्ध करनेके प्रसंगमें शंकाकार कह रहा है कि कुछ परमाणु तो ऐसे होते हैं जो सर्वथा स्वतंत्र हैं याने स्कंधसे टूटकर नही फिके, किन्तु पहिलेसे ही परमाणुरूप हैं। तो ऐसे परमाणु जो कि कभी भी पहिले अवयवी द्रव्यरूप नही बने हैं वे परमाणु तो विनाशके विना ही सम्भव है। हाँ जो परमाणु स्कंध रूपमें आ गए उन्हें तो आप कह सकते हो कि स्कंधके, अवयवीके विनाश होनेपर परमाणु उत्पन्न हुए पर जो परमाणु सदासे ही स्वतंत्र हैं, कभी अवयवी रूप बने ही नही उन परमाणु-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वोंका तो स्कंधके विनाशके बिना ही सत्त्व है । तब तुम्हारा भागासिद्ध नामक दोषसे दूषित हो गया, अर्थात् यह साधन बनाना कि रपमाणु हेतु स्कंधसे अवयवी द्रव्यके विनाश पूर्वक होते हैं यह सिद्ध न हो सका । देखो कहाँ हेतु सब परमाणुवोंमें गया ? कुछ परमाणु स्वतंत्र भी हैं और कभी स्कंध रूप हुए ही नही । अब उक्त शंकाका उत्तर देते हैं कि ऐसा दोष देना युक्त नही है क्योंकि सर्वथा ही स्वतंत्र रहे हो ऐसे परमाणु असिद्ध हैं । दुनियामें ऐसा परमाणु है ही नही जो अनादि कालसे अब तक परमाणु ही परमाणु रहा हो । कभी स्कंधरूपमें अवयवी द्रव्यमें न आया हो । अनुमान प्रयोग बना लीजिए कि स्वतंत्र रूपसे विवादापन्न परमाणु अर्थात् जिसकी स्वतंत्रताके सम्बन्धमें कुछ विवाद कर रहे हो ऐसे सब परमाणु भी स्कंधके विनाश पूर्वक ही होते हैं । अर्थात् सभी परमाणु स्कंध विनाश पूर्वक हैं क्योंकि परमाणु होनेसे । जैसे द्वयणुक आदिक अवयवोंके भेद पूर्वक परमाणु परमाणु हैं अतएव स्कंधके भेद पूर्वक हैं । अर्थात् सभी परमाणु स्कंधके विशाशपूर्वक हुए हैं, ऐसा परमाणु स्कंधके विनाशपूर्वक हुए हैं, ऐसा परमाणु कोई नही है जो अनादि कालसे लेकर अब तक अनन्त काल व्यतीत हो चुका ना, उसमें स्वतन्त्र ही रहा आया हो ।

परमाणुके कार्यरूपत्वके साधक स्कन्धावयवभेदपूर्वकत्व हेतुमें अनैकान्तिक दोषका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि तुम्हारा यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है । कैसे ? सो देखिये ! आपने यह कहा है कि स्कंधके अवयवीके भेद पूर्वक होनेसे खपरियाँ अथवा तंतुकी तरह परमाणु भी कार्यरूप है और अनित्य है । तो देखो ! कपड़ा बन चुकनेके बाद तंतुवोंको बखेरा जाता है तो एक एक सूत अलग हुए वे तो पटके भेदपूर्वक हैं, कपड़ेके फाड़नेपर या उस सूतके निकालनेपर सूत हुए हैं, लेकिन ऐसे भी तो सूत हैं जो कपड़ा बुना जाय उससे पहिले सूत ही थे, वे सूत तो कपड़ाके विनाशपूर्वक नही हुए । यह कहना कि सभी परमाणु अवयवीके विनाशपूर्वक हुए और उसमें दृष्टान्त खपरियोंका और तंतुवोंका दिया सो सूत तो अनेक ऐसे हैं कि जिनका अभी तक कपड़ा नही बनाया गया और पहिलेसे ही स्वतत्र हैं । तब यह तो नियम न रहा कि तंतु सारे कपड़ेके बननेके बाद ही भेदन करनेसे हुआ करते हैं । तब तो तुम्हारा हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो गया । तो जैसे तंतु पटभेदपूर्वक नहीं भी होते इसी प्रकार अनेकों परमाणु भी स्कंधके भेदपूर्वक नही भी होते । इस शंकाका उत्तर देते हैं कि तंतु अब तक पटरूप नही बने हैं । लाखो सूत ही सूत हैं वे भी अवयवोंके भेदपूर्वक हुए हैं । पहिले पौनीके रूपमें थे और पौनीका अभाव होकर तंतु निकला तो पौनी तो एक मोटी चीज है, अवयवीरूप है और उसमेंसे थोड़ा थोड़ा कातनेसे सूत बना है तो वह कहना कैसे सही है कि सूत अवयवीके भेदपूर्वक नही हुए अवयवी मायने कोई पिण्ड, बड़ी चीज । लेकिन यहाँ देखो ना ! सूत भी पौनीके भेदपूर्वक हुए हैं । तो वह भी स्कंधके भेदपूर्वक कहलाया ।

Version 1

परमाणुमें स्कंधविनाशपूर्वकत्व असिद्ध करनेके लिये संयोगविनाशसे अर्थविनाश माननेकी शंका व समाधान—शङ्काकार कहता है कि देखो बलवान पुरुषसे प्रेरित जो मुद्गर आदिकका घात है अर्थात् किसी बलवान पुरुषने बड़े मुद्गर मार दिया तो उस मुद्गरका प्रहार होनेसे अवयवोंमें कार्यको उत्पत्ति हुई और फिर अवयवोंके बिखर जानेसे संयोगका विनाश हुआ और संयोगका विनाश होनेसे पदार्थों का विनाश हुआ। तो मतलब यह हुआ कि वह जो पदार्थ विनाश हुआ वह अवयवके भेदसे नही हुआ किन्तु संयोगके विनाशसे हुआ इसी तरह उस सूतके बननेमें बात क्या हुई कि वहाँ जो पौनीके अवयवोंका विनाश हुआ, भेद हुआ वह इस तरह हुआ कि किसी बलवान पुरुषने या महिलाने हस्तादिक क्रियावोंका अभिघात किया, उसे खींचा, ताना। उससे हुआ क्या? उस पौनीके अवयवमें क्रिया बनी। उससे हुआ अवयवका विभाग और उससे हुआ पौनीसे अवयवोंके संयोगका विनाश और संयोगके विनाशसे पौनीका नाश हुआ और वहाँ जो तंतु उत्पन्न हुए वे पौनीके भेदके कारण नही हुए, किन्तु तंतुके जो आरम्भिक अवयव हैं, जिससे ततुका प्रारम्भ होता है उन अवयवोंसे तन्तु उत्पन्न होते हैं। तो यों कपड़ा बननेसे पहिले रहने वाला तंतु जो तंतु है वह पौनीके भेदपूर्वक नही होता। इसी तरहसे परमाणु भी अवयवीके भेदपूर्वक नही होता। इसी तरहसे परमाणु भी अवयवीके भेदपूर्वक नही होता। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहके विनाशकी प्रक्रिया बताना और उत्पादकी प्रक्रिया बताना यह तो केवल वचनजाल है, तुम कहते हो कि पौनीके तंतु पौनीसे नही बने किन्तु तंतु तो अपने अवयवोंसे बने हैं और वहाँ जो पौनीका नाश हुआ है सो नाश होनेसे पौनीका नाश हुआ है न कि भेदकरनेसे। और संयोगका नाश हुआ है अवयवके विभागसे और अवयवका विभाग हुआ है अवयवोंमें क्रिया होनेसे तो यह तो केवल एक वचनजाल है और इसका तो निषेध पहिले ही कर दिया था। सीधा जो प्रत्यक्ष सिद्ध है उसको टालकर और वचनजाल करके उसका निषेध करना तो यह बकवाद है जडता है।

परमाणुमें नित्यानित्यात्मकताकी प्रतीति—भैया! यही मानना सही है कि परमाणु ही पहिले कार्यके अजनक स्वभावको लिए हुए थे और संयोग दशामें परमाणु ही कार्यजनकत्व स्वभाव वाले हो गये। तो अजनक स्वभावका परित्याग करके जनक स्वभावमें आया है परमाणु। यों परमाणु कथंजित् नित्य है। नही तो, अगर सर्वथा ही नित्य है परमाणु और उनमें एकत्वका स्वभाव पड़ा हुआ है तो कार्यको उत्पन्न करनेका स्वभाव कह ही नही सकते उनमें, क्योंकि नित्य कहते हो हैं उसे कि जिसमें जरा भी बदल न हो। तो जब नित्य एकत्व स्वभाव वाले परमाणुवोंमें बदल जरा भी नही होती और उनमें जनकपना नही मानते तो उन परमाणुवोंके द्वारा रचा गया द्वयणुक आदिक द्रव्य अनित्य है यह कहना अयुक्त है, क्योंकि जैसे तंतु आदिक अवयवोंसे भिन्न पट आदिक अवयव द्रव्य कोई भिन्न नजर नही आते और नजर आरहा है कपड़ा क्योंकि वह उपलब्धि लक्षण प्राप्त है। परन्तु तंतु आदिक अवयवोंसे निराला

http://www.jainkosh.org

कहीं कपड़ा नजर तो नहीं आ रहा। तो इसी तरह परमाणुवोंसे निराला कोई द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य नहीं होता जिससे कि यह कहलें कि परमाणु तो नित्य ही होते हैं और उनसे बने हुए जो अवयवी पिण्ड हैं वे अनित्य होते हैं यह बात नहीं बन सकती। देखो! कपड़ा बिल्कुल दिख रहा है, परन्तु पर तंतुवोंसे न्यारा होकर दिख रहा हो सो नहीं। जैसे यह कपड़ा तंतुमय है ऐसे ही द्वयणुक आदिक द्रव्य हैं, वे परमाणुमय हैं। जब द्वयणुक अनित्य है तो परमाणु भी अनित्य है।

समानदेशत्व होनेसे अवयवोंसे भिन्न अवयवी नजर न आनेके कथनकी असिद्धि— शंकाकार कहता है कि अवयवोंसे भिन्न अवयवी जो नजर नहीं आरहा है वह समानदेशी होनेसे नजर नहीं आ रहा। यहाँ जो अविशेषवादोंमें यह बात कही जा रही है कि जब अवयवोंसे भिन्न अवयवी नजर नहीं आते तो जो बात अवयवीमें है वही बात अवयवमें है जैसे कि तंतु आदिक अवयवोंसे कपड़ा भिन्न नजर नहीं आरहा तो जो बात कपड़ामें है वही बात तंतुवोंमें है। शंकाकार कहता है कि यह कहना यों ठीक नहीं कि अवयव और अवयवी एक ही देशमें रह रहे हैं, इस कारण अवयवोंसे निराला अवयवी प्राप्त नहीं होता। अब उक्त उत्तरमें कहते हैं कि समान देशमें रहनेके कारण यदि भिन्न–भिन्न रूपसे पदार्थ न जाना जाय तो देखो! एक ही जगहमें वायु और गर्मी है। मगर, वायु भिन्न समझमें आती है और गर्मी भिन्न समझमें आती है तो यह बात तो न रही कि एक ही देशमें रहनेके कारण भिन्न रूपसे पदार्थ नजर नहीं आते। अवयवोंके देशमें अवयवी रह रहा है, इस कारण अवयवी अवयवसे भिन्न नजर नहीं आता, यह कहना अयुक्त है। अथवा किसी फलमें रूप और रस तो बिल्कुल एक ही जगह रह रहे हैं और फिर भी रूप और रस न्यारे–न्यारे समझमें आते हैं। तो यह कहना ठीक नहीं है कि समानदेशपना होनेके कारण भेदरूपसे अवयव और अवयवी नजर नहीं आरहे। समानदेशमें भी है रूप रस तथा समानदेशमें भी है वायु और गर्मी, मगर उनका स्वरूप निराला बराबर समझमें आता है। तो यों ही यदि अवयव अवयवी कुछ न्यारे ही न्यारे होते तो समानदेशमें रहनेपर भी ये भिन्न–भिन्न समझमें आते. पर न्यारे तो हैं ही नहीं। मिट्टीके जितने कण हैं, जिनसे घड़ा बना है, क्या घड़ा मिट्टीके उन सब अवयवरूप कणोंसे निराला है? फिर घड़ा ही क्या रहा? तो द्वयणुक आदिक जो अवयवी द्रव्य होते हैं वे परमाणुसे निराले ही हैं। परमाणु उनका उपादान है और उनका कार्यद्रव्य उनसे अत्यन्त जुदा नहीं है प्रतिभासभेद भर है। तब परमाणु कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। उनमें यह विभाग करना कि पृथ्वी आदिकमें परमाणु तो नित्य कहलाते हैं और उनका जो कार्य द्रव्य है, पिण्ड है, अवयवी है वह अनित्य कहलाता, यह कहना अयुक्त है।

अवयव और अवयवीको अभिन्न माननेको भ्रान्त ज्ञान सिद्ध करनेमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणरूपसे बताये गये समान देशपना हेतुकी शास्त्रीय देश व लौकिकदेश दोनों विकल्पोंमें असिद्धि—शंकाकार कह रहा है कि अवयव और अवयवी भिन्न भिन्न हैं, किन्तु समान देशपना होनेके कारण ऐसा लगता है कि अवयवोंसे भिन्न अवयवी नही है, हैं दोनों न्यारे–न्यारे। शंकाकारको अवयवोंसे भिन्न अवयवी क्यों मानना पड़ा ? यों मानना पड़ा कि अवयव व अवयवीको अभिन्न कर देनेसे अवयवीके नष्ट होनेपर अवयवको भी नष्ट हुआ मानना पड़ेगा। यदि अवयव अवयवी भिन्न न माने जायें और ऐसा माननेपर अवयव हुए परमाणु, वे भी अनित्य बन बैठेंगे। तो शंकाकारका सिद्धान्त है कि कारण द्रव्य तो है नित्य और कार्य द्रव्य है अनित्य इस कारण अवयव अवयवीको भिन्न–भिन्न मानना पड़ेगा। और विशेषवादमें तो कुछ ज्यादह सोचना ही नही है। हर जगह भेदकी बात तो बोल ही देना चाहिए। क्योंकि विशेषवाद (भेदवाद) ने तो विशेष (भेद) का व्रत ले रखा है। तो अवयव और अवयवी को शंकाकारने बताया कि समान देश होनेके कारण ये भिन्न–भिन्न ज्ञात नही होते, तो उनसे पूछा जा रहा है कि यह बताओ कि अवयव और अवयवीमें समान देशपना क्या शास्त्रीय देशकी अपेक्षासे है या लौकिक देशकी अपेक्षासे है ? इसका भाव यह है कि अवयव और अवयवी समान देशमें रह रहे हैं तो समान देशका अर्थ क्या अवयव अवयवीके खुदके प्रदेश ? उन प्रदेशोंकी बात कही जा रही है कि वे प्रदेश दोनोंके एक समान हैं अथवा लोक, देश, आकाश, स्थान किसी चीजको घेरे, इसकी अपेक्षा समान देश कहते हो। उक्त दो विकल्पोंमें से यदि कहोगे कि शास्त्रीय देशकी अपेक्षा हम अवयव अवयवीमें समान देश कह रहे अर्थात् अवयवके खुदके प्रदेश अर्थात् अवयवीके खुद के प्रदेश उनमें समान देशपना है तो यह हेतु असिद्ध है, क्योंकि पट अवयवीके आरम्भक तंतु आदिक देश हैं वे जुदे हैं और तंतु आदिकके देश पौनी सम्बन्धी अंश माने गए हैं वे जुदे हैं तो शास्त्रीय देशसे समान कैसे हुए ? वैशेशिक सिद्धान्तमें अवयवके देश और अवयवीके प्रदेश ये न्यारे–न्यारे माने गए हैं। तब समान देशपना तो न रहा यदि कहो कि हम लौकिक देशकी अपेक्षासे अवयवी और अवयवियोंका समान देशपना मानते हैं तो इसमें अनैकान्तिक दोष आता है, क्योंकि लोकमें दिखता है कि एक घड़े में बहुतसे बेर भरे हैं तो सब बेरोंका स्थान तो एक घड़ा ही है सभी बेर एक घड़ेमें रह रहे हैं मगर इन बेरोंकी उपलब्धि भेदके साथ हो रही है। वैशेषिकने तो यह कहा था कि समान देशमें रहनेके कारण अवयव अवयवी अभिन्न माने हुए हैं लेकिन वहाँ तो देखो कि एक ही घड़ेमें रहने वाले उन बेरोंकी उपलब्धि एक नही हो रही है, भिन्न भिन्न हो रही है तब लौकिक देशकी अपेक्षासे भी समान देशपना अवयव अवयवीमें नही बनता।

कतिपय अवयवों या समस्त अवयवोंके प्रतिभा समान होनेपर अवयवीके प्रतिभासकी दोनों विकल्पोंमें असिद्धि—अब और बतलावो क्या कुछ थोड़ेसे अवयवोंके प्रतिभास होनेपर अवयवीका प्रतिभास होता है या समस्त अवयवों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का प्रतिभास होनेपर अवयवीका प्रतिभास होता है ? इसके पूछनेका तात्पर्य यह है कि कोई एक अवयवीको जाना, जैसे घड़ेको ही जाना तो घड़ेमें जितने अवयव है, जितने उसके अंश हैं जितने मिट्टीके कण हैं उनमेंसे कुछ अवयवोंके ज्ञान करनेपर ही घड़ेका ज्ञान हो जाता है या उसके सारे कणोंका ज्ञान करें तब घड़ेका ज्ञान होता है ? उनमें से प्रथम विकल्प तो अयुक्त है । अर्थात् कुछ अवयवोंके प्रतिभास होनेपर ही अवयवी का प्रतिभास हो जाता है, यह कहना अयुक्त है क्योंकि जैसे जलमें डूबा हुआ महान काम वाला हाथी, जिसकी ऊपर केवल जरा सी सूढ़ निकली है । तो थोड़ेसे अवयवों का प्रतिभास होनेपर भी समस्त अवयवोमें रहने वाले उस अवयवी हाथीका प्रतिभास कहाँ हो रहा है ? मनसे विचार लें, युक्तिसे समझलें वह बात दूसरी है मगर थोड़ेसे अवयव प्रत्यक्षसे ज्ञात होनेपर पूरा अवयवी प्रत्यक्ष हो जायें, यह कैसे सम्भव है ? यदि कहो कि समस्त अवयवोंके प्रतिभास होनेपर अवयवीका प्रतिभास होता है तो वह बात अयुक्त है । किसी भी अवयवीको हम प्रत्यक्षसे जानते हैं तो वहाँ समस्त अवयवोंका प्रतिभास कभी भी नही होता है । सारे अवयवोंका प्रतिभास किसीको नही हुआ है । एक इस भींटको देख रहे हैं तो भींटके बीचके अवयव भींटके वे परभागके अवयव, उनका प्रतिभास तो हो ही नही सकता तब अवयवीका भी प्रतिभास न होना चाहिए क्योंकि इस ओरके भागमें रहने वाले अवयवोंको ग्रहण करने वाले प्रत्यक्षके द्वारा उस भागमें या मध्य भागमें रहने वाले अवयवोंका ग्रहण नही हो सकता और इसी कारण इस भागमें समझे गए अवययोंकी व्याप्ति पूरे अवयवोंको ग्रहण करनेमें समर्थ नही हो सकती, कारण कि व्याप्यके अग्रहणमें व्यापकका भी ग्रहण नही हो सकता । अनुमान प्रयोगसे भी समझलें कि जो वस्तु जिस रूपसे प्रतिभास होती है वह वस्तु उस ही प्रकारसे उसके व्यवहारका विषय हुआ करती है । जैसे—नील पदार्थ नील रूपसे प्रतिभासमान होता है तो वह नीलरूपसे ही नील ज्ञानका, व्यवहारका विषय होगा । तब इस ओरके भागमें रहने वाले अवयवोंके सम्बन्धी रूपसे जब हमने इस अवयवका प्रतिभास किया तो बस इसही रूपसे व्यवहार होना पड़ेगा, समस्त अवयोंके सम्बन्धसे हुए अवयवीका व्यवहार नही हो सकता ।

विरूद्ध धर्माध्यास होनेपर भी अभेद माननेपर समस्त पदार्थोंमें अभेद का अनुषङ्ग—भींटके दूसरे भागमें रहने वाले अवयवोंसे व्यवहित अवयवोंका प्रतिभास हो नही रहा और अव्यवहित अप्रतिभासमें आ जाय यह नही हो सकता । अर्थात् भींट के उस भागकी चीज प्रत्यक्षमें नही आ रही और हम उस सारी भींटको पूरा व्यवहित निरन्तर जैसी खड़ी तैसी प्रत्यक्षसे जानलें यह नही हो सकता, क्योंकि जब दूसरे भागके अवयवोंका प्रतिभास ही नही हो रहा तो उन अवयवोमें रहने वाले अवयवीका प्रतिभास कैसे हो सकता है ? देखिये ! जिसके प्रतिभासमात्र होनेपर जो स्वरूप नही होता वह उससे भिन्न माना गया है । जैसे—घटके प्रतिभासमान होनेपर पटका स्वरूप प्रतिभासमान नही होता, तब मानना ही पड़ेगा कि जो प्रतिभासमान घट हो रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है उसके जरिये पटका व्यवहार न किया जा सकेगा। इसी तरह भींटके इस भागमें रहने वाले अवयवोंमें जो अवयवी कहला रहा है उस स्वरूपका प्रतिभास होनेपर भी दूसरे भागमें रहने वाले अवयवों से सम्बन्धित अवयवीका स्वरूप प्रतिभासमें नही आ रहा। फिर जब दो भाग हो गए तो निरंश एक अवयवीकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? यह भींट एक नही है किन्तु इस ओरकी भींट यह है. उस ओरकी भींट वह है। एक अवयवी नही कहा जा सकता। देखो ! इस ओरके भागमें और दूसरी ओरके भागमें जो अवयव रह रहे हैं उनसे सम्बन्ध रखने वाली बातें दो हैं ना ! तो विरुद्ध धर्म आ गए अब यहाँ। अर्थात् एक तो है व्यवहित धर्म वाला और एक है अव्यवहित [समक्ष] धर्म वाला, तो दो धर्म वाले वे भाग हैं दो, फिर भी उनमें अभेद मान लोगे तो सब जगह भेद खतम करदो। घट पटमें भी कहदो —एक ही चीज है। जब इस भागके अवयवोंसे सम्बन्धित अवयवीमें और भींटके दूसरे भागसे सम्बन्धित अवयवीमें एकपना मानकर एक अवयवी कह देते हो तो भिन्न–भिन्न जैसे अनेक पदार्थ रखे हैं, उनको भी एक मान बैठो, क्योंकि विरुद्ध धर्मका परिचय होना यही भेदका कारण हुआ करता है अब विरुद्ध धर्मके होनेपर भी तुम मान रहे हो एक और उसे भी निरंश। देखो ! यह चीज इससे भिन्न है, ऐसा समझनेका उपाय क्या है ? विरुद्ध धर्मका परिचय होजाना, यह गधा ऊँठसे विरुद्ध है यह कैसे जाना ? ऊँटके धर्म जिस तरहके हैं उससे विरुद्ध हैं गधेके, तो विरुद्ध धर्मका परिचय हो जाना यही भेदका कारण हुआ करता है। इसके सिवाय और कुछ भी बात भेदका कारण नही होती। यदि कहो कि प्रतिभास भेदका कारण बन जाता है तो यह भी बात गलत है। केवल इतना कहनेसे बात न बनेगी, क्योंकि भेद करने वाला है विरुद्ध धर्मका परिचय। वह यदि नही है तो प्रतिभास भेद करने वाला नही बन सकता। इस कारण विरुद्ध धर्मका होना ही भेदका कारण बनता है।

सस्मरण प्रत्यक्षसे भी समस्त अवयवोंमें व्यापी अवयवीकी अप्रसिद्धि

यहाँ यह भी नही कह सकते कि दूसरे भागमें रहने वाले अवयवों और अवयवीका जो ग्रहण करे ऐसे प्रत्यक्षसे अवयवीका इस भागमें रहने वाले अवयवोंमें सम्बन्धीपना ग्रहणमें आ जायगा। याने उस भींटके उस भागको छोड़कर इस ओर आना और फिर इस ओर आकर स भागको देख लिया और उनका सम्बन्ध बना लिया लो एक भींटका प्रत्यक्ष हो गया। कहते हैं कि यह भी बात नही कही जा सकती। इसमें भी दोष है। जब जिसका प्रत्यक्ष कर रहे तब उसका ही ज्ञान है। व्याप्यके ग्रहण न होने पर व्यापकका भी ग्रहण नही बन सकता। यह भी नही कह सकते कि स्मरणके द्वारा इस भाग और परभागमें रहने वाले अवयवोंसे सम्बन्धित अवयवीके स्वरूपका ग्रहण हो जायगा। जैसे—भींटको रोज–रोज तो देखते रहते हैं, दोनों तरफसे जब समझ लिया है तो स्मरण तो रहेगा, उस स्मरणके द्वारा उस पूरे अवयवीके स्वरूपका ग्रहण हो जायगा यह बात नही कह सकते, क्योंकि स्मरणकी प्रवृत्ति प्रत्यक्षके अनुसार ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होती है। और, प्रत्यक्ष परभागका ग्रहण करने वाला होता नही। यदि भीटकी दूसरी ओर जाकर देखेंगे तो वही दीखेगा, इस ओर आकर देखेंगे तो यही दीखेगा और प्रत्यक्षसे जो देखा गया उस हीमें स्मरणकी प्रवृत्ति होती है। इस कारण अवयव और अवयवीको भिन्न-भिन्न मान लेनेपर अवयवीका प्रतिभास करना कठिन हो जायगा। तो इस अवयवीका ज्ञान करने वाला ज्ञान तो बन नही पा रहा। याने ज्ञान द्वारा अवयवीका ज्ञान न हो सका।

आत्मा द्वारा भी सकलावयवव्यापी अवयवीकी विशेषवादमें असिद्धि

यदि कहो कि उसे आत्मा जान लेगा, प्रत्यक्षसे न जान सके, स्मरणसे न जान सके तो आत्माके द्वारा इस भाग और परभागके अवयवोंमें रहने वाले अवयवीको समझ लिया जायगा। कहते हैं कि अवयवीके इस धर्मको कि यह अवयवी दोनों भागोंके अवयवोंमें रह रहा, यह ग्रहण आत्मा नही कर सकता। क्योंकि आत्मा तो जड़ है। वैशेषिक सिद्धान्तमें आत्माको जड़ माना गया है। ज्ञान गुणका समवाय सम्बन्ध होनेसे आत्मा ज्ञानी बनता है। तो स्वयं अपने आपके सत्त्वसे आत्मा ज्ञानरहित रहा। तो जो ज्ञान-रहित है सो जड़ है। भले ही आत्माका चैतन्य स्वरूप माना गया है लेकिन वह चैत-न्य ज्ञानसे रहित है। वह चैतन्य कथनमात्र है। अथवा ज्ञानका समवाय आत्मासे ही क्यों हो, आकाशादिसे क्यों न हो उसका उत्तर बनानेके लिये चैतन्य कहना पड़ा। उस चेतनमें ज्ञानका जब समवाय सम्बन्ध होता है तब वह ज्ञान करता है। तो ज्ञान बिना आत्मा जड़ है, सो जड़ होनेके कारण आत्मा यह नही जान सकता कि यह अवयवी दोनों भागोंके अवयवोंमें रहने वाला है। यदि जड़ होनेपर भी आत्मा कुछ जानने लगे तो जब नींद आ रही हो, नशा चढ़ रहा हो, मूर्छा आ गई हो ऐसी अवस्थामें भी अवयवियोंको ग्रहण करनेका प्रसङ्ग आ जायगा। यदि कहो कि प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानों की सहायता लेकर आत्मा अवयवोंके स्वरूपको ग्रहण कर लेगा तो यह बात नही बन सकती, क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोंमें यह सामर्थ्य नही है कि किसी अवयवीको इस ढङ्गसे जान सके कि वह अवयवी अपने समस्त अवयवोंमें व्यापकर रह रहा है, क्योंकि प्रत्यक्षसे तो सामनेके अवयव दीखेंगे और अवयवी है समस्त अवयवोंमें रहने वाला तो अवयव और अवयवीको सर्वथा भिन्न माननेपर अवयवीके ज्ञानका अभाव हो जायगा।

किसी भी प्रकार प्रत्यक्षसे (सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे) सकलावयव व्यापी अवयवीका अप्रतिभास

—शंकाकार कहता है कि भींटका एक भाग दीखने के बाद उत्तरकालमें परभाग दीखनेके अनन्तर उत्पन्न हुए स्मरणकी सहायता पाकर जो इन्द्रियजनित ज्ञान हुआ,—"यह वही है" इस तरह जो प्रत्यभिज्ञान हुआ वह प्रत्यभिज्ञा ज्ञानरूप प्रत्यक्ष अवयवीको जो पूर्व पर अवयवोंमें व्याप्त है, इसे ग्रहण कर लेगा। अर्थात् एक ओर देख लिया, बादमें दूसरी ओर भी देखा, अब स्मरण रहा,

Version 1

उस तरफ भी यह भींट है, इस तरफ यह भींट है, फिर यह वही एक भींट है, इस तरहका ज्ञान होता है और वह पूरे एक अवयवीका ज्ञान बन जाता है। उत्तर देते हैं कि यह बात असिद्ध है। प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहलाता, वह तो परोक्षज्ञान है। जो इन्द्रियाश्रित है और विशद बोध करनेका स्वभाव रखता है प्रत्यक्ष उसे कहते हैं। जैसे कि सिद्धान्तमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है, पर यह तो पूर्व भाग और अपर भागके देखने और स्मरणके प्रसङ्गमें ज्ञान बनाया है उसमें प्रत्यक्षका लक्षण तो घटित नही होता, वह तो ख्यालमें जाना गया, प्रत्यक्षसे कोई अवयवी पूरा जान लिया जाय यह बात तो नही बनी। और यदि उस सारे ज्ञानका जो देखा दोनों ओर स्मरण भी किया उसके अनन्तर एक प्रत्यभिज्ञा ज्ञान बनाया। यदि उसे प्रत्यक्ष मान लेते हो तो उन सब ज्ञानोंसे फिर इन समस्त अवयवोंमें व्यापकर रहने वाले अवयवोंके स्वरूप को ग्रहण करनेकी बात असम्भव हो जायगी, क्योंकि इन्द्रियाँ समस्त अवयवोंके ग्रहण करनेमें समर्थ नही हैं। जो सामने हो अभिमुख हो उसको ही तो जान सकता है प्रत्यक्ष। यह भी नही कह सकते कि स्मरणकी सहायता लेने वाले इन्द्रियका उसमें व्यापार बन जायगा क्योंकि जिस इन्द्रियका जो विषय नही है उसमें व्यापार उसका अनेक स्मरण व अन्य इन्द्रियोंकी सहायता लेनेपर भी नही हो सकता, क्योंकि जो जिसका विषय नही है वह उसमें स्मरण आदिकी सहायता लेनेपर भी प्रवृत्ति नही कर सकता। जैसे—नेत्रका विषय गंधका ग्रहण करना नही है। तो इत्रादिक पदार्थोंका कितना ही स्मरण करें, उस स्मरणकी सहायता लेकर भी नेत्र गंधको ग्रहण नही कर सकता है इसी प्रकार जो व्यवहित अवयव हैं मध्यके या उस भागके, वे इन्द्रियके विषय नही हैं। तो जब परभागका या मध्य भागका अवयव इन्द्रियका विषय नहीं है तो प्रत्यक्षसे जाना नहीं जा सकता और फिर अवयवीका ज्ञान अध्यक्षसे कहा नही जा सकता है।

निरंश अनेक अवयवोंमें निरंश एक अवयवीकी वृत्तिकी अयुक्तता— यहां एक अन्य बात यह भी है कि एकस्वभावी अवयव अवयवीमें व्यापकर रहे यह बात घटित नही होती है। शंकाकारके यहां अवयव भी निरंश हैं और अवयवी भी निरंश हैं। अवयवोंसे अवयवी भिन्न है तो जब अवयवी भी एकस्वभाव है, निरंश है, तब अनेक अवयवोंमें अवयवीका रहना घटित नही होता। उनका प्रयोग है कि जो निरंश एकस्वभावी द्रव्य है वह एक साथ अनेक द्रव्योंके आश्रित नहीं रह सकता। जैसे कि परमाणु। परमाणु निरंश और एकस्वभाव द्रव्य है, तो वह अनेक द्रव्योंके आश्रित नही रह सकता। इसी प्रकार अवयवी द्रव्य भी शंकाकारने निरंश एकस्वभाव रूप माना है, तो वह अवयवी द्रव्य भी अनेक द्रव्योंके आश्रित नही रह सकता। तो जब अनेक अवयवोंमें व्यापकर अवयवीका रहना घटित नही होता, तो प्रत्यक्षसे अवयवीका ज्ञान कैसे बन सकता है? अथवा दूसरा प्रयोग यह है कि जो अनेक द्रव्य हैं वे एक साथ निरंश एक द्रव्यसे अन्वित नही हो सकते। जैसे घट पट आदिक पदार्थ

http://www.jainkosh.org

और अनेक द्रव्य हैं अवयव, तो जो अवतव हैं अनेक द्रव्य वे एकसाथ निरंश एक अवयवीसे अन्वित कैसे बन सकेंगे ? इससे अवयव निरंश है, अवयवी निरंश है और अवयवोंसे अवयवी भिन्न है या अभिन्न कल्पित है, यह बात घटित नही होती।

सर्वात्मकरूपसे अवयववोंमें अवयवींकी वृत्तिकी मीमांसा—अथवा मान भी लें कि अवयवीकी वृत्ति अनेक अवयवोंमें हो जाती है अर्थात् अवयव अनेक अययवों में हो जाती है अर्थात् अवयव अनेक अवयवोंको व्यापकर रह सकते है, तो यह बतलावो कि यह वृत्ति अर्थात्र अवयवीका अवयवोंमें रहना सर्वात्मकरूपसे हैं या एक देशरूपसे है ? यदि कहो कि अनेक अवयवोंमें अवयवीका रहना सर्वात्मकरूपसे होरहा है तो उसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक अणुवोंमें एक एक अवयवीका रहना कहलाया, फिर तो जितने अवयव हैं उतने ही अवयवी बन जायेंगे और ऐसा मान लेनेपर कि जितने अवयवी होते हैं अवयवी भी उतने होते हैं, तब तो जैसे अनेक घड़ोंमें रखे हुए बेर आदिककी तरह अवयवी भी अनेक दिखना चाहिए, पर इस तरह अनेक अवयवी कहाँ प्रत्यक्षमें आते ? इससे अवयवीका अनेक अवयवोंमें रहना सर्वात्मकरूपसे तो बनता नही।

एकावयवक्रोडीकृत स्वभावसे एकदेशसे अनेकावयवोंमें अवयवीके रहनेकी असिद्धि—यदि कहो कि अवयवीके अनेक अवयवोंमें रहना एकदेशसे होता है, तो यहां भी यह बात बतलावो कि अवयवीका जो अनेक अवयवोंमें रहना है सो क्या एक अवयवके द्वारा क्रोडीकृत स्वभावसे रहना है या स्वभावान्तरसे रहना है ? इन विकल्पोंका खुलासा यह है कि एक अवयवीका जो अनेक अवयवोंमें रहना है तो क्या इस तरहसे रहना है कि एक अवयवने अवयवीको अपनेमें घेर रखा अपने उदरस्थ कर लिया, अपनेमें समा लिया, क्या इस स्वभावसे अवयवीका अवयवोमें रहना होता है या कोई अन्य स्वभावसे ? यदि कहो कि एक अवयवके द्वारा अपनेमें गर्भस्थ कर लिए गए स्वभावसे रहना होता है अवयवीको, तब तो उस ही अवयवके द्वारा जब अवयवीको क्रोड़ीकृत कर लिया, अपनेमें घेर लिया, समा दिया, तब अवयवीका ऐसा अवयवोंमें रहना नही बन सकता। जो एकके द्वारा क्रोडीकृत वस्तुस्वरूप है याने जो बात एकमें घिर चुकी है वह अन्य जगह नहीं रहती। जैसे एक पात्रमें घिरा हुआ आम आदिक फल दूसरे बर्तनके मध्यमें नही आ रहा, जैसे एक आम एक डिब्बेमें रखा है तो वहो आम दूसरे डिब्बेके मध्यमें तो नही पहुंचा ? इसी प्रकार एक अवयव अवयवीका गर्भस्थ करले, तव वह अवयवी अन्य अवयवोंमें तो न पहुँचेगा ? अन्य अवयवोंके मध्यमें तो न ठहर सकेगा ? और, यदि एक अवयवके द्वारा अवयवी स्वरूप क्रोडीकृत होनेपर भी अन्य जगह रहे तब फिर इस विवक्षित अवयवमें उस अवयवीकी वृत्ति नही रह सकती, क्योंकि किसी एक अवयवमें जब अवयव रह चुका तो उसमें अन्य स्वभाव अब नही पाया जा रहा। एक अवयवसे सम्बन्धित स्वभाव वाले अवयव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का यदि अन्य देशके अन्य अवयवसे सम्बन्ध मान लिया जाय तो सब अवयवोंमें एक देशताकी आपत्ति आ जायगी, अर्थात् सारे अवयव एक अंशमात्र अणुमान रह जायेंगे, और जब एकदेशमात्र ही रह जायेंगे मारे अवयव तो वह एकात्मक रह गया, एक अणु मात्र रह गया, क्योंकि अब अवयवोंका रूप भिन्न-भिन्न तो न रहा, वे सब एकदेशमें आ गए। और, एकात्मक हो गए। यदि उन अवयवोंका विभक्त रूप माना जाय, जुदे जुदे रूपमें हैं वे सारे अवयव तो फिर एकदेशता न रहेगी। या तो एकदेशपना मान लीजिए या अलग अलग रहना मान लीजिए! यह नही हो सकता कि एक देशमें ही सारे क्रोड़ीकृत हो जायें और फिर उनका स्वरूप विभक्त जुदा-जुदा रह जाय। इससे यह बात तो सिद्ध नही हुई कि अवयवीके अनेक अवयवोंमें वृत्ति एक अवयवके द्वारा क्रोड़ीकृत स्वभावसे हुई है।

स्वभावान्तरसे एकदेशतः अवयवोंमें अवयवीकी वृतिकी असिद्धि अब यदि कहोगे कि स्वभावान्तरसे अवयवीकी अवयवों में वृत्ति होती है तब फिर अवयवी निरंश न रहा। सांश हो गया क्योंकि अन्य अन्य स्वभावसे अन्य अन्य अवयवोंमें अवयवोंकि वृति होना मान लिया है फिर यों कथंचित् अनेक हो जायेंगे क्योंकि अब अवयवीके स्वभावभेद बन गये ना। एक स्वभावसे एक स्वभावमें रह रहा अवयवी दूसरे स्वभावसे दूसरे अवयवमें रह रहा अवयवी तो जितने स्वभाव हैं उतने ही अवयवीके भेद हो गये। स्वभावभेद से ही तो पदार्थों कि संख्या जाना जाती है। जहाँ जहाँ स्वभावभेद मिलता है वहाँ वहाँ भिन्नता परखी है। और फिर वे स्वभाव अर्थात् अवयवों का अवयवों रहना जिन जिन स्वभावोंसे हुआ करता है वे स्वभाव यदि अवयवोंकी वृतिसे भिन्न हैं तो उनमें भी यह स्वभावान्तरसे रहेगा तब यों चलाते चलाते अनवस्था दोष होगा। यदि वे स्वभाव अवयवीसे अभिन्न हैं तो अवयवोंने क्या अपराध किया? जो ऐसा नही मान लेते कि अवयवी अवयवोंसे कथंचित् अभिन्न और ऐसा अगर मान लोगे तो यह बात माननी ही पड़ेगी कि अवयवी अनेक होते हैं और अनित्य होते हैं क्योंकि वे अवयवोसे अभिन्न होते हैं अवयवस्वरूपकी तरह। चाहे शिर पीटो अथवा रुदन करो यह तो मानना ही पड़ेगा अपने हठ किये गये मन्तव्यके खिलाफ कि अवयवी सांश याने अनेक हैं और वे सब अनित्य हैं। प्रयोग भी बन जायगा कि अवयवी सांश तथा अनेक होते हैं, क्योंकि अवयवोंसे अभिन्न स्वभाव होनेके कारण। जब अवयवअवयवोंसे अभिन्न हो गए और अवयव हैं अनेक तो इसका अर्थ हुआ कि अवयवी भी अनेक हो गए और अवयवोंका समूह है अवयवी तो अवयवी सांश हो गये।

प्रत्येक वस्तुकी द्रव्यपर्यायात्मकताका यथार्थ विधान—इस प्रसंगमें बात तो सीधी इतनी है कि अनेक परमाणु तो हुए तो अनेक अवयव और उनका जो विशिष्ट संयोग सम्बन्ध हुआ और एक सकंध पिण्ड बन गया वह हुआ एक अवयवी। तो वह अवयवी अवयवात्मक है, अवयवों से भिन्न नहीं है। अवयवीका उपादान वे अव-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यव ही तो है। तो वह अवयव स्वयं नित्यानित्यपरत्मक है और इसी कारण अवयवी भी अनित्य बन गया पर उनमें रहने वाले द्रव्यकी दृष्टिसे नित्य कहा जायगा और नित्यपना आता है सामान्य अंश द्वारा और अनित्यपना आता है विशेष अंश द्वारा तब पदार्थ सामान्यविशेषात्मक ही तो हुआ। यहाँ यह विभाग करना कि जो अवयव है वह कारणरूप है इस कारण नित्य ही कहलाता है और जो अवयवी है वह कार्य द्रव्य है, इस कारण अनित्य ही कहलाता है। यों स्वतन्त्र स्वतन्त्र नित्य–अनित्य मानना युक्त नही है। किन्तु प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक अणु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। नित्य नित्यात्मक माननेपर ही लोकसृष्टिकी व्यवस्था बन सकती है। किसी भी पदार्थको सर्वथा नित्य माननेपर अथवा सर्वथा अनित्य माननेपर लोकसृष्टिको व्यवस्था नही बन सकती। कारणभूत परमाणु यदि सर्वथा नित्य ही हैं तो उनमें कार्यभूत द्रव्य बन ही नही सकता अगर बने तो कारणभूत परमाणुवोंमें अनेक स्वभावता आ ही गयी और इस कारण कारणभूत परमाणु भी कथंचित् अनित्य बन जाते हैं यों पदार्थ नित्यानित्यात्मक है सामान्यविशेषात्मक है और वही प्रमाणका विषयभूत होता है। उसके विरुद्ध स्वतंत्र किसीको नित्य मानना और किसीको सर्वथा अनित्य मानना, यह वस्तु स्वरूपसे बाहरकी बात है।

अवयवीको अविभागी माननेपर रंग आवरण आदिका उसमें सर्वत्र प्रसङ्ग—जो लोग अवयवको निरंश और अवयवीको भी निरंश मानते हैं उनसे कहा जा रहा हैं कि यदि अवयवीका विभाग नही है तब अवयवीके एक देशमें कोई आवरण पड़ जाय अथवा कोई रंग लग जाय तो समस्त अवयवीमें आवरण और रङ्ग लग जाना चाहिए क्योंकि उस अवयवीमें तो अंश ही नही। सो जो निरंश एक वस्तु हो, उसमें जो भी परिणमन हो वह उसमें सर्वत्र हुआ करता है। अविभागी अवयवी माननेपर यही तो अर्थ हुआ कि रंग और गैंर रंगसे युक्त आवृत और अनावृतका अवयवी में एकत्व माना गया है और इसी कारण उस अवयवीके एक हिस्सेमें रंग लग जाय तो सर्वत्र रंग और आवरण होना चाहिए, किन्तु ऐसी प्रतीति किसको है? प्रत्यक्ष विरुद्ध भी बात है। एक घड़ा है, एक जगह छन्ना रख दिया तो सर्वत्र आवरण कहाँ होता? या एक जगह कोई रंग गिर गया तो सर्वत्र कहाँ रँगा? जो परस्परमें विरुद्ध धर्मसे युक्त है उसको फिर एक बताना युक्त नही है। देखो ना! अवयवीमें आवृत और अनावृत दो धर्म हो गए ना! उनमें एक जगह थोड़ा लाल रंग पोत दिया तो रंगा और गैर रंगा ऐसा परस्पर विरुद्ध धर्म हो गया ना! और फिर भी उसे एक कहें, निरंश कहें, यह कैसे युक्त हो सकता है? जो विरुद्ध धर्मसे युक्त हो वह एक नही हो सकया। जैसे घट पट आदिक पदार्थ। और, यहां अवयवीका स्वरूप देखो! कुछ तो उपलभ्य हो रहा, कुछ अनुपलभ्य हो रहा, एक ही भींट है, एक भाग उपलभ्य है, दूसरा भाग अनुपलभ्य है। किसी एक वस्तुपर आधेपर आवरण पड़ा है, तो आधा भाग आवृत है, दूसरा भाग अनावृत है, तो ऐसे विरुद्ध धर्मसे युक्त अवयवीका स्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है फिर भी उसे एक मानो तो सारे विश्वको फिर एक द्रव्य मानलो, चाहे वे कितनी ही दूर–दूर हों, कितना ही भिन्न–भिन्न हों, विरुद्ध धर्म होनेपर भी जब अभेद मानने की बात करने लगे तो सारे विश्वकी एक द्रव्यरूपता हो जायगी।

संयोगको अव्याप्यवृत्तित्व लक्षण माननेपर भी अनिष्ठापत्तिका अपरिहार—शंकाकार कहता है कि देखो ! वस्त्रका एक छोर यदि रंग दिया तो वस्त्रादिकमें जो राग लगा है उसके मायने क्या है कि कुंकुम आदिक द्रव्यके साथ वस्त्र का संयोग किया, यही तो अर्थ हुआ। कपड़ेका रंग, इसके मायने यह है कि रगके साथ कपड़ेका संयोग किया। और संयोगका लक्षण है अव्याप्त वृत्तिपना अर्थात् जिन पदार्थों में संयोग होता है उन पदार्थोंमें संयोग पूरेमें व्यापकर नही होता। जैसे दो हाथोंका किया, तो एक हाथ दूसरे हाथमें व्यापकर न रहा। तो बिना व्यापे वृत्ति होनेका नाम है संयोग। सो वस्त्र आदिकके साथ उस रंगका संयोग होता है। चूंकि संयोगका लक्षण है यह कि जिसमें सर्वत्र न व्याप करके वृत्ति रहनेका गुण हो सो संयोग है। सो संयोगका लक्षण ही यह कह रहा है कि अगर एक जगह रङ्ग लगा है तो सब जगह रंग न लगेगा। एक देशपर अगर आवरण है तो सब जगह आवरण न होगा, क्योंकि आवनण अथवा रंग संयोगरूप है। और, संयोगका लक्षण है कि जो सर्वत्र न व्याप करके रहा करे सो सयोग है। समाधानमें कहते हैं यह भी बात सारहीन है। तुम अवयवीको तो निरंश मानते —जैसे कपड़ा हुआ कोई और उसे माना तुमने निरंश एक द्रव्य तो अब उसमें जब कुंकुम आदिक रंगीन पदार्थोंका सयोग हुआ तो एक निरंश पटमें अब कौनसा हिस्सा रह गया जो रंगसे व्याप्त न हो। और, जिससे फिर अव्याप्यवृत्ति वाला संयोग मान लिया जाय। जब अवयवी निरंश है, उसमें हिस्से नही हैं तो कोई चीज वहाँ रहेगी तो बिना व्यापकर रहेगी यह कैसे हो सकता है ? अगर कहो कि बिना व्यापकर रहेगा संयोग उस पदार्थमें, रंग पूरेमें नही व्याप पाता है जिससे संयोग किया जाय। अथवा संयोग भी नही व्यापता तो इसके मायने हैं कि अवयवीमें भेद हो गए। कुछ अवयवीका हिस्सा रहा व्याप्तस्वरूप, कुछ अवयवीका हिस्सा रहा अव्याप्तस्वरूप। जब अवयवीमें दो विरुद्ध धर्मोंका सम्बन्ध हुआ तो उसमें एकत्व कैसे आयगा ?

विशेषवादमें संयोगके अध्याप्यवृत्तित्व लक्षणकी असिद्धि—और भी सुनो ! यह जो कहा कि संयोगका लक्षण है अव्याप्त वृत्तित्व अर्थात् व्याप करके न रहना, निकट रहना, तो अव्याप्त वृत्तत्वका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि सर्व द्रव्योंमें न व्याप सकना ? या इसका यह मतलब है कि एक देशमें रहना। संयोग किसी पदार्थमें लगता है और बिना व्यापकर रहता है तो इसके मायने क्या है ? क्या सब द्रव्योंमें न व्याप सकना या द्रव्यके एक देशमें ही रह सकना ? इन दो विकल्पोंमें पहला विकल्प तो युक्त नही है। यह कहना कि संयोगकी वृत्ति सर्वत्र नही हो पाती।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो जिसमें संयोगकी वृत्ति कर रहे हो वह अवयवी हो या कोई अवयव हो, वह सब निरंश माना है तो अवयवी निरंश एकमें सर्व शब्द कह ही नही सकते। सर्व शब्दकी प्रवृत्ति वहां होती है जहां अनेक हुआ करते हैं। निरंश एक अवयवीमें यों कहना कि उसका सर्व देशमें संयोग नही व्याप रहा, तो युक्त नही है, क्योंकि वहां सर्वदेश है कहां ? वह तो एक निरंश है। यह कहना कि अव्याप्य वृत्तित्वका अर्थ यह है कि एक देशमें रहना तो भला निरंश एक अवयवीका एक देश है ही कहाँ ? अगर एक देश मान लोगे तो अवयवी सावयव हो गया, विभाग वाला हो गया। उसमें नाप तोल विस्तार हिस्से विभाग ये सब बन बैठेंगे। तो इस कारण आप शंकाकारके यहां जिस तरहसे कल्पना करते हैं उस तरह कोई अवयवी नही है, क्योंकि उसमें वृत्तिके विकल्प नही बन पाते हैं अर्थात् अवयवोंमें अवयवी रहता है तो किस तरह रहता है ? क्या सर्वात्मकरूपसे रहता है या एकदेशसे रहता है आदिक जो वृत्तिके सम्बन्धमें विकल्प किए वे विकल्प सब निराकृत हो जाते हैं, वे ठहर नही पाते। इससे अवयवी नही है।

निरंश अवयवीके निराकरणमें दिए गए साधनमें शङ्काकार द्वारा स्वतन्त्र साधन न बननेरूप आपत्तिका प्रदर्शन – अब शङ्काकार कहता है कि अवयवीके निराकरण करनेमें जो साधन दिया है, जो हेतु दिया है कि अवयवी नही है क्योंकि वृत्तिके विकल्पादिककी अनुत्पत्ति है तो आपका यह साधन क्या स्वतंत्र है प्रसङ्ग साधनरूप है ? स्वतन्त्र साधनके मायने यह है कि वास्तवमें साध्य है, साधन है, दृष्टान्त है, पक्ष है, ये सब चीज़ें सही-सही तौरसे हैं. इस तरहसे अनुमान बनाओ तो उसे कहते हैं स्वतन्त्र साधन। और, प्रसङ्ग साधन कहते हैं उसे कि प्रतिवादी जो कुछ मान रहा है उसमें अनिष्टता ला देना, इस तरहसे जो कुछ कहा जाय उसे कहते हैं प्रसङ्ग साधन। याने प्रसंग साधनमें कुछ करना नही है, किन्तु प्रतिवादीकी जीभ चुप करना है। वह जो मान रहा है. उसमें अनिष्टको उत्पन्न कर देना है। क्या अवयवीके निराकरणमें जो साधन दिया जा रहा है वह स्वतंत्र है या प्रसंग साधन है? अनुमानका रूप तो यह बनाया कि अवयवी नही है, क्योंकि वृत्ति विकल्पात्मककी वृत्तिकी अनुत्पत्ति होनेसे। अर्थात् जब पूछते हैं कि अवयव अवयवीमें किस तरह रहता है ? तो इसका कोई उत्तर भी नही बनता। तो इस अनुमानका यह हेतु स्वतन्त्रसाधन है तो इसमें धर्मी और साध्य पदका विघात है। धर्मी क्या बनाया ? अवयवी। और साध्य क्या बनाया ? नही है। शंकाकार कहता जा रहा है कि पहिले तो यह कहा कि अवयवी, तो इसके कहनेके मायने है कि है अवयवी, और फिर कहते हो—नही है तो यह कैसी उल्टी बात है ? यह और नही, ये दो परस्पर विरोधी वचन किस तरह लगेंगे ? शंकाकारका यह एक ऐसा चतुराईपूर्ण सुझाव है, एक युक्ति है कि किसी चीजको मना कर ही न सके कोई। जैसे कोई कहे कि सर्वज्ञ नही है अरे भाई पहिले तो मुखसे कह दिया सर्वज्ञ, तो 'है' बन गया ना सब कुछ। फिर कहते हो नहीं है। कोई कहे गधेके सींग नही है, अरे ! कैसी बात कर रहे। पहिले तो बोल दिया

http://sahjanandvarnishastra.org/

गधेके सींग, तो वे तो तैयार हो ही गए, और फिर कहते हो नही हैं, तो इसी तरह यहांपर पहिले तो अवयवी शब्द कहकर स्वीकार कर लिया और फिर कहते हैं नास्ति, तो तुम्हारे स्वतन्त्र साधनमें धर्मी और साध्य पदोंका विघात होता है और फिर अवयव तो लोकप्रसिद्ध है। सब कुछ आंखों दीख रहा है और फिर उसे कहते हो नही है, दूसरा दोष यह है कि तुम्हारा हेतु आश्रयासिद्ध है आश्रयके मायने पक्ष है वह है यहां अवयवी, वह जैनोंके यहां कहाँ प्रसिद्ध है ? वैशेषिक शंकाकारने अपनी कल्पनामें जैसा अवयवी मान रखा उसके लिए तो वही अवयवी है, उससे भिन्न कुछ लक्षण होता तो नही है। तो आश्रयसिद्ध दोष हो गया, सो आश्रय याने अवयवी ही प्रसिद्ध नही है। उसमें यह भी नही कह सकते कि समवायसे उसका सत्त्व व्याप्त है क्योंकि समवाय वृत्ति माना ही नही है। और, बिना समवाय माने ही जैन लोगोंने रूपादिक का सत्त्व मान लिया है। बात तो थी यों कि रूप, रस, अग्नि और पृथ्वी आदिक द्रव्य हैं, द्रव्यमें रूप गुणका समवाय होता है तब उसमें रूप पड़ा होता है यह कह सकते हैं। और, जैन लोग तो स्वरूपसे ही मानते कि पृथ्वी है तो सहज ही रूपवान है, तो समवाय कहां मानते ?

अवयवीको विशेषरूपसे वृत्तिके निषेधसे सामान्यवृत्तिका शंकाकार द्वारा समर्थन—और भी बात सुनो। जो यह कहा पहिले जैनादिकने कि अवयवी अवयवोंमें एकदेशसे रहते हैं या सर्वदेशसे रहते हैं ? तो उन्होंने एक देशसे रहने का भी निराकरण किया और सर्वदेशसे रहहने का भी निराकरण किया। याने विशेषका प्रतिषेध कर दिया तो उससे यह भी और साथमें सिद्ध हो गया कि एक देशसे नही है और सर्वदेशसे वृत्ति नही है किन्तु किसी सामान्यरूपसे वृत्ति है। जब विशेष रूपसे अवयवोंमें अवयवीके रहने का निषेध किया तो उसका अर्थ है कि विशेषरूपसे तो अवयवीकी वृत्ति नही है अवयवोंमें किन्तु सामान्यरूपसे है, तो प्रकारान्तरसे देखिये तुमने समवाय वृत्ति मान ही ली। कोई सम्बन्ध मान ही लिया। अगर अन्य कोई सम्बन्ध न मानते होते तो यही कहते कि अवयवी है ही नही। उसके सम्बन्धमें विशेष का खण्डन न करना चाहिए। और देखिये वृत्ति नाम है समवायका। अवयवमें अवयवीका रहना मायने समवाय और वह रहना अथवा समवाय समस्त अवयवोंमें एक रूपसे है और निरवयव है स्वयं समवाय, इसलिए उन निरवयव वृत्तिके लिए यह प्रश्न उठाना कि एक सर्वदेशसे अवयवी अवयवोंमें रहता है या एकदेशसे अवयवी अवयवोंमें रहता है। यह कथन अयुक्त है, क्योंकि समवायका यह विषय ही नही है।

निरंश अवयवीके निराकरणमें दिये गये साधनमें प्रसंगसाधन न बनने रूप आपत्तिका शंकाकार द्वारा प्रदर्शन—शंकाकार ही पुनः कह रहा कि यदि जैनादिक यह कहें कि अवयवी नहीं है वृत्ति विकल्पादिककी अनुपपत्ति होनेसे तो इसमें जो यह साधन है वह प्रसंग साधन है। प्रसंग साधन क्यों है कि दूसरोंको जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इष्ट है उसमें अनिष्टका अपादान किया है, उसमें अनिष्टत्वको जोड़ दिया है, जो नही मानते हैं शंकाकार लोग, प्रतिवादी पर लोग, उसको सिद्ध कर दिया है, वही प्रसंग साधन कहलाता है। तो शंकाकार कह रहा है कि तुम परेष्टिमें याने जो परको इष्ट है उसमें अनिष्ट बोल रहे हो तो यह बतलावो कि वह परेष्टि अर्थात् परलोगके द्वारा माना गया तत्त्व प्रमाण है या अप्रमाण है ? जिसको तुम मना कर रहे हो, जो अवयवी नही है. यह अवयवी तो परलोग मान रहे हैं और वह नही है यह अनिष्ट बात कह रहे हैं तो परेष्टि प्रमाण है या अप्रमाण ? यदि प्रमाणरूप है तो परेष्टी तो प्रमाण ही हो गया। सो प्रमाणरूपसे तो अब प्रमाणता ही आयगी। उसको तुम किसीसे बाधा तो कह नही सकते, फिर विपरीत अनुमान नही उठा सकते हैं। परेष्टि प्रमाण है और उस हीसे उस हीको बाधा दें यह बात नहो बन सकती। यदि कहो कि वह परमंतव्य अप्रमाण है तो प्रमाणके बिना प्रमेयकी असिद्धि है यह कहना चाहिए। फिर तो अनुमान बनाकर किसमें साध्य सिद्ध करोगे ? इस अनुमानमें तो पक्ष अप्रमेय (असत्) है सो अपक्ष धर्म है, फिर तो अनुमान बनाकर जो भी हेतु दोगे वह अप्रमाण हो गया। उसे पक्ष धर्म मिलेगा नही। परेष्टि तो असत् है, तुम प्रमाण देकर फिर खण्डन किसका करते हो ? इस तरह अवयव अवयवीकों निरंश पद्धतिका जो निराकरण अन्य लोगोंने किया उसके भी खण्डनमें शंकाकार यह बात रख रहा है कि अवयव निरंश है और अवयवी निरंश है और अवयवोंमें अवयवी तादात्म्य सम्बन्धसे रहता है।

निरंश अवयवीके निराकरणमें दिये गये साधनमें प्रसङ्गसाधनत्व — अब उक्त शङ्काका समाधान करते हैं। अवयवोके निराकरणमें दिए हुए साधनोंमें यह विकल्प उठाकर कि वह स्वतन्त्र साधन है या प्रसंग साधन है, हेतुको उड़ा देनेका प्रयास करना व्यर्थ है क्योंकि यह हेतु प्रसंग साधन ही है। प्रसंग साधनका लक्षण है कि साध्य और साधनके व्याप्य-व्यापक भावकी सिद्धि होनेपर व्याप्यका मानना व्यापकके माननेका अविनाभूत है और व्यापकका अभाव व्याप्यका अविनाभूत है। इतना ही मात्र दिखानेका जिसमें प्रयोजन हो उस हेतुको प्रसंग साधन कहते हैं। तो देखो ! सर्वदेशसे वृत्ति और एक देशसे वृत्ति इस सम्बन्धमें व्याप्य व्यापक भाव लोकप्रसिद्ध है ही। जैसे कि किसीका किसी जगह सर्वदेशवृत्ति होती है और किसीका किसी जगह एकदेशसे भी वृत्ति होती है। देखो ना ! किसी घड़ेमें बेर रखे हैं तो बेरोंकी वृत्ति उस घड़ेमें सर्वदेशसे है ना ! अर्थात् वे बेर घड़ेमें पूरे समाये हुए हैं और कोई पुरुष तखतपर बैठा है तो वहाँ तखतपर एक देशसे वृत्ति है, कोई तखतमें समाया हुआ तो नही है। तो कहीं सर्वदेशसे वृत्ति होती है कहीं एकदेशसे। अरे भाई ! जहाँपर दोनों ही प्रकारकी वृत्ति न हो अर्थात् सर्वात्मक रूपसे रहना भी न हो और एकदेशसे भी रहना न हो तो वहाँ समझना चाहिए कि वृत्ति है हीं नही। तो वृत्ति दो हो प्रकारसे हो पाती है—सर्वात्मक रूपसे हो या एकदेश रूपसे हो। जब दोनों ही वृत्ति असिद्ध हैं

Version 1

फिर यह व्याप्ति हेतुकी क्यों नही ठीक रही ? इस कारण प्रसङ्ग साधनका अवकाश यहाँ कैसे नही है ? अर्थात् प्रसङ्ग साधकरूप यह हेतु है। और जो शङ्काकारने कहा था—परेष्टि प्रमाण है वा अप्रमाण ? प्रसङ्ग साधनका यह अर्थ करना कि दूसरेने जो माना है उसमें अनिष्ट बातको ही ला देना, इसके ही मायने प्रसङ्ग साधन है और ऐसा कहकर जो यह विकल्प किया कि परेष्टि अर्थात् परने जो माना है वह प्रमाण है या अप्रमाण ? प्रमाण है तब तो विरोध क्या, खण्डन क्या और अप्रमाण है तो इसके मायने कुछ प्रमेय ही नही, फिर भी खण्डन किसका ? यह बात कहना अयुक्त है, क्योंकि प्रमाण और अप्रमाणका विचार सम्वाद और विसम्वादके आधीन हुआ करता है। केवल परने माना है इस आधारपर नही। जैसे कि यहाँ शंकाकारके द्वारा माना गया है जैसा अवयवी, तो उस अवयवीमें यदि सम्वादक प्रमाणका अभाव है तो अप्रमाण स्वय ही हो जायगा। तो जहाँ सम्वाद हो वह तो प्रमाण है और जिस ज्ञानमें विसम्वाद हो वह ज्ञान अप्रमाण है। परके माननेसे एकदम प्रमाण और अप्रमाण कहना यह युक्त नही होता।

इहेदं प्रत्ययसे समवायवृत्तिकी शंका व शंकाका समाधान—शंकाकार का कहना है कि देखो अवयवोंमें अवयवी है यहाँ "इसमें यह है" इस प्रकारके ज्ञानकी प्रतीति होनेसे प्रत्यक्षसे अवयवीकी सिद्धि हो जाती तो है सम्वादक प्रमाणका अभाव कैसे रहा ? अर्थात् "इसमें यह है" इस प्रकारका प्रत्यय जहाँ हो, जिस कारण हो उस ही का नाम तो सम्बन्ध है, समवाय है और इस ही सम्बन्धके कारण अवयवोंमें अवयवी की प्रतीति होती है, कहते हैं कि यह भी कहना असंगत है क्योंकि जैसे कि सूत आदिक अवयवोंसे भिन्न कोई पट आदिक अवयवी सूत आदिक अवयवोंमें समवायसे रहते हुए रहते हैं यह बात स्वप्नमें भी विदित नही होती। एक निरंश अवयवी अनेक अवयवोंमें रह जायगा यह बात सिद्ध नही होती। जो भेदसे प्रतिभासमान नही है उसका इसमें यह है यह प्रतीति तो युक्त नही, बल्कि जो भेदसे प्रतिभासमान होते हैं उनमें इसमें यह है यह प्रतीति अधिक होती है। सर्वथा भिन्नकी बात नहीं कह रहे किन्तु कथंचित् भिन्नकी बात कह रहे हैं। सर्वथा अभिन्नसे इसमें "यह इदं" की प्रतीति न होगी, और सर्वथा भिन्न हो तो उसमें भी "इह इदं" यह प्रतीति न होगी। देखो—जब यह ज्ञान होता है कि इस घड़ेमें बेर है तो देखो—बेर घड़ेसे कथंचित् भिन्न और अभिन्न हो रहे हैं। तब इसमें "इहेदं" यहकी प्रतीति होती है। तो इसमें यह है ऐसी प्रतीति न सर्वथा भिन्नमें होती न सर्वथा अभिन्नमें होती, तब एकान्तवादमें वृत्ति सिद्ध करना युक्त नही है। और, भी जो कहा शंकाकारने कि वृत्तिका अर्थ है समवाय सब जगह एकरूप है, निरवयव है तो समवायके सम्बन्धमें अथवा वृत्तिके सम्बन्धमें यह सर्वदेशमें रहता है या एक देशमें रहता है, इन शब्दोंका वहां काम ही नही हो सकता। अब उत्तर देते हैं कि ऐसा कहना भी केवल अपनी कल्पना मात्र है। प्रथम तो समवाय सम्बन्ध कोई सिद्ध ही नही है, या तो होता है तादात्म्य सम्बन्ध अथवा होता संयोग सम्बन्ध।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तादात्म्यमें भी इतना अन्तर तो हो सकता है कि कोई होता है कथंचित् तादात्म्य, किसी समय तादात्म्यरूपसे रह रहा है और फिर नही रहता है, और कुछ चीजें होती हैं शाश्वत् तादात्म्य, जैसे कि आत्मामें ज्ञान स्वभाव शाश्वत तादात्म्यरूपसे है और आत्मामें क्रोधादिक भाव कादाचित्य तादात्म्य रूपसे है और, जो भिन्न-भिन्न पदार्थ होते हैं, द्रव्य होते हैं उनका संयोग सम्बन्ध है पर समवाय नामका कोई सम्बन्ध ही नही है।

वृत्तिसम्बन्धमें सर्वदेश व एकदेशवृत्तिताकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्ध है या नही ? इसकी सिद्धिका यहाँ प्रसंग नही है। किन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि एक ही अवयवीमें यह सर्वात्मक रूपसे रहता है या एकदेशरूपसे रहता है। एक निरंश अवयवीमें सर्वात्मकता और एक देशता ये शब्द फिट बैठते ही नही हैं, इसलिए यह प्रश्न करना अयुक्त है कि अवयवीकी वृत्ति अवयवमें एक देशसे होती है अथवा सर्वदेशसे होती है। सर्वदेशसे कहो यह तो एकके ही समस्त स्वभावोंका कह देना है और एक देश कहना, देशको अनेकता होनेपर किसी एक देशके कहनेकी बात है, पर ये दोनोंके दोनों अर्थात् सर्व देश और एक शब्द एक निरंश अवयवीमें युक्त नही होते। समाधान करते हैं कि शंकाकारका यह कथन भी अयुक्त है, क्योंकि अवयवोंमें एकत्वरूपसे अवयवी प्रतिभासमान होता ही नही, और अन्य कोई प्रकारान्तर है नही कि जिस प्रकारसे अवयवीके अवयवोंमें वृत्ति बतायी जा सके। देखो—कहीं तो सर्वदेश से वृत्ति हुआ करती है और कहीं एक देशसे वृत्ति हुआ करती है। जैसे घड़ेमें बेर हैं, यहाँ बेरकी वृत्ति सर्वदेशसे है और स्तम्भसे बाँस हैं, जैसे बहुतसे बाँसोंको गोल खड़ा करके देखे कि इस खम्बेमें बाँस है तो उन बाँसोंकी वृत्ति एक देशसे हुई। तो कहीं सर्वदेशसे वृत्ति होती है, कहीं एक देशसे वृत्ति होती है, इन दो प्रकारोंसे वृत्ति होनेको छोड़कर अन्य प्रकारसे वृत्ति हुआ ही नही करती। तब अवयवोंसे भिन्न कोई अवयवी है ऐसा कहना विचार करनेपर सिद्ध नही होता। तब अवयव भिन्न है, अवयवी भिन्न है फिर भी दोनों निरंश हैं और अवयवोंमें अवयवी रहता है, ये सारी बातें मान सकना योग्य नही है। तब फिर क्या माना जाना चाहिए ? तंतु आदिक अवयवोंकी ही अवस्था विशेष पट आदिक अवयवी हैं अर्थात् अनेक तंतुवोंका वितान करके जो एक पिण्ड बनता है वह पट जो अवयवी है, एक बन रहा है वह तंतुवोंका ही अवस्था विशेष है। जो कि तंतुवोंसे ही कथंचित भिन्न हैं और ठंड मिटाना आदिक अर्थ क्रियावोंको कर सकने वाला है ऐसा प्रमाणसे समझा गया, अर्थात् सुप्रसिद्ध निर्णय मानना चाहिए।

रूपक्षणादिसे व्यतिरिक्त अवयवीकी असिद्धिकी आशंका—अब यहाँ क्षणिकवादी शंकाकार कह रहा है कि रूपादिकको छोड़कर और कुछ अवयवी रूप पदार्थ जगतमें है ही नही, जो कुछ दिख रहा है वह रूप पदार्थ है। जो स्वादमें आ रहा है वह रस पदार्थ है, गंध पदार्थ भी होते, स्पर्श पदार्थ भी होते। इनको छोड़कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और कोई अवयवी कुछ होता ही नही है और न कोई ऐसा भिन्न अवयवी है कुछ उन रूपादिक पदार्थोंके अतिरिक्त कि जो शीत निवारण आदिक अर्थ क्रिया को करनेमें समर्थ हैं फिर आप अवयवी किसको सिद्ध कर रहे हैं। देखो—नेत्रेन्द्रिय ज्ञानमें रूप ही प्रतिभासमान होता है और कुछ तो नही, अथवा रूपवान पदार्थ तो नही। चक्षुइन्द्रिय से रूप जाना गया, रूपी नही जाना गया। तो रूपी जगतमें कुछ होता ही नही है। लोग भ्रमसे कह देते हैं जहाँ रूप घनरूपसे रह रहा है उसमें लोग रूपीका व्यवहार कर देते हैं, पर रूपी कुछ नही। इस प्रकार रसना इन्द्रियके द्वारा जो बोध हो रहा है वह रस पदार्थ है। रसको छोड़कर अन्य कुछ चीज नही है। तब रूपादिकके अतिरिक्त जब कोई पिण्ड ही, अवयवी रूप पदार्थ ही सिद्ध नही है तो अवयवीपनाकी चर्चा करना और उसके बारेमें यों मीमांसा करना कि अवयवोंमें अवयवी किस तरह रहता है, ये सारी बातें अयुक्त हैं।

रूपादिकोंमय अवयवीकी सिद्धि—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि आप जो एकरूपी पदार्थका अभाव कह रहे हो सो किस कारणसे कह रहे हो? क्या विरुद्धधर्म सहित होनेके कारण एक पदार्थमें एकत्व और अनेकत्वका तादात्म्य नही हो सकता, इस हेतुसे आप एक रूपी अवयवीका विरोधकर रहे हो या एक रूपी पदार्थ को ग्रहण करनेका उपाय ही कुछ नही हो सकता, इस कारण रूपीका निषेध कर हो। यदि प्रथम पक्षकी बात कहो कि विरुद्ध धर्मके होनेसे एक वस्तुमें अवयवीके एकत्व और अनेकत्वके तादात्म्यका विरोध होनेसे रूपीका अभाव है तो आपसे हम यह पूछना चाहते हैं कि तादात्म्यका जो आप विरोध बता रहे हो कि एक पदार्थमें एकत्व और अनेकत्वका तादात्म्यका जो विरोध बतलाते हो सो कथंचित् तादात्म्यका विरोध है या सर्वथा तादात्म्यका विरोध है? यदि कहो कि सर्वथा तादात्म्यका विरोध है तो यह बात युक्त ही है। रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का एक अवयवीमें सर्वथा तादात्म्य नही है, यह बात ठीक है। अगर सर्वथा तादात्म्य होवे तो गुण गुणीका भेद ही नही किया जा सकता, मगर कथंचित् एकत्वका, कथञ्चित् तादात्म्यका तो विरोध नही है क्योंकि रूप रस आदिक विरुद्ध धर्मके रहनेपर भी एक अनवयमें एकत्व होना, यह विरुद्ध नही है।

रूप और रूपी पदार्थके तादात्म्यके सम्बन्धमें दिये गये शङ्का-समाधान का स्पष्टीकरण—शंकाकार यहां यह समझ रहा था कि रूपका अर्थ और है रस चीज और है, गंध, स्पर्श और और हैं। तो इतने भिन्न-भिन्न रूप, रस आदिक एक वस्तुमें कैसे तादात्म्य रूपसे रह सकते हैं? याने रूप, रस आदिकका तादात्म्यभूत कोई पदार्थ हो सकता है यह कैसे सम्भव है? लेकिन ऐसी कल्पना और शंका करना युक्त नही है देखो! शंकाकारके द्वारा माना गया यह चित्रज्ञान नीलादिक अनेक आकारोंसे सहित है कि नही? और नीलादिक अनेक विरुद्ध आकारोंसे सहित होनेपर भी चित्रज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक माना गया है । वे ज्ञान कहीं अनेक तो नहीं हो गए ? और भी देखो, शंकाकार के यहां विकल्पाकार व निर्विकल्पाकार दोनों आकारोंको लिये हुए विकल्पज्ञान है तो दृष्टान्त सिद्ध हो गया ना अनेकात्मक एक कुछ होता है । यहां प्रकरणमें सर्वत्र देख लीजिये ! जो कुछ दृश्य है, भौतिक है, पुद्गल है वह सब रूपरसगंधस्पर्शात्मक है मूर्तिक कोई पदार्थ होता है उसके स्वभावभूत गुण है — रूप रस गंध स्पर्श । रूपादिक पृथक पृथक पदार्थ नहीं है । इस कारण अनेक धर्मोंसे युक्त अनेक परमाणुओंका पिण्ड अवयवी एक होता है ।

मूर्तिक पदार्थसे व्यतिरिक्त स्वतन्त्र रूप रस आदिककी अनुपलब्धि— शंकाकार रूप, रस, गंध, स्पर्शको तो पदार्थ मानता है पर रूप रसादिकसे व्यतिरिक्त अन्य कोई अवयवी है, पिण्डात्मक है ऐसा नहीं मानता । ऐसा न माननेका कारण उसका यह हो सकता है कि रूपरस आदिसे रहित कोई एक द्रव्य प्रत्यक्षमें प्रतिभासमान नहीं होता । तो जैसे रूपादिकरहित कोई पदार्थ प्रत्यक्ष प्रतिभासमान नहीं होता इसी प्रकार द्रव्य रहित पिण्डरहित केवल रूपादिक भी तो प्रतिभासमान नहीं होते । जैसे कि आम के द्रव्य बिना केवल रूपादिक है । किसी को विदित होते हों सो तो नहीं । द्रव्यरहित रूपादिक स्वप्नमें भी प्रतिभासमान नहीं होते । और प्रत्यक्ष माना गया है इस तथ्यको शंकाकारके यहाँ भी और एक स्थूल दृष्टिमें भी कि पदार्थ अपने स्वरूपका त्याग किए बिना ज्ञानमें अपना स्वरूप सर्पित करदे उस ही का नाम प्रत्यक्ष है, प्रत्यक्षमें स्थूलतया ऐसा होता है कि पदार्थ तो अपने आपमें सत् रहता ही है और वह अपना स्वरूप ज्ञान को सौंप देता है, अर्थात् ज्ञानमें वे समस्त पदार्थ प्रतिभात हो जाते हैं । तो वस्तुकी प्रत्यक्षता यही है कि अपने स्वरूपका परिहार किए बिना बुद्धिमें अपने स्वरूपका समर्पण करदे पर यहाँ देखो तो सही, द्रव्यरहित रूपादिक बुद्धिमें स्वरूपका कहाँ समर्पण कर पाता है । यह पदार्थ पिण्डात्मक रूपसे ही बुद्धिमें आता है । द्रव्यरहित रूप केवल अपना स्वरूप ज्ञानमें सौंप दे ऐसा तो नहीं होता । और फिर भी क्षणिकवादी उसे प्रत्यक्ष स्वीकार करते जाते हैं तो यह तो इस तरह हुआ कि बिना मूल्य दिये कोई चीज खरीदे । इसी तरह स्वरूप भी सौंप नहीं पाया इन रूपादिकने । द्रव्यरहित होकर और प्रत्यक्ष भी हो लिया गया । सो किसी को भी स्वप्नमें केवल रूपादिक भी द्रव्य सम्बन्ध बिना प्रतिभात होते हों ऐसा नहीं है ।

रूपरसात्मक मूर्तिक द्रव्य माने बिना ज्ञान और ज्ञेयकी असिद्धि— अच्छा अब यह बतावो वे, जो लोग केवल रूप रस आदिको पदार्थ मानते हैं, रूपी मूर्तिक पिण्डभूत नहीं मानते उनको जो भींटमें या भींट नामका रूप जो नजर आया, भींट कोई पदार्थ तो है नहीं उनकी दृष्टिमें, क्योंकि वे पिण्डरूप कुछ नहीं मानते । रूप, रस, गंध, स्पर्श ये ही पूरेके पूरे पदार्थ हैं उनके यहाँ । सो भींट नामसे कहा जाने वाले जो रूप हैं, यह रूप क्या प्रत्येक एक है अथवा अनेक निरंशरूप अणुवों का संचयमात्र

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है ? यदि कहो की यह भींट नामसे कहा जाने वाला रूप एक है प्रत्येक तो ऊपर बीचमें नीचे तादात्मक जैसा एक रूप हो गया वह सारा का सारा, इसके बाद भींट जब एक रूप भींट हो गया तो इसमें रस भी है तो सारा ही का सारा एक रस भींट भी हो गया तो क्या ये वो अलग अलग भींट है, रूप भींट, रस भींट, गंध भींट, स्पर्श भींट। यदि कहो कि यह जो भीट नामसे कहा जाने वाला रूप है यह अनेक निरंश परमाणुवोंका संचयमाव इस भींटको जिस ज्ञानने ग्रहण किया वह एक ज्ञान अनेक परमाणुवोंके आकार रूप होकर उस अनेक परमाणुकाररूप भींटको ग्रहण करता है या एक एक परमाणुके आकाररूप बनकर अनेक ज्ञान इसको ग्रहण करते हैं ? जब भींटको अनेक परमाणुवोंका संचयमात्र मान लिया तो वहाँ हैं परमाणु अनेक तो उनको जाननेवाला ज्ञान एक है या अनेक ? अर्थात् एक ज्ञानने ही उन अनेक परमाणुवोंके संचयमात्र भींट को जाना या उसमें जितने परमाणु हैं उतने ही आकार रूप बने हों उतने ही ज्ञानोंने उसको जाना। यदि कहो कि एक ही ज्ञानने अनेक परमाण्वाकारको जान लिया तो बस यही बात है, एक द्रव्यके सम्बन्धमें जब एक ज्ञान अनेकाकार रूप बन सकता है तब रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक सर्वात्मक एक द्रव्य बने इसमें क्यों सन्देह करते ? यदि कहो कि एक-एक परमाणुके आकार रहने वाले यों अनेक ज्ञान हैं वे ज्ञान इस भींटको जान पाते हैं तो देखिये ! जैसे कि उस भींटमें भिन्न-भिन्न अनेक परमाणु माने हैं ऐसे ही वहाँपर परस्पर भिन्न ज्ञान परमाणु भी बहुत मान बैठो ! मगर ऐसा तो किसीको प्रतिभासमें आता नहीं। एक वस्तुके सम्बन्धमें अनेक ज्ञान होते हों और अनेक ज्ञानोंसे भी एक-एक परमाणु जाना जाता हो, ऐसा तो किसीको भी विदित नहीं हो रहा। और ऐसा जब ज्ञात नहीं होता, और तरह तुम मानते नहीं तो ज्ञेयको ग्रहण करने वाला ज्ञान न बन सका, तो ज्ञेय भी कुछ न रहा। जब एक-एक ज्ञान परमाणुका प्रतिभास लोगोंको न हो सका तो जब ग्राहक ज्ञान ही अपने सम्वेदनमें नहीं आ रहा तो ज्ञेय कैसे सम्वेदनमें आयगा ? और, यों फिर जगत शून्य हो जायगा। इस कारण यह नहीं कह सकते कि विरुद्ध धर्मोंसे सहित होनेके कारण एक पदार्थमें रूप, रस आदिक अनेक धर्मोंका तादात्म्य नहीं रह सकता। रहता है तादात्म्य। एक अणु है और वह चारों गुणात्मक है।

मूर्तिक द्रव्यकी ज्ञापक प्रमाणोंसे सिद्धि शङ्काकार कहता है अब, कि रूपी द्रव्यका इस कारण अभाव है कि रूपी द्रव्यको जाननेका कोई उपाय ही नहीं बन सक रहा इन्द्रियसे रूपको जान लिया, रसको जान लिया, गंध स्पर्शको जान लिया पर चतुष्टयात्मक कोई पिण्डभूत द्रव्य है, इसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। उत्तर देते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है क्योंकि जीवोंमें जो एक प्रत्यभिज्ञान बना रहता है कि जिस चीजको मैंने देखा था उस ही चीजको अब छू रहा हूं। इस प्रकार का जो प्रत्यभिज्ञान बनता है वह प्रत्यभिज्ञान उस रूपी पदार्थका, उस पिण्डभूत पदार्थ का ग्रहण कर रहा है। जब यह जाना था कि जिस आमको मैंने देखा था उस ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आमको मैं छू रहा हूँ तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि रूप, रसात्मक वह एक पिण्ड है दो इन्द्रियोंसे जो वहां जाना गया, चक्षुरिन्द्रियसे रूप जाना, स्पर्शन इन्द्रियसे स्पर्श जाना, तो दोनों इन्द्रियोंके विषयभूत रूप और स्पर्शके आधारभूत एक पदार्थका ग्रहण किए बिना प्रत्यभिज्ञान बन ही नहीं सकता । रूपका भी आधार वही है, स्पर्शका भी आधार वही है ऐसे आधारभूत एक पदार्थका ग्रहण जब तक नही होता तब तक यह प्रत्यभिज्ञान नही बन सकता । जिस ही पदार्थको मैंने देखा था उस ही पदार्थको मैं छू रहा हूँ और रूप, रस तथा स्पर्श ये प्रतिनियत इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हैं, रूपको जानता है चक्षु और रसको जानती है रसना, स्पर्शको जानती है स्पर्शन इन्द्रिय । तो इन्द्रियसे यह नही जाना जा सकता कि जिसको मैंने छुआ था उसीको मैं देख रहा हूँ । प्रत्यभि-ज्ञानरूपसे ज्ञान करना इन्द्रियका विषय नही है । इन्द्रियके विषय तो न्यारे-न्यारे रूप रस आदिक हैं । यह ज्ञान तो स्मरण आदिक परिणमनोंकी सहायता लेकर चेतन आत्माके बन सकता है, जानना बन सकता है, उस अवयवी द्रव्यका कि जिसमें रूप, रस आदिका समावेश है तादात्म्य है । तथा स्मरण आदिक परिणतिकी सहायता लेकर आत्मा ही यह समझ सकता है कि यह भींट इस भाग और परभागके अवयवोंमें व्यापी है । इसे न केवल प्रत्यक्ष समझ सकता न केवल स्मरण समझ सकता । स्मरण की सहायता लेकर प्रत्यक्ष ज्ञानसे यह आत्मा जान सकता है । तो प्रत्यभिज्ञान भी जीवनमें कितना उपयोगी बन रहा है । पद-पदपर जिसको देखते हैं, समझते हैं कि देखो ! यह वही पुरुष है जिससे एक वर्ष पहिले परिचय हुआ था । तो प्रत्यक्षज्ञान प्रमाणभूत है यह बात भली प्रकार पहिले ही सिद्ध कर दी गई थी । इस कारण रूप रसगंधस्पर्शात्मक पुद्गल द्रव्य होता है इसमें सन्देह नही ।

मूलभूत परमाणुको नित्यानित्यात्मक न माननेपर पृथ्व्यादिक पदार्थों की असिद्धि—जब अवयवोंमें अभिन्न अवयवी बराबर प्रमाणसिद्ध है तो अब अवयवी के वर्णनकी मीमांसा कर लेना चाहिये । इस प्रसङ्गमें जो यह कहा विशेषवादमें कि द्रव्य ९ होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश काल दिशा, आत्मा और मन । उनमें जो पहिले चार द्रव्य बताये—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार संख्यामें रहना घटित नही होता । प्रथम तो यह बात है कि उनका कारणभूत है नित्य स्वभाव वाले परमाणु और नित्य स्वभाव वाले परमाणुवोंमें अर्थक्रिया हो नही सकती । जब उन्हें नित्य अपरिणामी मान लिया तो उन परमाणुवोंसे अब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य नही बन सकते । जब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य न बन सके तब फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहाँसे आ जायें ? ये कोई एक-एक परमाणु तो नही हैं, ये तो स्कंध ही हैं और स्कंधोंकी उत्पत्ति माना है कारण परमाणुवोंसे । और, कारण परमाणु हैं नित्य स्वभाव वाले । तो नित्य स्वभाव वाले परमाणुवोंमें अर्थक्रिया न होनेसे जब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य नही बन सकते तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन पिण्डों की उत्पत्ति नही हो सकती । यदि कारणोंके अभावमें कार्य बनने लगें तो कारणकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो कुछ जरूरत रही नहीं। जो चाहे चीज बन जाय। गधेके सींग भी बन जायें। कारणकी क्या आवश्यकता ? तो अपने अवयवोंसे भिन्न अवयवी अलगसे कोई हो यह सिद्ध नहीं होता। अवयवसे अत्यन्त भिन्न अवयवीको ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण ही नहीं है। इससे जो अवयवा एक रूपरसादिका अभिन्न समुदाय है उसीका नाम अवयवी है और फिर वह अवयवी सामान्य-विशेषात्मक है वे बिखर जायें और अत्यन्त बिखर जायें, उसका कोई निरंश अवयवी हो जाय, जिसे परमाणु कहते हैं वह भी सामान्यविशेषात्मक हैं। प्रमाणके विषयभूत प्रमेय सामान्यविशेषात्मक होते हैं, न कि द्रव्य गुण कर्म, सामान्य, विशेष समवाय आदिक इन ६ जातियोंमें ही विभक्त पदार्थ प्रमाणके प्रमेय होते हैं।

पृथ्वी आदिकको भिन्न-भिन्न द्रव्य माननेपर परस्पर उपादानोपादेय भावकी असिद्धि यहाँ द्रव्यकी चर्चामें चल रहे हैं। जो चार द्रव्य बतलाये—पृथ्वी-जल, अग्नि, वायु, इन चार जातियोंमें चार भेदों रूपमें वर्णन किया, वह बिल्कुल अयुक्त है। स्वरूप ही जो माना है शंकाकारने वह असिद्ध है। स्वरूपकी असिद्धि होनेपर फिर भेदका वर्णन कैसे सम्भव हो सकता है ? पहिले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इन चार प्रकार की ही तो सिद्धि करो। कैसे हैं ये चार ? यदि इनमें जातिभेद करके परस्परमें अत्यन्त भेद कर डालोगे तो जैसे कि आत्मा और पृथ्वी इनमें कभी मेल मिलाप हो ही नहीं सकता। अत्यन्त भिन्न है, इसी तरह हो गये अब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तो इनमें कोई भी एक दूसरे का उपादान उपादेय नहीं बन सकता। जिनमें जाति भेद से आत्यंतिक भेद है उनमें उपादान उपादेय भाव नहीं बन सकता। जैसे कि आत्मा और पृथ्वीका चूंकि अत्यन्त भेद है तो कभी उपादान उपादेयपना नहीं बन सकता कि पृथिवीसे आत्मा बन जाय या आत्मासे पृथवी बन जाय। लेकिन पृथवी आदिक चारमें तो उपादान उपादेयभाव बराबर नजर आता है। पृथवीसे जल बन जाय, जल से वायु बन जाय, यों एक दूसरेमें परस्पर उपादान उपादेय भाव है। तो जातिभेद अगर होता तो त्रिकाल भी इसमें उपादान उपादेयपना नहीं बन सकता था। जाति तो उस तरह मानी जाती है कि जो परस्परमें एक दूसरेरूप त्रिकाल न हो सके। जैसे स्याद्वादमें ६ प्रकारके पदार्थ माने हैं —जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, इनमेंसे कोई एक द्रव्य किसी दूसरे रूप नहीं हो सकता। सो पृथवी, जल, अग्नि, वायु ये चारोंके चारों एक जातिमें सामिल हैं, इनकी जाति एक है और इसी कारण इन चारोंमें परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जाया करता है। तो जो चार प्रकारके द्रव्य कहे हैं पहिले वे ही भिन्न-भिन्न जातिके सिद्ध नहीं होते। वे चारों एक प्रकारके द्रव्य हैं। इनको पुद्गल शब्दसे कहलो क्योंकि ये पूरते हैं और गलते हैं। कभी पिण्ड रूप बनते हैं कभी बिखर जाते हैं। इस कारण इनकी सत्ता अलगसे नहीं है। इस सबका निष्कर्ष यह है कि विशेषवादियोंने जो द्रव्यके भेदोंमें पृथवी, जल, अग्नि, वायु इन चारोंको भिन्न-भिन्न बताया है, उनके यहाँ फिर पृथवी जल आदिकमें उपादान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उपादेय भाव नहीं बन सकता अर्थात् पृथवीसे जल बन जाय, जलसे पृथवी बन जाय आदिक परस्पर उपादान उपादेय भाव नही बन सकता क्योंकि जिनमें जातिभेदसे सर्वथा भेद होता है उनमें उपादान उपादेयभाव नही बनता जैसे कि आत्मा और पृथ्वी आदिक। इनका परस्पर उपादान उपादेय भाव नही है, क्यों नही है कि जातिभेदसे इनमें आत्यंतिक भेद है। और, विशेषवादियोंने पृथवी आदिकमें आत्यंतिक भेद माना है। तो यह ही आपत्ति है जो कि लोकप्रसिद्ध है। फिर कैसे पृथवी आदिक ये चार भेद स्वतन्त्र हो सकते हैं ?

जातिभेदसे आत्यन्तिक भेदरूप हेतुपर विचार—शंकाकार कहता है कि तुम्हारा यह हेतु तो व्यभिचारी है कि जिसमें जाति भेदसे यह आत्यंतिक भेद हो उनमें उपादान उपादेय भाव नही बनता कारण कि तंतु और पट। देखिये—इनमें भेद है, तंतु अलग चीज है, पट अलग चीज है, लेकिन इनमें उपादान उपादेय भाव बन गया। तंतु तो उपादान है और पट उपादेय है। तो यह हेतु सही तो न रहा कि जिनमें जाति भेदसे आत्यंतिक भेद हो उनमें उपादान उपादेय भाव नही हुआ करते ? उत्तर देते हैं कि इस हेतुको तुम सदोष नही कह सकते क्योंकि ततु और पटमें आत्यंतिक भेद नही है। वैसे तत्काल पर्यायगत जातिभेद तो है। सो जाति तो अपनी दृष्टिके अनुसार बन जाती है। तंतुमें तंतुत्व है, पटमें पटत्व है इस तरहसे न्यारा भेद मान लिया, पर जब निरखते हैं कि तंतु भी भौतिक चीज है और पट भी भौतिक चीज है तो उसमें जातिभेद भी नही। खैर जातिभेद अपने प्रयोजनवश मान लिया लेकिन आत्यंतिकभेद यों नही है कि तंतु भी पृथ्वी है और पट भी। तो पृथ्वीत्व सामान्य तंतुमें और पटमें बराबर पाया जाता है। तो जातिभेद कहाँ आत्यंतिक रहा, इस कारण इस हेतुको सदोष नही कह सकते।

पृथ्वी आदिको द्रव्यत्व जातिरूपसे पृथक् पृथक् माननेपर उपादानोपादेयभावकी सर्वथा असिद्धि शंकाकार कहता है कि इस तरहसे यदि अभेद मान लिया जाता कि ततु भी पृथ्वी है और कपड़ा भी पृथ्वी है सो पृथ्वीत्व जाति एक होने से इनमें जातिभेद आत्यंतिक न रहा, तब तो देखिये कि पृथ्वी भी द्रव्यत्व जाति वाली है और जल अग्नि, वायु भी द्रव्यत्व जातिमें है। तो द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा पृथ्वी आदिक चारोमें भी अभेद रह जायगा। यहाँ भी आत्यंतिक भेद न बनेगा। और, जब द्रव्यत्वकी अपेक्षा पृथ्वी आदिक चारोंके आत्यंतिकभेद न रहे तो इनका परस्परमें उपादान उपादेय भाव बन जायगा। उत्तर देते हैं कि इस तरह यदि पृथ्वी आदिकमें जाति भेद नही बनता और द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा वे चारों एक बन जाते हैं तो द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा तो ६ के ६ ही एक हो गए। केवल पृथ्वी आदिक चारोंमें ही एकपना क्यों कहते ? द्रव्यत्व तो समस्त नवों ही द्रव्योंमें पाया जा रहा, फिर ६ वोंको ही एक मान लीजिए। और, फिर जैसे पृथ्वी और जल ये परस्परमें उपादान उपादेय भाव

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाले हैं इनमें उपादान उपादेय भाव बन जाता है तो इसी तरह आत्मा और पृथ्वी आदिकमें भी परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जाना चाहिये क्योंकि अब इसमें द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा भेद न रहा। सो जैसे पृथ्वी आदिक चारोंमें द्रव्यत्वकी अपेक्षा अभेद बता देनेसे उपादान उपादेय भाव मान लेते हो यों ही इन ६ के ६ वोंमें ही द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षासे भेद न होनेके कारण उपादान उपादेय भाव मान लीजिए। और, फिर यदि उपादान उपादेय भाव मान लेते हो ६ के ६ वों ह' द्रव्योंमें तो इसके मायने यह है कि उनमेंसे कुछ भी एक रह गया। और वह एक क्या रह गया सो उ में छटनीकी जाय तो खोजते खोजते प्राय: आत्मापर दृष्टि टिकेगी और वों आत्मा द्वैत रह गया फिर पृथ्वी आदिकमें ६ भेद कैसे बन जायेंगे ? तो इस कारण पृथ्वी आदिक जब तुमने जातिभेद डाल दिया और ६ भेद स्वतंत्र स्वतत्र मान लिया तो फिर इनमें परस्पर उपादान उपादेय भाव नही घटित हो सकता।

पृथ्वी जल अग्नि वायुके परस्पर उपदानोपादेय भावका विवरण शंकाकार यह भी नही कह सकते कि उपादान उपादेय भाव पृथ्वी आदिमें परस्पर है नही, उपादान उपादेय भाव मत घटित हो उपादान नही कह सकते, देखो—सब जानते हैं। चन्द्रकान्तमणिसे जलकी उत्पत्ति होती है तो चन्द्रकान्तमणि तो पृथ्वी है और उस पृथ्वीसे जल उत्पन्न हो जाय तो उपादान उपादेय भाव पृथ्वी और जलमें हो गया, इसी तरह जलसे मुक्ताफलकी उत्पत्ति होती है। किसी योग्य समयमें सीपमें कोई योग्य बूँद आनेपर वह मुक्ताफल रूप परिणम जाती है, तो कौन परिणमा ? जल ही तो परिणमा। तो देखो—जलसे अब पृथ्वीकी उत्पत्ति हो गयी ना। तो जल और पृथ्वी में भी परस्पर उपादान उपादेय भाव हो गया और देखो—काठसे अग्निकी उत्पत्ति होती है। जंगलमें खड़े हुए बाँस आपसकी रगड़से अग्नि उत्पन्न कर देते हैं तो भला बतलावो उस अग्निका उस समय वहाँ उपादान क्या रहा ? वह तो हुआ ? तो पृथ्वी और अग्निमें उपादान उपादेय भाव बन गया, इसी तरह देखलो पंखा चलानेसे वायु की उत्पत्ति होती है। उस वायुकी उत्पत्तिका साधन क्या है उस समय ? वह पंखा, और पंखा है पृथ्वी, तो पृथ्वी और हवामें भी देखो—उपादान उपादेय भाव बन गया ना ! इस कारण इन चारोंमें उपादान उपादेय भाव नही है, यह नही कह सकते।

एक और उपदानोपादेयभावका स्पष्टीकरण—अबशंकाकार कह रहा है कि चन्द्रकान्त पृथ्वीमें जो जल द्रव्य हैं उस जल द्रव्यसे जलकी उत्पत्ति हुई। चन्द्रकान्त में जो पृथ्वीतत्त्व है उससे जलकी उत्पत्ति नही हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी और जलमें परस्पर उपादान उपादेय भाव नही है किन्तु जल जो उत्पन्न हुआ है वह चन्द्रकान्तमें रहनेवाले जल द्रव्यसे उत्पन्न हुआ है। समाधान करते हैं कि यह बात युक्त नही बैठती, क्योंकि उस चन्द्रकान्त मणिमें जल भरा हुआ है, उसमें जल गर्भित है, इसको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नही है, एक दम स्पष्ट प्रसिद्ध है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ठीस वह पृथ्वी ही पृथ्वी है। और इससे अतिरिक्त चन्द्रकान्तमें जल न होनेपर भी या जलके सद्भावको सिद्ध करने वाला प्रमाण न होनेपर भी चन्द्रकान्तमें जलका सद्भाव मान लेते हो तो क्या यह न कह सकेंगे कि मृत् पिण्डमें घटका सद्भाव है ? मृत पिण्ड उपादान है घट उपादेय, यह भी बात नही, अर्थात् मृत पिण्डसे घटकी उत्पत्ति हुई है यह बात नही है किन्तु उस मृतपिण्डमें घट मौजूद है जो मौजूद घट है वही मृतपिण्ड से निकल आया और इस तरह सत्कार्यवाद दर्शनका प्रसंग आ जायगा। फिर तो कारण कार्य व्यवस्था ही कहीं नही बन सकती। प्रत्येक कार्य जैसा है कारण उसमें मौजूद है, लेकिन कारण कार्य व्यवस्था केवल कारण मात्रसे तो नही नष्ट हो जाती, तब यह बात सुप्रसिद्ध हो गयी कि मृतपिण्डमें जैसे घट मौजूद नही है किन्तु कारण कलापसे विधि पूर्वक उस मृतपिण्डसे घटकी उत्पत्ति होती है इसी तरह चन्द्रकान्तमें भी जल भरा हुआ नही है किन्तु यहाँ निमित्त पाकर चन्द्रकान्तसे जलकी उत्पत्ति हो जाती है। ऐसा नही हैं कि मृतपिण्डमें घट भरा हो । इसी तरह ऐसा नही है कि चन्द्रकान्त में जल भरा हो। तब यों तो ऐसा भेद सिद्ध हो गया ना, और माना भी है विशेष-वादियोंने कि द्रव्य ९ प्रकारके होते हैं तो जातियाँ जो बनायी जाती हैं वे उतनी बनाई जाती हैं कि एकमें दूसरा त्रिकाल भी सामिल न होगा, किन्तु विशेषवादमें तो आत्यं-तिक भेद माना। सो आत्यंतिक भेद होनेपर फिर इनमें परस्पर उपादान उपादेय भाव बन नही सकता।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारोंकी परसगंध स्पर्शमयता -शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिक ये चार चीजें एक कैसे हो सकती हैं ? जब गंध पृथ्वीमें ही पायी जाती अन्यमें पायी नही जाती रस जलमें ही पाया जाता ९ अन्यमें नहीं पाया जाता है, जहाँ ऐसी व्यवस्था बनी हो तो फिर रूप, रस, गंध स्पर्श इन चारोंका सामा-न्यतया एक रूपसे एक आधार पाया जाय और किसी पदार्थको रूपरसात्मक मान लिया जाय यह बात कैसे बन सकेगी ? समाधानमें कहते हैं कि पृथ्वी आदिक चारों सब एक ही चीज हैं. और चारोंके चारों रूपरसाधात्मक हैं, इनमें वर्तमान परिणमन के भेदसे भेद है। इसमें उपादान जाति पुद्गल है । जिस समय ये पुद्गल परमाणु पृथ्वीरूप परिणमें हुए हैं उस समय तक यह पृथ्वी पर्यायमें है। वह ही परमाणु जब जलरूप परिणमने लगता है तो पृथ्वीरूप परिणत परमाणुवोंसे ही जल पर्याय उत्पन्न हो जाती है। तो पर्यायके भेदसे ही पृथ्वी आदिकमें परस्पर भेद है किन्तु पुद्गल द्रव्यकी दृष्टिसे द्रव्य दृष्टिसे इनमें भेद नही है। ये चारोंके चारों रूप, रस, गंध, स्पर्शात्मक हैं। ये चारों पुद्गलकी अभिन्न शक्तियाँ हैं तथा ये परस्पर अविनाभावी भी हैं। जहां न चारोंमें कोई एक न माना वहाँ ये चारों ही नही ठहर सकते। तो इस कारण इन्हें एक जातिमें ही माना जायगा। ये भिन्न-भिन्न चार जातियाँ नही हैं। तब जो स्याद्वादमें ६ जातिके पदार्थोंकी व्यवस्था बतायी गई है जैसा पदार्थका स्वरूप है वैसा ही सर्वज्ञ देवके ज्ञानमें ज्ञात है और दिव्यध्वनिसे वैसा ही प्रकट होता है,

Version 1

आगममें वैसा ही लिखा हुआ है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये ६ प्रकारसे ही द्रव्य बनते हैं।

द्रव्योंके ९ संख्याकी असिद्धि यहाँ वैशेषिक सिद्धान्तमें माने गए ९ द्रव्यों में से पहिले चार द्रव्यों की चर्चा चल रही है, सो इन चारोंके प्रकरणमें यह बताया जा रहा है कि पृथ्वी आदिक चारों ये भिन्न-भिन्न चीजें नहीं हैं किन्तु ये सब मूर्तिक पुद्गल ही हैं और एक जाति होनेके कारण फिर इनमें यह बात सम्भव हो जाती है कि इनमें परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जाता है। शेष रहे विशेषवादियोंके ५ द्रव्य आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इनका आगे विचार करेंगे प्रथक् प्रथक् सब का स्वतन्त्र रूपसे. लेकिन संक्षेपमें इतना समझ लेना चाहिए कि आकाश तो द्रव्य है और काल भी द्रव्य है। लेकिन आकाशको जिस ढंगसे विशेषवादियोंने माना है कि वह शब्द गुण वाला है और आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति होती है इस रूपसे तो आकाश नहीं है। लेकिन समस्त द्रव्योंको अवगाह देने में जो निमित्तभूत है, यह जिसमें असाधारण गुण है ऐसा आकाश द्रव्य है। कालके सम्बन्धमें भी जो लोग ऐसी दृष्टि करते हैं कि घड़ी, घंटा, दिन, महीना ये स्वयं काल द्रव्य हैं सो ये तो द्रव्य नहीं हैं। ये तो काल द्रव्यकी आपेक्षिक परिणतियाँ हैं। काल द्रव्य तो स्वतत्र एक प्रदेशपर एक एक प्रदेश वाला मात्र है, और उसका परिणमन साक्षात् एक समय है। किन्तु दिशा नामक कोई द्रव्य नहीं है। दिशा तो एक कल्पना की हुई चीज है। जिस ओरसे सूर्यका उदय हुआ उसे पूर्व कहने लगे, जिस ओर सूर्य अस्त हुआ उसे पश्चिम कहने लगे। अब कोई पूर्व दिशाकी ओर मुह करके खड़ा हो तो उसका दाहिना हाथ जिस तरफ है उसे दक्षिण कहने लगे और बाँया हाथ जिस तरफ है उसे उत्तर कहने लगे। तो ये तो कल्पनासे दिशायें बनी हुई हैं। दिशा कोई अलग द्रव्य हो सो बात नहीं है। हाँ आत्मा द्रव्य है, किन्तु वह ज्ञानादिक गुणोंसे रहित अचेतन हो सो नहीं। मन प्रथक कुछ द्रव्य नहीं। पुद्गलभूत मन तो पुद्गलमें सामिल है और विचारभूत मन जीवकी परिणति में सामिल है। प्रयोजन यह है कि ९ प्रकारके द्रव्योंमें इस प्रकारकी व्यवस्था नहीं बनती। तो इस समय चार द्रव्योंका प्रसंग चल रहा। ये चारो पुद्गल हैं और रूप, रस, गंध, स्पर्शमय हैं इनमें नित्य स्वभाव वाले और आत्यंतिक भिन्न-भिन्न पृथ्वी आदिक द्रव्य नहीं घटित होते हैं।

नित्य निरंश शब्दलिङ्ग आकाशकी प्रतीति—पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होते हैं. इसके विरोधमें विशेषवादीका कहना है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक नहीं होते, किन्तु सामान्य स्वयं एक पदार्थ है और विशेष भी स्वय एक पदार्थ है, और यों पदार्थ ४ और होते हैं सो पदार्थ सब ६ प्रकारके होते हैं, उनमेंसे याने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष. समवाय इन ६ पदार्थोंमेंसे द्रव्यका वर्णन चल रहा है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार पदार्थोंको तो जिस प्रकार वैशेषिक मानता है उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निराकरण किया। अब कहा जा रहा है कि आकाश भी कोई विशेषवादियों द्वारा कल्पित जैसा द्रव्य नही है, क्योंकि आकाशको मानते हैं विशेषवादी नित्य निरंश और शब्दका कारणभूत, उसकी प्रतीति नही होती। सर्वथा नित्य भी आकाश नही है। लोक में ऐसा कोई पदार्थ नही होता जो सर्वथा नित्य हो। जैन सिद्धान्त तो इसी स्याद्वादपर आधारित है कि पदार्थ सब नित्यानित्यात्मक होते हैं। जैसे आत्मा है, सदा रहता है, यह तो हुआ उसका नित्यपना और क्षण–क्षणमें पर्यायें बदलना यह हुआ उसका अनित्यपना। तो पदार्थ सभी नित्यानित्यात्मक होते हैं। आकाश भी एक द्रव्य है, सर्वव्यापक है, अखण्ड है, सदा रहता है तिसपर भी आकाशमें भी सूक्ष्म परिणमन चलता रहता है चाहे उनका बोध न भी हो जितने भी शुद्ध द्रव्य होते हैं उनका परिणमन छद्मस्थोंको ज्ञात नही हो पाता, क्योंकि शुद्ध परिणमन वाले पदार्थका परिणमन स्वभावमें लीन हो जाता है। इसलिए यद्यपि आकाशका परिणमन कोई व्यक्त जुदा नही मालूम होता, किन्तु आकाश जुदा है इस कारणसे वह सर्वथा नित्य नही है। साथ ही आकाशको सर्वथा निरंश नही कह सकते। यद्यपि वह अखण्ड है और अंश–अंश रूपमें कभी अलग नहीं हो सकता लेकिन जब हम आकाशका परिमाण बना लेते—यह एक इंच आकाश है, यह एक सूत है, आधा सूत है, इस तरहसे जो परिमाण बना है उस परिमाणके द्वारा आकाशके अंशोंका कुछ ज्ञान तो रहता ही है। और, तभी कहते हैं कि आकाश अनन्त प्रदेशी है। तो सर्वथा निरंश और शब्द गुणके कारणभूत आकाश की प्रतीति नही होती।

शङ्काकार द्वारा शब्दलिंग आकाश पदार्थकी सिद्धि—अब यहां शङ्काकार कहता है कि आकाश नित्य और निरंश धर्मसे सहित वास्तविक पदार्थ है, क्योंकि उसका कार्य शब्द है। शब्दकी उत्पत्ति आकाशसे होती है, इस कारण शब्दका आधारभूत कोई आकाश है। जैन लोग तो शब्दकी उत्पत्ति आकाशसे नही मानते। किन्तु भाषावर्गणा जातिके कोई पुद्गल होते हैं द्रव्य, उन स्कधोंसे उनकी उत्पत्ति होती है, किन्तु जब लोगोंको वे स्कंध दीखते ही नही कि जिनसे शब्द वर्गणा बनती है और आकाशमें वे प्रतीत होते हैं। शब्द आकाशमें ही सुनाई देते हैं, आकाशसे ही आये हुए मालूम देते हैं तो शब्द आकाशका गुण है। यह सब शंकाकार कह रहा है और उस आकाशको सिद्ध करनेके लिए वे अनुमान प्रयोग बतलाते हैं कि शब्द किसी न किसी जगह आश्रित है, क्योंकि विनाशीक और उत्पत्तिमान आदिक धर्मोंसे सहित है। चूंकि शब्द नष्ट होते हैं, उत्पन्न होते हैं इस कारण शब्द किसी न किसीके आश्रयमें रहते हैं। जो–जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं वे किसी न किसी आश्रयमें रहते ही हैं, जैसे कि घड़े फूटते हैं, नष्ट होते हैं, तो वे अपने अवयवोंमें रह रहे हैं। इसी प्रकार शब्द भी नष्ट होते हैं और उत्पन्न हुआ करते हैं। इस कारण शब्द किसी न किसी आधारमें है और वह जो आधार है सो आकाश है। दूसरा भी प्रयोग सुनो! चूंकि शब्द गुण है इसलिये शब्द किसी न किसीके आश्रयमें रहता है। जैसे—रूप, रस ये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुण हैं तो किसी न किसीके आश्रयमें रहते हैं। फलमें रूप है तो रूपका आधार फल हुआ ना। रूप गुण हुआ। गुण किसी द्रव्यके आश्रय रहा करता है। तो शब्द भी गुण है अतः शब्द किसीके आश्रय रहेगा ही। और वह शब्द जिसके आश्रय रहेगा, उस हीका नाम है आकाश !

शङ्काकार द्वारा शब्दके गुणत्वकी सिद्धि —कोई कहे कि शब्द तो गुण नहीं है, तो शंकाकार कहता कि उसका कहना असत्य है। शब्द गुण है। देखो ! शब्दके गुणपनाको सिद्ध करने वाला अनुमान है, शब्द गुण है, क्योंकि द्रव्यत्व और कर्मत्व तो शब्दमें हैं ही नहीं और सत्ता। इसका सम्बन्ध है, तो जो–जो पदार्थ द्रव्य और कर्मभावरूप न होकर फिर सत्तासे सम्बन्धित हो उसे गुण कहा करते हैं—जैसे रूप रस आदिक ! ये द्रव्य नहीं हैं, कर्म नहीं हैं और इनका सत्तासे सम्बन्ध होता है। ये हैं इस कारण गुण कहलाते हैं। इसी प्रकार शब्द भी द्रव्य नहीं, कर्म नहीं और सत्तासे शब्दका सम्बन्ध होता है, इस कारण शब्द गुण है। यह साधन असिद्ध नहीं है, इसको भी साधने वाला अनुमान है। शब्द द्रव्य नहीं होता क्योंकि एक द्रव्य वाला होनेसे रूप आदिककी तरह। शब्द एक द्रव्यका गुण है, इस कारण शब्द द्रव्य नहीं कहलाता। जो–जो एक द्रव्य वाले होते हैं वे द्रव्य नहीं हैं। जैसे—रूपादिक ये एक द्रव्यके आश्रय हैं इस कारण ये द्रव्य नहीं कहलाते। यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि शब्द एक द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करने वाला अनुमान है। शब्द एक द्रव्य वाला है अर्थात् वह एक आकाश द्रव्याश्रय वाला है। वह द्रव्यके आश्रित है, क्योंकि शब्द सामान्य विशेषवान होनेपर फिर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत होता है। जो जो सामान्य विशेषवान होकर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो वह एक द्रव्य ही तो होगा। इस हेतुमें सामान्य विशेषवत्त्व, इतना ही कहनेपर परमाणुके साथ अनेकान्त दोष आता किन्तु एकेन्द्रिय प्रत्यक्षत्व भी साथमें कहा गया है इससे अनेकान्त दोष नहीं। आनापदि हेतुमें सामान्यविशेषवत्त्व ही कहते और एकेन्द्रिय प्रत्यक्षत्व यह नहीं कहते तो देखो ! परमाणु सामान्य विशेष वाला है तब वह भी एक द्रव्य कहलाता है अर्थात् वह भी स्वतन्त्र एक द्रव्य है, परमाणु तो स्वयं द्रव्य है। तो जब उसके साथ इन्द्रिय प्रत्यक्षत्व यह कहा गया तब परमाणुके साथ अनेकान्त दोष न हो सका। परमाणु इन्द्रियप्रत्यक्ष कहाँ है ? इस कारण वह एक द्रव्य नहीं है। और, सामान्य विशेषवत्त्व भी कहते और इन्द्रिय प्रत्यक्षत्व भी कहते और वहां एक शब्द न लगाते तो घट आदिकके साथ भी अनेकान्त दोष होता ! किस तरह कि घट आदिक एकेन्द्रिय हीके द्वारा हेतुभूत नहीं है, क्योंकि घटको चक्षुसे भी जानते, रसनासे भी जानते, घ्राणसे भी जानते, स्पर्शनसे भी जानते। यह तो अनेक इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षभूत है। इससे घटको भी एक द्रव्य वाला नहीं कह सकते। हेतुमें इतने सारे विशेषण देकर भी एक बाह्य शब्द यदि न देते तो आत्माके साथ अनेकान्त दोष होता क्योंकि आत्मा सामान्यविशेषवान है और एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष है याने मनके द्वारा जान लिया जाता है। मन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी एक इन्द्रिय है, मन है भीतरकी इन्द्रिय और ५ हैं बाहरी इन्द्रियां। तो जब बाह्य विशेषण दिया कि जो बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष हो वह एक द्रव्य वाला है तो आत्मा तो बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष वाला नही है। इस हेतुमें अन्य सब शब्द देते और सामान्यविशेषवान ये शब्द न देते तो रूपत्वके साथ भी अनेकान्त दोष होता। रूपत्व बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है, फिर भी वह एक द्रव्य वाला नही है। सो हेतुके साथ सामान्य विशेषवान पद भी लगा है। जो सामान्य विशेषवान हुआ करे, फिर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो वह है एक द्रव्य वाला। तो यह रूपत्व सामान्य विशेषवान नही है क्योंकि ये स्वयं सामान्यस्वरूप हैं। तो इस तरह शब्द एक द्रव्य वाला है, स्वयं द्रव्य है नही, सो शब्द गुण है।

कर्मरूप भी न होनेसे शब्दके गुणत्वकी असिद्धि और आकाशमें शब्द आश्रयत्वका उपसंहार– शब्द कर्म भी नहीं है। शब्द कर्मरूप नही होता, क्योंकि संयोग विभागका यह कारण नही है। जितने भी कर्म होते है, वे संयोग विभागके कारणभूत होते हैं अथवा संयोग विभागसे कर्म होते हैं। कुछ भी क्रिया करें, हाथ चलायें तो इसमें भी कुछ संयोग हुए कुछ वियोग हुए। जिस जगहसे हाथ हटा उस जगहसे वियोग हुआ, जिस जगह हाथ आया उस जगह संयोग हुआ। तो संयोग वियोग हुए बिना क्रिया नही हुआ करती। कोई आदमी एक गांवसे दूसरे गांव गया तो एक गांवका वियोग हुआ और दूसरे गांवका संयोग हुआ। कोई बालक वहीं खड़ा खड़ा गोल–गोल फिर रहा है तो गोल फिरनेमें भी अनेक स्थानोंका वियोग होता जाता है और अनेक स्थानोंका संयोग होता जाता है, तो क्रिया संयोग–विभाग बिना नही होती। लेकिन शब्द न संयोगका कारण है न विभागका कारण है। इस कारण से शब्द कर्मरूप भी नही कहलाता रूप आदिककी तरह। जैसे रूप न तो संयोगका कारण है न विभागका कारण है, अतएव कर्मरूप नही कहलाता है। तो इस तरह यह सिद्ध है कि शब्द न तो द्रव्यभाव रूप है और न कर्मभावरूप है। तब शब्द न द्रव्यमें आया न कर्ममें आया और शब्दके साथ सत्ताका सम्बन्ध है और तब वह गुण ही कहलाया करता है।

शब्दका गुणत्व सिद्ध करनेके लिये दिये गये हेतुके विशेषणोंकी सार्थकताका शङ्काकार द्वारा कथन—शब्दका गुणपना सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया है कि प्रतिविध्यमान द्रव्य सामान्य भावरूप होनेपर सत्ताके साथ सम्बन्धित है अर्थात् जो न द्रव्य है, न कर्म है फिर भी सत्तासे सम्बन्धित है उसे गुण कहते हैं। तो इस हेतुमें सत्ता सम्बन्धित इतना ही कहते तो द्रव्य और कर्मके साथ अनैकान्तिक दोष होता। कैसे? कि देखो! द्रव्यमें तो सत्ताका सम्बन्ध है और कर्ममें भी सत्ताका सम्बन्ध है, परन्तु वे गुण नही कहलाते है। उस अनैकान्तिकताको दूर करनेके लिए एक विशेषण दिया है कि जो द्रव्य कर्मरूप तो न हो और फिर सत्तासे सम्बन्धित हो तो शब्द न तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयं द्रव्य है, न स्वयं कर्म है, इस कारणसे शब्द गुण कहलाते हैं। यदि इस हेतुमें केवल प्रतिषिध्यमान द्रव्यकर्मभावरूपत्व इतने ही शब्द देते तो सामान्य विशेष समवायके साथ अनैकान्तिक दोष होता, क्योंकि सामान्य, विशेष, समवाय भी न द्रव्य है और न कर्म। तो सामान्य, विशेष, समवाय भी गुण कहलाने लगते। और, जब सत्ता सम्बन्धित यह भी शब्द हेतुमें पड़ा हुआ है तो द्रव्य और कर्मके साथ अनैकान्तिक दोष नहीं हो सकता, क्योंकि सामान्य, विशेष और समवायमें सत्ताका सम्बन्ध नहीं माना गया है। सत्ताका सम्बन्ध द्रव्य गुण कर्मपर्यायोंके साथ है और सामान्य, विशेष समवाय ये तो कोई धर्मरूप हैं, इनमें सत्ताका सम्बन्ध नहीं है। और, ये यों स्वतंत्र-स्वतंत्र पदार्थ हैं। तो सत्ता सम्बन्धितत्व यह शब्द देनेसे सामान्य विशेष समवाय इनका गुणपना सिद्ध हो जाय ऐसा दोष नहीं आता। तब इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि शब्द है गुण इस कारण ये शब्द किसी न किसीके आश्रयमें रहते हैं। अब जिसके आश्रयमें ये शब्द रहते हैं वह आश्रय है आकाश !

द्रव्यके पृथ्व्यादि विशेषगुणत्वका निषेध करके आकाशगुणत्वकी सिद्धिकी आशङ्का—आकाशको छोड़कर शब्द और किसी अन्यका गुण नहीं है। स्पर्शवान परमाणुवोंका अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनका भी विशेष गुण शब्द नहीं है, क्योंकि हम जैसे अल्पज्ञोंके द्वारा वह प्रत्यक्ष हुआ करता है, जैसे कि रूपादिक कार्य द्रव्य स्पर्शवान परमाणुवोंके विशेष गुण नहीं हैं और न शब्द कार्य द्रव्योंका याने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका विशेष गुण भी नहीं है. क्योंकि कार्य द्रव्यान्तरसे उत्पन्न न होनेपर भी ये शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं, जैसे कि सुख आदिक। ये कार्य द्रव्यान्तर से उत्पन्न नहीं होते, द्व्यणुक आदिकसे उत्पन्न तो नहीं होते और फिर भी विशेषगुण है, लेकिन पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नहीं है। यहां शब्दको न तो कारण परमाणुवों का गुण बताया गया और न कार्य द्रव्योंका गुण बताया गया। इस कारण परमाणु जो हैं स्पर्श परमाणु रस परमाणु रूप परमाणु, गंध परमाणु इनका भी गुण नहीं है और इन परमाणुवोंके सम्बन्धसे जो कार्य द्रव्य बनता है, पृथ्वी आदिक पिण्ड होते हैं उनका भी गुण नहीं है, क्योंकि ये शब्द कार्य द्रव्यान्तरसे तो उत्पन्न होते नहीं, याने द्व्यणुक आदिकसे शब्द उत्पन्न नहीं होते और फिर भी शब्द उत्पन्न हुआ करते है, तब पारिशेष्य न्यायसे आकाशका ही गुण कहलाया। दूसरा हेतु यह है कि यह कारण पूर्वक नहीं है। कारण कहलाता है परमाणु और रूप आदि परमाणुका जैसा कार्य होता है इस तरह यह शब्द कारणगुणपूर्वक नहीं है। शब्द कारण गुण वाला नहीं है। जैसे इच्छा। इच्छा कारणगुणपूर्वक नहीं होती तो वह पृथ्वी आदिकका विशेष गुण नहीं कहलाया। तीसरा हेतु है कि यह समस्त द्रव्योंमें नहीं होता। जैसे कि इच्छा सम्पूर्ण आत्मामें नहीं होती इसी प्रकार यह शब्द भी समस्त आकाशमें नहीं होता। किस जगह हुआ, किस जगह यह शब्द न हुआ। अथवा हम जैसे अन्य पुरुषोंके द्वारा भी प्रत्यक्ष होनेपर भी अन्य पुरुषान्तरसे जो अत्यन्त दूरीपर खड़ा है प्रत्यक्ष नहीं होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह शब्द इस कारण यह पृथ्वी आदिकका विशेष गुण नहीं है तथा भेरी आदिक जो बाजे हैं वे आश्रयभूत हैं, उनकी जगहसे भी अन्य जगहमें शब्दोंकी उपलब्धि होती है, इस कारण ये पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नहीं हैं। यदि शब्द पृथ्वीका विशेष गुण होता तो बाजे तो पृथ्वी तत्त्व हैं। तो जैसे रूप पृथ्वीका विशेष गुण है तो रूप पृथवी में ही तो पाया जा रहा, पृथवीको छोड़कर अन्यत्र तो नही पाया जाता। बाजा कहीं बज रहा है, शब्द है कहीं अन्यत्र। शब्द यदि पृथवीका विशेष गुण होता तो जैसे पृथवीके विशेष गुण, उन्हें जो कोई देखे सभीको दीख जायेंगे। दूरसे देखें तो दूरसे भी दीखते हैं। जब वह जिस अन्य पुरुषोंके द्वारा दिख सकने वाली चीज है और फिर वह दूसरेको दिखे ना, तो इसके मायने है कि वह उसका गुण नही है। पृथवीमें रूप दिखता है, दूरसे देखें तो दिखता है, पाससे देखें तो दिखता है। स्पष्ट देखें तो दिखता है, अस्पष्ट देखें तो दिखता है, लेकिन शब्दकी बात ऐसी नही है। शब्द यदि पृथवीका गुण होता तो जो भी पास होता अथवा दूर होता, जिसके सामने वह पृथवी है तो उसे भी शब्दका ज्ञान हो जाना चाहिए, पर होता नही। शब्द यदि पृथवीका गुण होता तो जितनी पृथवी है, सारी पृथवीके वे गुण आ जाने चाहिएँ, सबमें शब्द समाना चाहिए, पर पूरे द्रव्यमें तो वे शब्द आते नही। इस कारणसे सिद्ध है कि स्पर्श आदि परमाणुवोंका अथवा कार्यद्रव्योंका यह गुण नही है। पृथवी आदिकमें जैसे गुण पाये जाते हैं उनसे शब्द गुण विपरीत ही है।

आत्माका गुण भी न होनेसे शब्दके आकाश गुणत्वके समर्थनकी शंका

शब्द आत्माका भी विशेष गुण नही है, क्योंकि आत्मा तो अहं शब्दवान है। मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूं इस प्रकार जिसमें अहं प्रत्यय हुआ करता है उसीसे तो जाना जाता है कि यह मैं आत्मा हूँ, पर अहंकारसे रहित है शब्द। जैसे मैं सुखी हूं, दुखी हूं, यह ज्ञान होता है, तो इससे सिद्ध है कि आत्माका गुण सुख-दुःख है, लेकिन मैं शब्दवान हूँ, ऐसा तो कभी भी ज्ञात नही होता। इस तरह यह शब्द भी आत्माका विशेष गुण नही कहला सकता। दूसरे आत्माका गुण होता तो बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष न हो सकता था शब्द। देखो ! बाह्य इन्द्रिय कर्ण है और उसके द्वारा शब्दका प्रत्यक्ष होता है, आत्माका विशेष गुण होता तो बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा प्रत्यक्ष न हो सकता था क्योंकि आत्मा तो अन्तस्तत्त्व है। सुख-दुःखादिक किसी भी गुणका बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष नही हुआ करता। दूसरी बात यह है कि आत्माका गुण होता शब्द तो उस ही आत्माको शब्दका ज्ञान होता जिस आत्माका गुण होता। अन्य आत्माओंके द्वारा तो वह ग्राह्य नही होता, लेकिन शब्दको सभी आत्मा, सभी जीव सुनते हैं, जानते है, एक ही शब्दको सभी आत्मा जानते हैं। तो जब आत्मामें सुख पैदा हो तो उस सुखको दूसरा तो नही जानता, तो आत्मान्तरके द्वारा शब्द ग्राह्य है इस कारण भी शब्द आत्माका विशेष गुण नही है, क्योंकि जो आत्माके गुण होते हैं—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष आदिक ये सब इन हेतुवोंसे उल्टे हैं॥ ये आत्मान्तरके द्वारा

Version 1

ग्राह्य नही हैं. बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत नही हैं। अहङ्कार भावसे ये जाने जाते हैं इस कारण शब्द आत्माका विशेषगुण नही, आकाशका गुण जचता है।

मन, दिशा, काल आदिका भी गुण न होनेसे शब्दके आकाश गुणत्व के समर्थनकी शंका—शब्द मनका गुण भी नही है, क्योंकि हम जैसे अल्पज्ञोंके द्वारा प्रत्यक्ष हुआ करता है शब्द यदि मन आत्माका गुण होता तो हम लोगोंके द्वारा वह प्रत्यक्षमें न आ सकता था रूपादिककी तरह। जैसे रूपादिक मनके गुण नहीं हैं तो हम लोगोंको प्रत्यक्ष हो जाता है तो शब्द मनका भी गुण नही है। इसी प्रकार शब्द दिशा और कालका भी विशेष गुण नही है क्योकि दिशाओंका काम और है, कालका काम और है। दिशायें पूर्व पश्चिम आदिक ज्ञानका कारण हैं और काल पदार्थके परिणमनका कारण है, ये शब्दके गुण नही हो सकते। तो जब शब्द पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, दिशा, काल, आत्मा, मन इन ८ द्रव्योंका गुण न हो सका और है यह गुण तो पारिषेष्य न्यायसे यह सिद्ध हुआ कि इस गुणका आश्रयभूत आकाश है और यह आकाशका ही गुण है। अब वह आकाश एक है क्योंकि शब्द लिङ्गकी अविशेषता है अर्थात् शब्द ही इस आकाशका लिङ्ग है, पहिचान है, अन्य कोई इसकी पहिचान नही है। आकाश द्रव्यका परिचय हमको किस तरह प्राप्त हो तो उसका कारण है केवल शब्द लिङ्ग। तो शब्द लिङ्गकी अविशेषता होनेसे और विशेष लिङ्गका अभाव होनेसे वह आकाश एक है। तथा वह आकाश व्यापक है. क्योंकि आकाश सब जगह उपलभ्य मान गुण वाला है अर्थात् जहाँ देखो तहाँ ही शब्द लिङ्ग आकाश पाया जाता है तथा इसका दूसरा हेतु है नित्यपना होनेपर हम जैसे पुरुषोंके द्वारा उपलभ्यमान गुण अधिष्ठान है, आश्रय है इससे सिद्ध है कि वह आकाश व्यापक एक ही है। तो यों आकाश नित्य हुआ, एक हुआ, व्यापक हुआ और शब्द गुण वाला हुआ। शब्दका आधारभूत यह आकाश द्रव्य नित्य है, क्योंकि सामान्य विशेषवान होनेपर भी यह अनाश्रित है, अर्थात् आकाश किसीके आश्रयभूत नही है, जैसे कि आत्मा। वह सामान्यविशेषवान है और फिर भी अनाश्रित है, किसीके आधारमें नहीं है। तो जैसे आत्मा नित्य है इसी प्रकार आकाश भी नित्य है। यह आकाश अनाश्रित है। शब्दका आधारभूत जो भी द्रव्य है वह है आकाश वह शब्दाधिकरण आकाश द्रव्य अनाश्रित है, क्योंकि गुणवान होनेपर भी स्पर्शवान नहीं है। गुणवान हो, और जिसमें स्पर्श न पाया जाय वह अनाश्रित ही कहलाता। जैसे—आत्मा गुणवान तो है पर स्पर्शवान नही है तो वह अनाश्रित हुआ इसी प्रकार आकाश भी गुणवान तो है पर स्पर्शवान नही है इस कारण वह भी अनाश्रित हुआ और, आकाशमें द्रव्यत्व है अर्थात् आकाश कोई वास्तविक द्रव्य सत् है क्योंकि समवायवत्त्व न होनेपर यह अनाश्रित है, इस कारण इसमें द्रव्यपना है। इस तरह शंकाकारने आकाश द्रव्यकी सिद्धि की है।

शब्दके आकाश गुणत्वका निराकरण—अब उसके उत्तरमें कहते हैं कि

तुम आकाशको जो शब्दोंका आश्रय बताते हो और उसमें गुणत्व हेतु देते हो अर्थात् शब्द आकाशके आश्रय हैं, क्योंकि शब्द गुण है और शब्द गुणका कोई आश्रय होना चाहिए। तो शब्द गुणका कोई आश्रय सिद्ध कर रहे हो सो सामान्यसे आश्रयपना बताते हो कि शब्द किसी न किसीके आश्रय है या नित्य एक अमूर्त विभु द्रव्यके आश्रयपना बताते हो याने शब्द किसी न किसीके आश्रय है, मूल चर्चा तो यह है। अब किसीके आश्रय है, तो किसीके आश्रय है इतना ही सिद्ध करना चाहते या शब्द नित्य एक अमूर्त व्यापक द्रव्यके आश्रय है ऐसा सिद्ध करना चाहते। यदि शब्दोंका सामान्यसे किसीके आश्रित है ऐसा सिद्ध करना चाहते हो तो यह बात सिद्ध साध्य है। शब्द है ही किसीके आश्रय। लेकिन वह है पुद्गलके आश्रय। क्योंकि, शब्द पुद्गलकी क्रिया है। तो अनुमानसे यह सिद्ध न हो पायगा कि शब्द आकाशके आश्रय है किन्तु यह सिद्ध होगा कि शब्द किसीके आश्रय है, और, फिर युक्ति अनुमान आदिकसे वहाँ यह समझा जायगा कि यह शब्द पुद्गलके आश्रित है। दूसरा पक्ष लोगे कि यह शब्द नित्य एक अमूर्त व्यापक द्रव्यके आश्रय है तो तुम्हारे हेतुमें संदिग्ध दोष, विपक्ष दोष, अनैकान्तिक दोष होगा, क्योंकि आकाश द्रव्यके आश्रय है यह शब्द, ऐसा सिद्ध करने के लिए तुम्हें कोई दृष्टान्त न मिलेगा। तो आपका हेतु साध्यविकल बन गया, अर्थात् उसकी उपमा देनेके लिए तुम्हें लोकमें कोई पदार्थ नही मिल सकता इससे शब्द आकाश का गुण नही है किन्तु यह पुद्गल द्रव्यका कार्य है।

शब्दके पुद्गल द्रव्यकार्यत्वकी सिद्धि—मोटेरूपसे भी परखलो—शब्द किसी दूसरे पदार्थके द्वारा छिड़ जाता है, शब्द कोई कमरेमें बोल रहा हो, किवाड़ सब बंद हों तो बाहर वाला व्यक्ति सुन भी नही सकता। इससे सिद्ध है कि शब्द पौद्गलिक है। यदि आकाशके गुण होते शब्द तो आकाश अमूर्त है तो शब्द भी अमूर्त होते और, अमूर्त होनेके नाते फिर वे शब्द किसी भी पदार्थसे भिड़ नही सकते थे। तो चूँकि शब्द पदार्थोंसे छिड़ भिड़ जाते हैं इस कारणसे शब्द आकाशके गुण नही हैं। वे मूर्तिक पुद्गलके ही गुण हैं। शब्द हमेशा या तो किसी पुद्गलके संयोगसे उत्पन्न होता या पुद्गलके वियोगसे उत्पन्न होता है। जैसे मुखसे जो वचन निकलते हैं वे जिह्वा, तालु आदिकके संयोगसे और कभी वियोगसे भी होते हैं इसी तरह कभी पृथ्वीके संयोग से और कभी वियोगसे शब्द उत्पन्न होते हैं तो वे जोशब्द उत्पन्न हुए सो पृथ्वी आदिक के संयोग वियोगसे हुए। एक तो यह बात है साथ ह' उस संयोग वियोगके समयमें आकाशमें सर्वत्र भरे हुए एक भाषा वर्गणा जातिके ही स्कंध हैं। उन स्कंधोंमें शब्दत्व की उत्पत्ति होती है इस कारण शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्शवान पुद्गलके ही कार्य हैं और शब्द स्वयं पर्याय है। शब्द गुण जो होते हैं वे शाश्वत हुआ करते हैं, किन्तु शब्द उत्पन्न होते और नष्ट होते। उत्पन्न हो जाना, नष्ट हो जाना यह तो स्वयं शंकाकार ने स्वीकार किया है। तो जो जो भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते वे गुण नही हैं, किन्तु वे किसीके कार्य हैं। तो शब्द भाषावर्गणा जातिके स्कंधोंके कार्य हैं और

Version 1

पुद्गलके भी गुण नही हैं। तो जब शब्द आकाशका गुण सिद्ध नही हो सकता तो शब्द लिङ्गवाले आकाशका अस्तित्व नही है।

स्पर्श आदिका आश्रय होनेसे शब्दके द्रव्यत्वको सिद्धि—शंकाकारने यह कहा था कि शब्द गुण है क्योंकि 'प्रतिसाध्यमान द्रव्यकर्म भाव होनेपर सत्तासे सम्बंधित होनेसे। इस अनुमानके हेतुमें प्रतिवध्यमान कर्मता तो है अर्थात् शब्द कर्म नही है परंतु प्रतिषिध्यमान द्रव्यत्व नही है, क्योंकि शब्द द्रव्य है। उसका अनुमान है, शब्द द्रव्य है क्योंकि स्पर्शका आश्रय होनेसे अल्पत्व और महत्त्व परिमाणका आश्रय होनेसे, संख्या और संयोग गुणका आश्रय होनेसे। जो जो पदार्थ स्पर्शके आश्रय हैं, अल्पत्व, महत्त्व परिमाणके आश्रय हैं संख्या संयोगके आश्रय हैं, वे द्रव्य होते हैं जैसे बेर, आँवला, बेल आदिक। इसमें स्पर्श भी है, अल्प महत्त्वका परिमाण भी है, इनकी संख्यायें भी होती हैं और इनका संयोग भी होता है। तो इसी तरह शब्द भी स्पर्शवान है, शब्दमें अल्पत्व महत्त्वका परिमाण है। शब्दोंमें संख्या भी है और शब्द संयोग गुणका आश्रय भी करता है, इस कारण शब्द द्रव्य है। शब्दकी स्पर्शाश्रयता असिद्ध नही है अर्थात् शब्द स्पर्शवान है उसका अनुमान प्रयोग भी है। शब्द स्पर्शवान है क्योंकि अपनेसे सम्बद्ध पदार्थान्तरके अवगाहका हेतु होनेसे, मुद्गर आदिककी तरह। जैसे—मुद्गर डंडे आदिक ये स्पर्शवान हैं और अपनेसे सम्बद्ध अन्य पदार्थके अभिघातका कारण भी बनता है तो शब्दमें सम्बद्ध पदार्थान्तरके अभिघातका कारणपना है यह बात भली भाँति विदित है। जब घंटा आदिकके शब्द होते हैं तो उन ध्वनियोंके सम्बंधसे कान आदिकमें अभिघात पहुचता है, और, कभी तेज अभिघात हो जाय तो उसके कार्यभूत बहिरापन आदिक भी बन जाते हैं। या जिस समय घंटा आदिककी तेज ध्वनियाँ कानोंको बाधितकर रही हो तो उस समय अन्य बातोंके सुननेमें कान बहिरे हो जाते हैं। शब्द अगर अस्पर्शवान होता तो यह कुछ हो नही सकता था। अस्पर्शवान काल आदिकसे शब्दका सम्बन्ध नही देखा गया है। यह अस्पर्शवान शब्द काल आदिकसे बिल्कुल प्रथक् हैं।

शब्द द्वारा अभिघात व शब्दका निषेध होनेसे शब्दके स्पर्शवत्त्वकी सिद्धि—शंङ्काकार कहता है कि घण्टा आदिकके शब्दोंके होनेपर जो श्रोत्रको अभिघात पहुंचा, वह शब्दकी वजहसे नही, किन्तु शब्दके साथ रहने वाली जो वायु है उस वायुके कारण अभिघात हुआ है। उत्तर देते हैं कि यह न कहना चाहिए, क्योंकि वायु का तो शब्दके अभिसम्बन्धके साथ अन्वय व्यतिरेकपना है अर्थात् शब्द होता है, वहाँ वायु बनती है। अभिघात जो होता है वह वायुसे नही हुआ किन्तु शब्दसे हुआ। शब्द के साथ वायु भी है इस कारण उस अभिघातमें कुछ भले ही सहयोग हो पर वायुका अभिघात और तरहका होता शब्दका अभिघात और तरह का होता। तो शब्दका अभिसंबंधित है वायु तो भी यदि वायुका अभिघात मानते हो, हो तो रहा है शब्दका अभि-

http://www.jainkosh.org

घात मगर मानते हो वायुसे याने अन्यसे अभिघात यहाँ और अन्य कोई हेतुकी कल्पना करे तो हम कहते हैं कि वायुमें भी क्या विश्वास रहा ? हम कैसे दृढ़ता से कह सकते हैं कि वह अभिघात वायुके द्वारा हुआ? हम ऐसा कह सकते हैं कि वायु आदिकके सम्बन्धसे भी अभिघात नहीं हुआ, किन्तु कोई अन्य ही अनिर्वचनीय तत्व है जिसके कारण अभिघात हुआ। और यों कह देनेपर तो किसी भी अनुमानमें हेतुका कोई अवस्थान न रहेगा। यदि कहोगे कि शब्द तो गुण है और गुण होनेसे चूंकि गुण निर्गुण हुआ करता है अतः शब्दमें फिर कोई गुण न रहा तब स्पर्शका अभाव होनेसे वह शब्द दूसरे के अभिघात का कारण नहीं हो सकता। ऐसा मानने पर चक्रक प्रसंग हो गया। किस प्रकार कि गुणत्व तो तब सिद्ध हो जब शब्दमें द्रव्यत्व सिद्ध न हो। और शब्दमें अद्रव्यत्व सिद्ध तब हो जब शब्द अस्पर्शवान सिद्ध हो और शब्द अस्पर्शवान तब सिद्ध हो जब शब्दमें गुणपना सिद्ध हो, तो इस तरहसे चक्रक दोष हो गया। इतरेतरा दोषमें तो दो से सम्बन्ध रहता है किन्तु चक्रक में तीन से सम्बन्ध रहता है अथवा कहीं और अधिकसे भी सम्बन्ध रहता है, शब्द स्पर्शवान है यह भली भाँति अनुभवसे भी सिद्ध है क्योंकि स्पर्शवान पदार्थसे ही अभिघात हुआ करता है, जब शब्द जोरसे बोले जाते हैं तो कानमें ही क्या बल्कि किसी अंगमें उसका स्पर्श और अभिघात प्रतीत हुआ करता है। स्पर्शवान पदार्थवान पदार्थ भी दूसरे का अभिघात करता है और दूसरे पदार्थ के द्वारा शब्दका भी अभिघात होता है। जिस ओर से शब्द आ रहा हो उस की खिलाफ दिशा कि ओरसे यदि वायु चल रही है तो शब्द फिर सुनाई नही देता। शब्दकी गति रुक जाती है अथवा लौट जाती है। तो शब्द अभिघातके योग्य है और शब्द अभिघात करता है ये दोनों बातें सिद्ध होती हैं। प्रतिघात करने वाली भींट आदिकका अभिघात बराबर देखा जा रहा है। मूर्त पदार्थसे अमूर्तका अभिघात नही हुआ करता। मूर्तसे मूर्तका ही अभिघात होता है। तो भींट आदिकसे जो शब्द रोके गए या बड़े तीव्र शब्दोंसे कानोंमें या अन्य स्थानपर जो अभिघात हुआ उससे सिद्ध है कि शब्द मूर्त पदार्थ है और जब शब्द मूर्त द्रव्य सिद्ध हो जाता है तब उसे आकाशका गुण नही कह सकते। तो यह शब्द स्पर्शका आश्रयभूत है यह बात सिद्ध है।

अल्पत्व महत्त्व परिमाषका आश्रय होनेसे शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धि— शब्दमें अल्पत्व और महत्त्वका परिमाण भी पाया जाता है क्योंकि बेर, बेल आदिक की तरह शब्दमें भी यह शब्द अल्प है, यह शब्द महान है इस प्रकारकी प्रतीति पाई जाती है। शंकाकार कहता है कि अल्प शब्द मंद है आदिक प्रतीतिसे मन्दत्व ही धर्म ग्रहणमें आता है। और महान शब्द तीव्र है। वहाँ उस प्रतीतिमें तीव्रत्व ही ग्रहणमें आता है, पर परिमाण नही आता। परिमाणमें तो यह इतना है, ऐसी इयत्ता रहती है, पर शब्दमें इयत्ता तो नही होती। ऐसी तो कोई प्रमाणकी इयत्ता नही करता जैसी कि बेल आदिक पदार्थोंमें परिमाणकी इयत्ता हो जाती है। यह इतना लम्बा चौड़ा फल है आदिक प्रमाण जैसे बनता है इस तरह शब्दके भेद होनेपर और तीव्रता

Version 1

होनेपर परिमाण नही बनता। मंदता और तीव्रता यह तो आवान्तर जाति विशेष है क्योंकि यह स्वयं गुण में रहा करता है शब्दत्वकी तरह। २४ प्रकारके गुणोंमें एक परिमाण नामका भी गुण है और तीव्र होना, मंद होना, महान होना यह परिमाण गुण में आता है। तो परिमाण होनेसे यह गुण रूप ही बना इसको द्रव्य कैसे कह सकते ? उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। शब्दमें गुणपना किसी भी प्रकार सिद्ध नही है और न उस शब्द गुण में मंदत्व जाति मात्र रहती है ऐसी सिद्धि कर सकेंगे। यदि कहीं कि हाँ, शब्दमें मंदत्व आदिक जाति है अर्थात् शब्द स्वयं गुण है और गुण होनेके कारण उसमें आवान्तर यह मंदत्व तीव्रत्व जाति पड़ी है क्योंकि शब्दत्व होनेसे अर्थात् शब्द जो है वह द्रव्य नही है। तो पूछा जायगा वहाँ कि शब्दमें गुणत्व कैसे सिद्ध है ? जिससे कि शब्द गुणमें रहने वाली मंदता आदिको जाति सिद्ध करो। यदि कहोगे कि शब्द द्रव्य नही है इससे गुणत्व ही सिद्ध होगा तो बताओ शब्द द्रव्य नही है यह कैसे समझा ? तो यदि उत्तर देंगे कि वह अल्पत्व और महत्वका आधार नही है। तो यह पूछा जायगा कि यह कैसे जाना कि शब्द अल्पत्व और महत्व परिमाणका आधारभूत नही है ? यदि उत्तर देंगे कि गुण होनेसे। तब इसमें चक्रक दोष होगया अर्थात् आवान्तर भागके साथ प्रश्नोत्तरमें वह ही प्रश्न और वही उत्तर आता जायगा। तो इससे शब्द गुण नही है किन्तु शब्द द्रव्य है।

परिमाणाश्रयत्व होनेसे शब्दको द्रव्य सिद्ध करनेके प्रसङ्गमें कुछ प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि शब्दमें इयत्ताका निश्चय तो नही हो पाता, जैसा कि अन्य द्रव्यमें होता। पृथ्वी, चौकी आदिक जो पदार्थ हैं उनमें परिमाणका अवधारण होता है। वह कितना लम्बा चौड़ा है पर शब्दमें तो नही होता इससे सिद्ध है कि शब्द द्रव्य नही है, गुण है। उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका युक्त नही है इस हेतुमें तो वायुके साथ अनैकान्तिक दोष होगा। वायुका क्या परिणमन करोगे ? जैसे बेर बेल आदिकका परिमाण किया जाता इसी तरह वायुमें भी इयत्ता तो निश्चित् नही की जाती। यदि कहो कि वायु तो प्रत्यक्षभूत नही है इस कारणसे उसकी इयत्ता होनेपर भी निश्चित् नही की जा सकती। पर शब्द तो प्रत्यक्षभूत है और फिर भी उसकी इयत्ता नही बन रही है तो इससे सिद्ध है कि शब्दमें परिमाण नही है। और, परिमाण नही है तो शब्द द्रव्य न रहा। शब्द गुण ही कहलायेगा। उत्तर देते हैं कि यह भी बात तुम्हारी अयुक्त है, गुण और गुणीमें कथंचित् एकत्व होने पर गुणके प्रतिभास होनेपर गुणीका भी प्रतिभास सम्भव है। यदि कहो कि वायुमें रहने वाला स्पर्श विशेष ही प्रत्यक्ष है, वायु प्रत्यक्ष नही है तो फिर यहाँ शीतस्पर्श है अथवा उष्णता है यह प्रतीति ही हो, वायुकी प्रतीति नही हो। याने जब वायुमें स्पर्श विशेषका प्रत्यक्ष होता है तो लोग वहां यही अनुभव करें कि यहाँ शीतस्पर्श है और यहाँ उष्ण स्पर्श है, पर वायुकी प्रतीति नही करें, जैसे कि रूपको अवभासमान करने वाले ज्ञानमें रूपी वायु प्रतिभासमान होती हो सो तो बात नही। कथंचित् एकत्व होनेके कारण स्पर्श

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेष परिणामका ही काम वायु होनेसे फिर इसको प्रत्यक्षपना कैसे नही सिद्ध है ? अर्थात् वायु स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा गम्य है। देखो ! शब्दके साथ जो परिमोण लगा हुआ है यह इतना तीव्र शब्द है, यह इतना मंद शब्द है सो परिमाण भी लोगोंकी समझमें आता। कोई जब धीरेसे बोलता है तो कहते हैं कि जरा तेज बोलो ! और रेडियो आदिकमें भी शब्दकी मंदता और तीव्रताके यत्र भी होते हैं। तो इससे सिद्ध है कि शब्दमें परिमाण पड़ा हुआ है और जिसमें परिमाण हुआ करता है वह द्रव्य हुआ करता है। तो शब्द स्पर्शका भी आश्रयभूत है और अल्पत्व महत्व परिमाणका भी आश्रयभूत है, इस कारणसे शब्द द्रव्य है।

मूर्त शब्द कार्यकी मूर्त उपादानसे निष्पत्ति होनेसे शब्द लिंग आकाश द्रव्यकी असिदि्ध—यह शब्द जिस उपादानसे प्रकट होता है वह उपादान यद्यपि सूक्ष्म है, आँखोंसे दिखता नही है, पर उनका जो परिणमन है शब्द रूप कार्य है वह कार्य कर्ण इन्द्रियसे जाना जाता है। तो जिसका कार्य कर्ण इन्द्रियसे जाना गया, शब्द की स्थूलता समझी गई तो उसका कारणभूत जो भाषावर्गणा जातिका स्कंध है वह भी मूर्तिक है। तो भाषावर्गणा जातिके पुद्गलकी शब्दनामक द्रव्य पर्यायकी उत्पत्ति होती है। शब्द आकाशका गुण नही है जिससे कि आकाशको नित्य एक व्यापी निरंश सिद्ध किया जाय। आकाश द्रव्य जो है वह समस्त पदार्थोंके अवगाहन देनेका कारण भूत है तथा आकाशमें प्रतिसमय षड्गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन भी चलता रहता है, लेकिन वह शब्द गुण वाला नही है। आकाश अमूर्त है, मूर्तिक शब्दका उपादान मूर्तिक पदार्थ ही हो सकेगा। अमूर्त आकाश नही हो सकता। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें जिस प्रकारके स्वरूपका आकाश माना गया है उस स्वरूपका आकाश सिद्ध नही होता वह आकाश शब्द गुणसे रहित है इस कारण द्रव्योंके मंतव्यमें जैसे—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों स्वतंत्र जातिके पदार्थ सिद्ध नही होते इसी प्रकार आकाश नामक द्रव्य भी सिद्ध नही होता।

परिमाणाश्रयत्व होनेसे शब्दके द्रव्यवत्की सिद्धिका प्रकरण—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि वैशेषिक सिद्धान्तेमें पदार्थ ६ प्रकारके माने गए हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। जिनमेंसे द्रव्यका प्रसंग चल रहा है। शंकाकार ने द्रव्य ९ प्रकारके माने हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश काल, दिशा आत्मा और मन, जिनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार द्रव्योंके सम्बन्धमें वर्णन किया गया कि ये चरों एक पुद्गल जातिमें आते हैं, इनकी भिन्न जातियां नही बनती। अब आकाश द्रव्यका प्रसंग चल रहा है। विशेषवादमें आकाशको नित्य निरंश और शब्दलिङ्ग माना है। तो इस समय आकाशकी नित्यताके सम्बन्धमें अधिक नही कहा जा रहा क्योंकि आकाश द्रव्य नित्यानित्यात्मक है, पर उसमें समझनेकी मुख्यता नित्य रूपसे ही है और, निरंशका अर्थ अखण्ड किया जाय तो आकाश अखण्ड है, हाँ आकाशका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्दलिङ्गत्व अवश्यव मीमांस्य है। सो शब्दलिङ्गके सम्बन्धमें चर्चा चल रही है। शंकाकारका कहना यह है कि आकाशका अस्तित्व शब्दलिङ्गसे ही जाना गया है। अर्थात् शब्द गुण है और उसका आश्रयभूत जो द्रव्य है वह आकाश द्रव्य है। उसके निराकरणमें यहां यह सिद्ध किया जा रहा है कि शब्द स्वतंत्र द्रव्य है, गुण नहीं है। शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धिमें यह हेतु कहा गया है कि शब्द चूँकि स्पर्शका आश्रय है इस कारणसे शब्द द्रव्य है। दूसरा हेतु कहा जा रहा है कि शब्द चूँकि अल्पत्व महत्त्व परिमाणका आश्रयभूत है इस कारण शब्द द्रव्य है। अन्य भी हेतु दिया जायगा, पर इस समय इस हेतुपर विचार चल रहा है। शब्द अल्प और महान हुआ करते हैं। तो जो परिमाणका आश्रयभूत है वह द्रव्य होता जैसे बेर, आंवला, केला वगैरह। ये परिमाणके आश्रयभूत हैं। छोटा बड़ा इस तरहसे उनमें परिमाणका व्यवहार होता है तो वे द्रव्य हैं इसी प्रकार शब्दमें भी परिमाण पाया जाता है। यह महान शब्द है यह अल्प शब्द है। तो जिसमें इयत्ता पायी जाय, परिमाण पाया जाय वह द्रव्य है।

शब्दमें अल्पत्व महत्त्व परिमाणका अवधारण—यहाँ इयत्ताके विरोधमें शंकाकार अपनी चर्चायें रख रहा है, उस सम्बन्धमें शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि इयत्ता परिमाणसे भिन्न है या अभिन्न? यदि भिन्न है तो यह कहना कैसे युक्त है कि इयत्ताका अनवधारण होनेसे परिमाणका अनवधारण है अर्थात् इयत्ताका पता न चलनेसे, इयत्ताकी सिद्धि न होनेसे परिमाणकी सिद्धि नहीं होती, यह बात कही कैसे जा सकती, क्योंकि इयत्ता तो शंकाकार मान रहा है भिन्न, परिमाणको मान रहा है भिन्न, तो भिन्न-भिन्न दो वस्तुवोंमें यह सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता कि इसका निश्चय न हो तो उस दूसरे भिन्नका भी निश्चय न होगा। जैसे—घट और पट ये भिन्न-भिन्न हैं। तो यह तो नहीं कह सकते कि घटका निर्णय न होनेपर पटका अभाव हो जाता है। न घट जाना तो क्या कपड़ेका अभाव हो जायगा? तो भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें यह नहीं कहा जा सकता कि इसका अनवधारण होनेपर दूसरेका अभाव हो गया, सो जब यहाँ इयत्ताको और परमाणुको भिन्न-भिन्न मान लिया तो इयत्ताके अनिश्चयमें परमाणुका अभाव नहीं कह सकते। यदि कहो कि इतत्ता परिमाणरूप है, परिमाणसे भिन्न नहीं है तो जब इयत्ता और परिमाण एक ही बात हो गई तो ऐसा जो कहा कि इयत्ताके अनिश्चयमें परिमाण नहीं रहता तो उसका अर्थ यह बन बैठा कि परिमाणके अनिश्चयमें परिमाण नहीं रहता, क्योंकि अब इयत्ता और परिमाण एक हो जानेसे पर्यायवाची ही शब्द कहलायगा। शंकाकार कहता है कि अल्पत्व और महत्त्वके ज्ञान होनेसे हम शब्दमें परिमाणका अवधारण करते हैं। तो उत्तरमें यही बात है कि स्वरूपकी बात मान ली गयी। फिर यह क्यों कहते हो कि परिमाणका अनिश्चय है? अरे! जिनमें अल्पत्व महत्त्वका ज्ञान हो रहा है बस वही तो परिमाणका निश्चय कहलाता है। यदि अल्पत्व महत्त्वका ज्ञान होनेपर भी परिमाणका अनिश्चय मानोगे तो बेर, आंवला आदिकमें भी परिमाणका अनिश्चय हो जायगा,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि अल्पत्व महत्वका ज्ञान होनेपर भी अब शब्दमें वस्तुत: परिमाण नही मान रहे तो वास्तवमें शब्द अल्प और महान होता है। और, जो अल्प और महान होते, जिन में परिमाण पाया जाता वे द्रव्य कहलाते हैं।

अल्पत्व महत्त्वके कारण शब्दमें अल्पत्व महत्वका व्यवहार—शङ्काकार कहता है कि शब्द स्वयं अल्प और महान नही है, किन्तु शब्दमें मंदता और तीव्रता है जैसे—लोग भी बोलते हैं कि यह तेज शब्द है, यह मंद शब्द है, तो मंदता और तीव्रताके सम्बन्धसे शब्दमें अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान हुआ करता है। फिर यों भी लोग बोल देते कि वह बहुत बड़ा शब्द था, अजी ! छोटा मामूली शब्द था, तो असल में उसमें मदता और तीव्रता है। मंदता और तीव्रताके सम्बन्धमें शब्दमें अल्पत्व और महत्वका ज्ञान किया जाता है। उत्तरमें कहते हैं कि यदि मंदत्व और तीव्रत्वके संबंध से ही अल्पत्व और महत्व होता है तो देखिये ! नर्मदा नदीका जल कितना मंद बहता है। तो मंदताका जहां सम्बन्ध हो उसे मानते हैं आप अल्प और तीव्रताका जहाँ संबंध हो उसे मानते हैं आप महान, तो नर्मदा नदीके जलमें यह व्यवहार होना चाहिए कि यह जल अल्प है क्योंकि इसमें मंदता पाई जा रही। नर्मदा नदीका जल तो बहुत धीरे मन्द गतिसे बहता है, गम्भीर होनेसे। तथा शंकाकारने तीव्रताके सम्बन्धसे महान माना। तब फिर उस छोटी नदीके जलमें उसके जलको महान जल बोलना चाहिए कि इसमें जल महान है, क्योंकि वह तीव्र गतिसे बह रहा है। पर ऐसा तो नही हैं, महान जल तो नर्मदा नदीमें है और छोटी नदीमें जल अल्प है। इस कारण अल्पत्व और महत्वका जो ज्ञान हो रहा है मंदता और तीव्रताके कारणसे नही, किन्तु जो अल्प है वह अल्प है, जो महान है सो महान है। अल्पत्व और महत्व परिमाणके कारण ही अल्प और महानका ज्ञान होता है, मंदता और तीव्रताके कारणसे नही। अन्यथा अर्थात् यदि अल्पत्व और महत्वका प्रत्यय मंदता और तीव्रताके कारणसे हुआ तो बेर आँवला आदिकमें भी मंदता और तीव्रताके कारणसे ही अल्प महान व्यवहार करना चाहिए। शंकाकार कहता है कि भाई ! बेर आँवले आदिकमें तो द्रव्यत्व होने के कारण अल्प और महान परिमाण सम्भव है इस कारण बेर और आंवलेमें जो अल्पत्व और महत्वका बोध होता है वह परिमाणके कारणसे होता है, अल्पत्व महत्व के कारणसे होता है, पर शब्द तो द्रव्य नहीं है, इसलिये शब्दमें जो अल्पत्व और महत्वका बोध होता है वह मंदता और तीव्रताके कारणसे होता है। उत्तरमें कहते हैं कि शब्दमें भी द्रव्यत्व होनेसे अल्पत्व और महत्वके कारणसे ही अल्प और महानका ज्ञान हुआ करता है क्योंकि जैसे बेर आंवला द्रव्य है। अतएव अल्प और महानका परिमाण उसमें बनता है। इसी प्रकार शब्द भी द्रव्य है और इस कारण इसमें अल्प और महानका परिमाण बनता है।

शब्दोंमें कारणगत अल्पत्व महत्त्वके उपचारकी असिद्धि—अब शंका-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार कहता है कि शब्द स्वयं अल्प और महान नहीं हुआ करते, किन्तु कारणमें पाया जाने वाला जो अल्पत्व महत्त्व परिणाम है उसको शब्दोमें उपचार किया जाता है याने शब्दका कारण है आकाश और उस अल्पत्व महत्त्वमें आकाश पाया जाता। यह एक हाथका आकाश है, यह १० हाथका आकाश है। तो आकाशमें अल्पत्व और महत्त्वका परिणाम है और आकाशका गुण अथवा कार्य है शब्द, सो आकाशके गुणका उपचार शब्दोमें किया गया है। इस ही कारण शब्दमें अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान हुआ करता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो आकाशके गुणके ही उपचार से बेर और आवलेमें भी अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान किया जाना चाहिए, क्योंकि आकाश सब जगह है और उसीमें बेर आँवले पड़े हैं तो आकाशके अल्पत्व महत्त्वके परिणाके ही कारण बेर, आँवले आदिकमें अल्पत्व महत्त्वका उपचार कीजिए फिर? यदि कहो कि बेर आँवला आकाश द्रव्यसे अलग चीज है और बेर आँवलेमें स्वयं परिमाण भरा है उससे उसमें अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान होता है तो यही बात शब्दके सम्बन्धमें है कि शब्द आकाशसे भिन्न द्रव्य है और उस शब्दमें स्वयं ही अल्पत्व महत्त्व पड़ा हुआ है उस परिमाणके कारण शब्दमें भी अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान होता है। तब यह सिद्ध हुआ ना कि शब्द परिमाणका आश्रय है, शब्दमें यह अल्प है यह महान है ऐसा परिमाण पाया जाता है और जो जो परिमाणके आश्रयभूत हों वे द्रव्य होते हैं, इस प्रकार शब्द द्रव्य कहलाते हैं।

संख्याश्रयत्व होनेसे शब्दमें द्रव्यकी सिद्धि—अब शब्दको द्रव्य सिद्ध करने के लिए तीसरा हेतु कहते हैं। शब्द द्रव्य है क्योंकि संख्याका आश्रय होनेसे। शब्दमें संख्या पायी जाती है एक शब्द, बहुत शब्द। इस प्रकार शब्दोंमें संख्यात्वकी प्रतीति होनेसे ये शब्द द्रव्य कहलाते घट आदिककी तरह। जैसे घटमें एक घट, दो घट, दस घट, यों संख्या पायी जाती है, तो जिस जिसमें संख्या पायी जाय वह द्रव्य कहलाता यों शब्द भी संख्याश्रय होनेके कारण द्रव्य है। शंकाकार कहता है कि शब्दमें स्वयं संख्या नहीं पड़ी है। शब्द संख्यावान नहीं है किन्तु उपचारसे शब्दमें संख्यात्त्वकी प्रतीति होती है। तो उत्तरमें शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि शब्दमें जो संख्याका उपचार किया जा रहा है वह कारणगत है या विशेषगत? यदि कहो कि शब्दके कारणभूत द्रव्यमें रहने वाली संख्याका उपचार शब्दमें किया जाता है तो शब्दके कारण हुए दो प्रकारके। एक समवायि कारण और एक कारण मात्र जिसे सीधे शब्दोंमें समझिये कि एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण यदि समवायि कारणगत संख्याका उपचार शब्दमें किया जाता है तो शब्दका समवायि कारण तो एक ही माना है शंकाकारने। क्या? आकाश, जिसे नित्य और निरंश कहा गया है तो शब्दका कारण तो एक है। तो सब शब्दोंमें एक ही शब्द है ऐसा उपचार होना चाहिए और ऐसा व्यवहार होना चाहिए, क्योंकि शब्दका कारण माना है शंकाकारने आकाश और आकाश है एक, पर शब्दमें एकका व्यपदेश हो ऐसा तो नहीं है। प्रत्यक्ष सिद्ध है कि शब्द अनेक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

होते हैं यदि कहो कि कारण मात्रकी संख्याका उपचार शब्दोंमें किया गया है तो सुनो शब्दोंके निमित्त कारण एक नही है अनेक हैं। जिन-जिन पदार्थोंका संयोग वियोग है, कितनी तरहके बाजे हैं, कितनी तरहके दुनियामें पदार्थ हैं उनके संयोग वियोगसे शब्द उत्पन्न होते हैं, सो शब्दके निमित्त कारणोंकी संख्याका उपचार शब्दमें माना जाय तो हमेशा बहुत हैं शब्द ऐसा व्यपदेश होना चाहिए कभी एक दो शब्दोंका व्यवहार होना ही न चाहिए, क्योंकि अब शब्दके निमित्त कारणोंकी संख्यासे शब्दकी संख्या मानी जा रही है। तो यह भी बात ठीक नही बैठती कि शब्दके निमित्त आदिक कारणोंकी संख्याका उपचार शब्दमें है। यदि कहो कि शब्द वाच्य विषयोंकी संख्याका उपचार शब्दमें किया जाता अर्थात् शब्दके विषयभूत, वाच्यभूत जितने पदार्थ हैं जैसे घट पट आदिक उन सब पदार्थोंकी संख्याका उपचार शब्दमें किया जाता, ऐसा माननेपर तो बड़ी विडम्बना बनेगी। देखो-गगन, आकाश, व्योम, नभ आदिक शब्द एक आकाशके वाची हैं, तो एक ही आकाश वाच्य होनेसे फिर ये सारे शब्द एक ही रहने चाहिए बहुत न कहलाना चाहिए, लेकिन गगन आदिक शब्द हैं बहुत। तो यह भी नही कह सकते कि विषय संख्याका उपचार शब्दमें किया गया है। और, भी देखिये-एक गो शब्द है जो पशु आदिक बहुतसे अर्थोंका वाचक है, गो मायने वाणी, दिशा, पृथ्वी, जल, वाण, कितने ही वाच्य हैं, तो विषय बहुत होनेसे शब्द एक न रहेगा, फिर तो अनेक माने जाने चाहिए। इस कारण विषय संख्याके भेदसे भी आप शब्दोंकी संख्याका उपचार नही कर सकते, किन्तु शब्दोंमें स्वयं संख्या है। अतः संख्याका आश्रयभूत होनेसे शब्द द्रव्य है।

शब्दोंमें अनुपचरित संख्यावत्त्वकी सिद्धि—शकाकार कहता है कि जिस तरह विरोध न आये उस तरह संख्याका उपचार किया जाता है अर्थात् शब्द स्वयं संख्यावान तो नही है किन्तु शब्दका जैसे विरोध न आये उस तरह उपचार किया जाता है अथवा जैसे गो शब्द अनेक अर्थोंका वाचक है फिर भी वह एक कहलाता है। जैसे गो शब्द एक है, लेकिन वाच्य अनेक हैं और गगन, आकाश, व्योम आदिक शब्द अनेक हैं, लेकिन वाच्य है केवल एक आकाश फिर भी वे शब्द अनेक कहलाते हैं। तो जिस तरह विरोध न आये उस तरहसे संख्याका उपचार करना चाहिए। समाधान में कहते हैं कि यह बात यों युक्त नही है कि पदार्थ स्वयं संख्यावान नही होता तो अविरोधकी भी बात नही कर सकते। आधारमें पदार्थ तो संख्यावान होता नही और उसमें उपचारकी बात लगाये तो वहां अविरोध भी नही बन सकता। फिर दूसरी बात यह है कि उपचार कल्पना तो वहाँ की जाती है जहाँ साक्षात् बात न हो। विपरीत बातकी उपलब्धि करने वाला बाधक यदि मौजूद हो तो वहाँ उपचारकी कल्पना की जाती है। जैसे किसी पुरुषका नाम अग्नि रख दिया तो उस पुरुषमें अग्निका विरोध है। वह स्वयं अग्नि नही है, तब उसमें अग्निका उपचार किया जाता है। कोई पुरुष बहुत क्रोध करता है तो लोग कहते हैं ना, कि यह देखो आग बन रहा है।

तो पुरुषमें आगका विरोध है, वहाँ अग्नित्व है ही नही, तब उपचारकी बात की जाती है। जो साक्षात् ही हो उसमें उपचार ही क्या ? जैसे अग्निको कोई आग कहदे तो वहाँ उपचारका क्या प्रसङ्ग ? वह तो सीधा अग्निका वाचक कुछ हुआ ! जो स्वयं वैसा न हो और उसका फिर नाम लगावें तो उपचार निमित्त बनता है, पर एकत्व आदिक संख्यासे रहित शब्दकी उपलब्धि ही नही है फिर शब्दमें संख्याके उपचारकी बात क्या ? सीधा ही शब्द संख्यावान है ? एक शब्द, दो शब्द दस शब्द हैं अथवा इस निबन्धमें इतने अक्षर हैं, यों सब संख्या बराबर शब्दोंमें साक्षात् पायी जाती है। इसलिये शब्दमें संख्याके उपचारकी बात कहना युक्त नही है। यदि एकत्व आदि संख्या से रहित न होनेपर भी याने साक्षात् संख्यावान होनेपर भी उपचारकी कल्पना करे तो फिर दुनियामें कोई पदार्थ अनुपचरित नही रह सकता, सब उपचरित कहलायेंगे। इस कारण शब्द संख्याका आश्रयभूत है, इसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नही है। अर्थात् शब्द संख्यावान हैं और जो जो संख्यावान होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं। जैसे—घट पट आदिकमें संख्यायें चलती हैं—यह एक घट, ये दो घट, ये १० घट आदि। तो जिसमें संख्याका आश्रय हो वह द्रव्य कहलाता है। शब्दोंमें संख्यामयता पायी जाती है इस कारण शब्द द्रव्य है। शब्द गुण नही है जिससे कि शब्द गुणका आधार आकाशको बताकर शब्दलिंग आकाशकी सिद्धि की जाय।

संयोगाश्रयत्व होनेसे शब्दमें द्रव्यत्वकी सिद्धि—अब शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धिमें चौथा हेतु सुनो। शब्द द्रव्य है क्योंकि वह संयोगका आश्रयभूत है, क्योंकि वायु आदिकके द्वारा शब्द अभिहत हो जाता है। शब्दोंका अभिघात वायु आदिकसे हो जाया करता है, इससे सिद्ध है कि शब्द द्रव्य है। संयोगका यही तो फल है कि एक दूसरेसे अभिहत हो जाय, रूक जाय। तो शब्द भी देखो वायुसे रूक जाता है. आगे नही चल सकता है। तो शब्द भी द्रव्य हुआ। जैसे कि धूली द्रव्य है क्योंकि वायु आदिकके द्वारा उसका अभिघात हो जाया करता है। जब धूली आदिक वायुसे संयुक्त होती है तभी तो वह अभिहत हो जाती है या अन्य किसीसे भी जब धूलीका अभिघात होता है तो भिड़ जाता है। तो वह मूर्त है और द्रव्य है इसी प्रकार शब्दका अभिघात बराबर सिद्ध है। कोई देवदत्तसे शब्द बोल रहा, बात कर रहा और वायु उल्टी चल रही है अर्थात् देवदत्तकी औरसे, बोलने वालेकी ओर तेजीसे बह रही है तो उस समय वे शब्द लौट आते हैं। जैसे कि वायुसे धूलीका अभिघात होनेपर धूली लौठ आती है इसी प्रकार वे शब्द भी रूक जाते हैं और बल्कि लौट भी आते हैं। इससे यह निश्चित हुआ कि शब्द संयोगमें आश्रयभूत है, यह बात असिद्ध नही है, क्योंकि कोई शब्द किसीसे बोल रहा है और वायु उल्ठी चल रही है तो पीछे रहने वाले लोग उस शब्दको बराबर सुन लेते हैं, इससे जब शब्दमें संयोग गुण आता है तो शब्द स्वयं द्रव्य है तभी तो उसमें गुण आया करता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गंधवान अणुपुञ्जकी भांति शब्दमें भी संयोग, अभिघात और गमनागमन होनेसे द्रव्यत्वकी सिद्धि – शंकाकार कहता है कि इस तरह तो गंधादिक भी वायु आदिकसे लौट आया करती है, मगर गंधके साथ तो वायुका संयोग होता नही क्योंकि गंध स्वयं गुण है और गुणोंमें गुण रहा नही करते— निर्गुणाः गुणीः।' जो गुण रहा करते हैं उनमें अन्य गुण नही रहा करते तो गंधको देखो — जब वायु तेज चलती है तो गंध भी लौट आया करती है, और गंध गुण गंध द्रव्य है नहीं, उसके साथ संयोग हो सकता नही। तब आपका यह हेतु सदोष हो गया ? समाधानमें कहते हैं कि यह बात नही गंध स्वतन्त्र कुछ नही वहाँ किसी मनुष्यके प्रति कोई गंधवान अणु आ जाया करता है और उल्टी वायु चलनेसे गंध भी लौट आया करती है सो वहाँ गंधवान सूक्ष्म स्कन्ध द्रव्य है केवल गन्ध तो निष्क्रिय है। क्रिया द्रव्यमें ही पायी जाती है, गुणोंमें क्रिया नही होती। सो द्रव्य तो हो नही, मात्र गंध ही गन्ध हो तो केवल गन्ध तो निष्क्रिय है, उसमें गमनागमन हो ही नही सकता। उसका गमनागमन कोई लौटा है यह बात गन्धमें सम्भव नहीं किन्तु गंधवान जो स्कंध होते हैं उनमें संयोग होता है वायुका और वायुके द्वारा अभिघात होनेसे गंधवान परमाणु लोकमें आया करते हैं, इससे सिद्ध है कि शब्द द्रव्य है क्योंकि गुणवान होनेसे। जिनमें गुणका सम्बन्ध होता है, जो स्वयं गुणवान होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं। तो देखो ना, शब्दमें संयोग गुण लगा, संख्या गुण लगा। वैशेषिक सिद्धान्तमें संख्या, गुण, परिमाण, स्पर्श ये सब गुण माने गए हैं और गुणका जो स्रोतभूत होता है वह द्रव्य कहलाता है। तो शब्दोंमें स्पर्शका आश्रयपना है, परिमाणका आश्रयपना है, संख्याका आश्रयपना है और संयोगका भी आश्रयपना है। जहाँ गुणका आश्रयत्व मिला है वह शब्द द्रव्य कैसे नही कहलाया ? तो शब्द द्रव्य है, गुण नही है। फिर शब्दके द्वारा आप आकाश को नित्य निरंश शब्द गुणकी सिद्धि कैसे कर सकेंगे ?

क्रियावत्त्व होनेसे शब्दमें द्रव्यत्वकी सिद्धि— और भी देखिये ! शब्द द्रव्य है क्योंकि क्रियावान होनेसे। जो जो क्रियावान् होते हैं वे द्रव्य होते हैं। जैसे— बाण, गोली आदि। ये क्रिया करते हैं तो ये द्रव्य कहलाते हैं। यदि शब्दको निष्क्रिय मानोगे तो शब्दका फिर श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहण सम्भव नही हो सकता, क्योंकि श्रोत्र इन्द्रियमें शब्दका सम्बन्ध ही न हो पायगा ? कहीं शब्द उत्पन्न हों, बोले जायें और शब्दका जब तक स्रोत्रके साथ सम्बन्ध नही होता तब तक उसका ग्रहण कैसे हो ? यदि निष्क्रिय माना जानेपर भी शब्दका स्रोत्रके साथ ग्रहण मान लिया जाय तो स्रोत्र भी अप्राप्यकारी बन जायगा अर्थात् जैसे चक्षु इन्द्रियके सिवाय बाकी अन्य इन्द्रियाँ अप्राप्यकारी हैं, स्पर्श, रसना, घ्राण जैसे अप्राप्यकारी हैं, चक्षु ही एक अप्राप्यकारी माना है क्योंकि चक्षु पदार्थके पास फिरते नही हैं और दूरसे ही ठहरे हुए जान लेते हैं तो अब यहां श्रोत्रको भी ऐसा ही मान लिया गया है कि कि श्रोत्रके पास शब्द आते नही हैं। शब्दका और श्रोत्रका सम्बन्ध नही होता है फिर भी शब्दको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रोत्र जान लेता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रोत्र अप्राप्यकारी हो गया और जब श्रोत्र को अप्राप्यकारी मान लिया गया तो यह हेतु देना कि चक्षु प्राप्यकारी है बाह्य इन्द्रिय होनेसे, स्पर्शन इन्द्रियकी तरह। तो देखो ! श्रोत्र भी बाह्य इन्द्रिय है लेकिन श्रोत्र तो प्राप्यकारी न रहा। तो इस हेतुमें अनैकान्तिक दोष आता है।

श्रोत्रका शब्दोत्पत्तिस्थानमें गमन करके सम्बन्ध माननेकी अनुपपत्ति

कदाचित् मान लो कि श्रोत्रका और शब्दका सम्बन्ध होता है तो यह बतलावो कि श्रोत्र क्या शब्दकी उत्पत्तिस्थानमें जाकर शब्दसे सम्बन्धित होता है? या शब्द अपनी उत्पत्तिके स्थानमें आकर श्रोत्रके साथ सम्बन्धित होता है? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि यह कहोगे कि श्रोत्र शब्दकी उत्पत्तिस्थानमें जाया करता है और शब्दसे सम्बन्धित होकर शब्दको जानता है तो यह बात तो प्रत्यक्षविरुद्ध है। किसीके भी कान अपनी जगहसे हटकर शब्दोत्पत्तिके स्थानमें जाते हुए नही देखे गए। और, यदि जबरदस्ती मान भी लोगे तो जब श्रोत्र शब्दकी उत्पत्ति स्थानमें जाने लगे तो जिस शब्दके सुनने की बात चल रही है उस शब्दके सुननेके लिए श्रोत्र पहुंच गए तो रास्तेमें जो भी शब्द बोले गए वे सब सुननेमें आ जाने चाहिएं। जैसे ५० हाथ दूरपर कोई खड़ा हुआ तेज शब्दोमें भाषण दे रहा है तो अब सुनने वालेके कान यदि भाषण देने वाले के पास पहुँच गए तो रास्तेमें जो लोग धीरे-धीरे बातें कर रहे थे वे सभी बातें भी सुननेमें आ जानी चाहिएँ ना, क्योंकि जब श्रोत्र शब्दस्थानपर गया तो रास्तेमें वह तो निकला ही, सम्बन्ध तो होता गया सबके साथ। तो शब्दके साथ श्रोत्रका सम्बन्ध जहां जहां ~~हो वहां~~ वहांके सारे शब्द सुननेमें आ जाने चाहियें। दूसरा दोष यह है कि कभी प्रतिकूल वायु भी चल रही हो तो अब मान भी लिया यह कि श्रोत्र शब्दस्थान के पास जाता है तो श्रोत्र तो चला गया। अब प्रतिकूल वायु चलनेपर भी शब्द सुननेमें आ जाने चाहियें, क्योंकि प्रतिकूल वायुके कारण अब श्रोत्रपर कुछ प्रभाव नही हो सकता। श्रोत्र तो शब्दस्थानपर चला गया ना, तो सम्बन्ध शब्दके साथ श्रोत्रका होगा ही, फिर प्रतिकूल वायुसे शब्दके न सुनाई देनेका क्या सम्बन्ध रहा? अथवा उस समय कोई शब्द थोड़ा सुनाई दे यह भेद भी न रहना चाहिए। जब स्रोत्र इन्द्रिय शब्दस्थानके पास गया तो रास्तेमें और वहाँ भी जहां जहां भी स्रोत्रका शब्दके साथ सम्बन्ध हुआ है वे सारे शब्द एक समान सुनाई देना चाहिए। फिर यह भेद न हो सकेगा कि कोई शब्द स्पष्ट सुनाई दे, कोई कम सुनाई दे, कोई सुनाई ही न दे, क्योंकि स्रोत्र तो चला गया शब्दोंके पास अब वायुके द्वारा अभिघातका वहां काम ही क्या रहा? इस कारण यह बात नही कह सकते कि श्रोत्रइन्द्रिय शब्दकी उत्पत्ति स्थानपर जाती है और शब्दसे सम्बन्धित होकर शब्दको सुन लेते हैं।

शब्दको आकाशगुण माननेपर शब्दका श्रोत्रके समीप जानेकी असिद्धि

यदि अब दूसरा विकल्प कहोगे कि स्रोत्र तो शब्दके पास नही जाता, किन्तु शब्द ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्रोत्रके प्रदेशमें आते हैं तो यह बात कहना वैशेषिक सिद्धान्तके विपरीत है, कारण यह है कि विशेषवादमें शब्दको निष्क्रिय माना है, क्योंकि शब्द गुण माना गया है और गुण निष्क्रिय हुआ करते है। जिसमें क्रियाका समवाय हो वह तो द्रव्य कहलाता है। गुण निर्गुण होता है और निष्क्रिय भी होता है। तो जब शब्दको गुण माना और निष्क्रिय माना तो यह कैसे बन सकेगा कि शब्द स्रोत्रके प्रदेशमें आ सकेंगे। और, यदि मान लिया जाय कि शब्द स्रोत्रके प्रदेशमें आ जाते हैं तब फिर शब्द सक्रिय कहलाने लगा। और जब सक्रिय हो गया तो इसके मायने है कि शब्द द्रव्य है यह अपने आप सिद्ध हो गया। शब्द क्रियावान है, क्योंकि पूर्व देशका परित्याग करके अन्य देशमें पाया गया। जो जो वस्तु पहिले रहने वाले स्थानका परिहार करके अन्य स्थानोंपर पाया जाय तो उसे सक्रिय समझना चाहिए। कोई पुरुष एक गाँवसे दूसरे गाँवमें गया तो हुआ क्या वहाँ ? जो उसका पूर्व स्थान था वह छूट गया और नवीन स्थानपर उसका संयोग बना, तो क्रियावान द्रव्यके प्रदेश ही ऐसे होते हैं कि पूर्व देशका त्याग करके अन्य देशमें पाये जाते हैं। जो जो पूर्व देशका त्याग करते हुए अन्य देशमें पाये जायें वे सब द्रव्य होते हैं जैसे बाण गोली आदिक। ये शब्द भी वक्ताके मुख प्रदेशका त्याग करते हुए स्रोताके स्रोत्र प्रदेशोंमें पहुंचे। तो शब्द सक्रिय है सो शब्द स्वयं द्रव्य बन गया। और जब शब्द द्रव्य सिद्ध हो गया तो आकाशका गुण नही कहला सकता और तब शब्दलिङ्ग याने शब्द गुणवाले आकाशका अस्तित्त्व नही हो सकता है। तो जो विशेषवादमें ९ प्रकारके द्रव्य बताये गए हैं सो जिस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनका स्वतंत्र अस्तित्त्व जातिरूपमें सिद्ध नही होता इसी प्रकार शब्दलिङ्ग नित्य एक निरंश आकाशका अस्तित्त्व भी सिद्ध नही होता।

वीचीतरङ्गन्याससे शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति मानकर शब्दको निष्क्रिय माननेकी शंका—शंकाकारका कहता है कि पहिला ही शब्द स्रोत्रके पास आकर सम्बन्धित नही होता जिससे कि यह दोष दिया जाय कि शब्द आये तो सक्रिय हो गए, परन्तु वीचीतरंग न्यायसे अर्थात् लहरके बाद लहर ऐसी परम्परा चलकर कोई दूसरे-दूसरे ही शब्द उत्पन्न होते हैं और यों आखिरी जो उत्पन्न हुए शब्द हैं वे स्रोत्रके द्वारा सम्बन्धित होते हैं। प्रथम बोले गए शब्द तो अपने कारणोंसे उत्पन्न हुए जिनमें कि समवायी कारण तो है आकाश और असमवायी कारण है शंखमुखका संयोग या जिस प्रकार जहाँ जो शब्द होते हैं वहाँका वह संयोग और ईश्वर आदिककी कृपा या आग्रह आदिक ये हुए निमित्त कारण इस समवायी असमवायी और निमित्त कारण से उत्पन्न हुआ जो प्रथम-प्रथम शब्द है वही शब्द नही कर्णके पास आता है किन्तु उस शब्दके पासके आकाशमें शब्दकी व्यक्ति हुई इस तरह वीचीतरंग न्यायसे नये-नये ही शब्द बन जाते हैं। और, वहाँ समवायी कारण तो हो रहा है आकाश और असमवायी कारण होता है पूर्व शब्दका संयोग और निमित्त कारण है ईश्वरकी मर्जी वगैरह। तो इन तीन कारणोंसे उत्पन्न होकर जो आखिरी शब्द उत्पन्न होता है वह आखिरी शब्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्ण इन्द्रियसे सम्बन्धित होता है। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात कहना समीचीन नही है। यों कहनेपर तो हम सभी पदार्थोंमें क्रियाका विनाश सिद्ध कर सकते हैं। जैसे कह देंगे कि कोई भी पदार्थ सक्रिय नही होता। वाण आदिक जो बड़ी तेजीसे गमन करत हुए नजर आये हैं उनके सम्बन्धमें भी हम यह कह देंगे कि धनुषसे वाण छोड़ा गया तो जो बाण छोड़ा गया वही बाण उस बेधे हुए लक्ष्य तक नही गया किन्तु वीचीतरंग न्यायसे उस ही वाणसे सजातीय वाण पैदा होते गए और आखिरी जो वाण है उसने लक्ष्यको भेदा है। इस तरह किसी भी कार्यवान पदार्थमें हम कह सकते हैं।

वाणके एकत्व व क्रियावत्त्वकी तरह शब्दमें एकत्व व क्रियावत्त्वका प्रत्यय – शंकाकार कहता है कि वाणमें तो प्रत्यभिज्ञानकी बात सिद्ध है। जो ही उसने बाण छोड़ा वही बाण उस लक्ष्यमें लगा तो वहाँ प्रत्यभिज्ञानकी सिद्धि होनेसे वाणमें नित्यपना सिद्ध है। वहाँ यह कल्पना नही कर सकते कि जो वाण छूटा वही बाण नही आया, किन्तु उस बाणसे सजातीय सजातीय बाण नये– नये उत्पन्न हुए वीचीतरंग न्याय से और आखिरी बाण जो उत्पन्न हुआ उसने लक्ष्यको बेधा। वहाँ तो बाणमें अनश्वरपना है, कल्पना वहाँ नही बन सकती, तो उत्तरमें कहते कि यह बात अर्थात् प्रत्यभिज्ञान तो शब्दमें भी लग रहा है। उपाध्यायने जो शब्द कहा उसी को मैं सुन रहा हूँ, शिष्यने जो कहा उस ही वचनको मैं सुन रहा हूँ ऐसी बराबर प्रतीति होती रहती है। अब शंकाकार कहता है कि जैन सिद्धान्तमें तो प्रत्यभिज्ञान दर्शन स्मरण कारणक बताया गया है अर्थात् प्रत्यक्ष और स्मृति दोनों ज्ञानों पूर्वक प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति कही गई है, लेकिन शब्दके बारेमें तो दर्शन और स्मरण दोनों होते नही फिर कैसे प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति हो जायगी ? उपाध्यायने जो शब्द बोला उस शब्दमें जैसा दर्शन हुआ मानो स्रोत्र इन्द्रियसे जो प्रत्यक्ष हुआ उस प्रत्यक्षकी भाँति उपाध्यायके कहे गए शब्दोंका स्मरण तो नही देखा गया है, क्योंकी स्मरण हुआ करता है उस पदार्थमें जिस पदार्थको पहिले देखा हो और पूर्व दर्शन आदिके कारण संस्कार बना हो, फिर उस संस्कारका हो प्रबोध, मायने संस्कार जगे तब जाकर स्मरण हुआ करता है, क्योंकि अभावमें कार्य तो नही हो सकता। स्मरणका कारण है संस्कारका जगना। संस्कार जगे तब, जब संस्कार बने, संस्कार बने तब जब इसके पूर्वदर्शन आदिक हों। तो ये बातें सब शब्दमें सम्भव नही हैं। तो शब्दमें स्मरण न हो सकनेके कारण प्रत्यभिज्ञान की बात नही बन सकती। और, जब शब्दका प्रत्यभिज्ञान नही बनता तो नित्यता भी न ठहरी और जब नित्यत्व न ठहरा तो अब यह नही कह सकते कि वक्ताने जो शब्द बोला वही शब्द चलकर श्रोताके कर्ण प्रदेशमें आया। समाधानमें कहते हैं कि यह बात ठोक नही बैठती क्योंकि शब्दमें सम्बन्धिताकी प्रतिपत्ति होनेके कारण वहीं शब्द सुना जा रहा है, वही शब्द जिसको उपाध्यायने कहा, इस प्रकारकी सम्बन्धिताकी जानकारी होनेके द्वारसे शब्दमें एकत्वकी प्रतीति हो रही है। प्रत्यभिज्ञान तो एकत्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

की प्रतीतिके सिलसिलेमें होता ना ! तो यहाँ सम्बन्धिताके रूपमें एकत्वकी प्रतीति हो रही है अर्थात् जो शब्द मैं सुन रहा हूं वही शब्द उपाध्यायने कहा है । तब एकत्वकी प्रतीति होनेसे प्रत्यभिज्ञान बन जाता है । और सम्बन्धितामें दर्शन और स्मरण दोनों का सद्भाव सम्भव है । इस कारण प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्तिमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं है । वह किस प्रकार ? सो सुनो ! पहिले तो अन्वय व्यतिरेकके द्वारा अथवा अनुमानके द्वारा उपाध्यायके कार्यरूपसे सम्बन्धित शब्दको जाना कि यह शब्द उपाध्यायके द्वारा बोला गया है । फिर अब इस समय उपाध्यायके द्वारा बोले गए शब्दका स्मरण करके प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है तो उपाध्यायकी सम्बन्धिताके रूपसे जाने गए उस शब्दको अब इस सुनने वालेने एकत्वसे विशिष्ट ही जाना है । यदि इस तरह सम्बन्धिता न हो तो मैं उपाध्यायके द्वारा कहे हुए शब्दको सुन रहा हूं ऐसी फिर प्रतीति नहीं हो सकती, किन्तु यदि एकत्व नहीं होता तो यों कोई प्रतीति करता कि उपाध्यायके द्वारा कहे गए वचनोंसे उत्पन्न हुए जो अन्य वचन हैं, जो कि उन वचनोंके समान हैं ऐसे मैं अन्य-अन्य शब्दोंको सुन रहा हूं, किन्तु कोई करता भी है क्या इस तरहकी प्रतीति ? यों ही प्रतीति बनती है कि मैं उपाध्यायके द्वारा कहे गए शब्दोंको सुनता हूं और जो यह कहना है कि वीचीतरङ्गन्यायसे शब्दोंकी उत्पत्ति होती चली जाती है और यों उत्पन्न हुए शब्दकी परम्परामें जो आखिरी उत्पन्न शब्द है वह श्रोत्र के द्वारा सम्बन्धित होता है, इस बातका अब निषेध किया ।

शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानको भ्रान्त सिद्ध करनेकी शङ्का—शङ्काकार कहता है कि शब्दोंके सम्बन्धमें जो एकत्वरूपसे प्रत्यभिज्ञान होता है कि मैंने उपाध्याय के कहे हुए शब्दको सुना तो वह प्रत्यभिज्ञान सदृश-सदृश नये-नये शब्दोंकी उत्पत्तिके कारण हो रहा है । चूंकि वे समस्त शब्द एकसमान ही उत्पन्न हुए हैं इसलिए शब्दान्तरके सुने जानेपर भी लोगोंको यह प्रतीति होती है कि मैं उस ही शब्दको सुन रहा हूं जिसको उपाध्यायने कहा है । जैसे कि नख काटनेके बाद तो नख उत्पन्न हुआ दूसरा, बढ़ता है दूसरा, पर एक समान होनेके कारण उसके सम्बन्धमें लोग यों कहने लगते हैं कि देखो ! जो नट खट गया था वही नख फिर बढ़ गया, यह वही नख है जिसको २० दिन पहिले काट दिया था । तो जैसे सदृश-सदृश उत्पन्न होने वाले नये-नये नखोंमें एकत्व जैसा लोग ज्ञान किया करते हैं अथवा शिरके बाल कटा दिये, एक माहके बाद फिर वे बाल ज्योंके त्यों बढ़ गये, तो उसमें लोग ऐसी प्रतीति करते हैं कि जिन्हें एक माह पहिले कटा दिये थे ये वे ही बाल हैं । तो जैसे नख और केशमें नये-नये नख-केश होनेपर भी एकत्वका प्रत्यभिज्ञान लोग किया करते हैं उसी प्रकारसे शब्दके बारेमें नये-नये शब्द उत्पन्न हो होकर अन्तिम शब्दका सम्बन्ध श्रोत्रसे होता है तो वहाँ लोग यों अनुभव करते हैं कि मैंने वही शब्द सुना जो अमुकने बोला । तो यह सदृशताकी वजहसे प्रत्यभिज्ञान बन रहा, कालान्तरमें ठहरे रहनेकी वजहसे शब्द ठहरा रहता है और वही शब्द श्रोत्रमें प्रवेश करता है यों बात नहीं ! न तो वही शब्द

Version 1

श्रोत्रमें प्रवेश करता और न वह शब्द कालान्तरमें ठहर सकता है। उत्तरमें कहते हैं कि किसी धनुर्धारीने बाण छोड़ा किसी लक्ष्यको बेंधनेके लिए. तो वहाँ भी यह कहा जा सकता कि धनुर्धारीके स्थानसे जो बाण छूटा वह बाण तो उस लक्ष्य तक नही आया किन्तु उससेसजातीय नये-नये पैदा होते जा रहे बीचीतरङ्ग न्यायसे और अन्तिम बाणसे लक्ष्यको बेंधा, किन्तु उसके सम्बन्धमें लोगोंको यह प्रतीति होती है कि बाण आया लक्ष्य तक। वह प्रतीति इस कारण होती है कि वे बाण सब सदृश-सदृश थे और उन सदृश-सदृश बाणोंकी परम्परामें लोगोंको इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान जगता है—वस्तुत: बाण कालान्तरमें ठहरे और वही बाण लक्ष्य तक जाय ऐसी बात नही है। इसके कारण बाणमें प्रत्यभिज्ञान नही बना। प्रतीतिसिद्ध शब्दके एकत्वके निषेधकी भांति बाण आदिक द्रव्योंके एकत्वका निषेध किया जा सकता है। यह भी नही कह सकते कि शब्दमें तो बाधक प्रमाणका सद्भाव है अर्थात् शब्दमें एकत्वके माने जानेमें बाधा आती है इसलिए शब्दमें तो उस तरहकी उपचार कल्पना बन जाती है पर बाणमें नही बनती। क्योंकि बाणोंके सम्बन्धमें जो यह ज्ञान हो रहा है कि वह यह ही बाण है, इसमें कोई बाधक प्रमाण नही है।

शब्दकी अक्षणिकतामें प्रत्यक्षसे बाधाका अभाव—अब उक्त शंकाके समाधानमें पूछा जा रहा है शंकाकारसे कि शब्दोंके सम्बन्धमें जो यह ज्ञान चल रहा है की शब्द वही है, क्षणिक नही है, इस ज्ञानमें बाधा देने वाला कौन सा प्रमाण आप बतलावोगे, प्रत्यक्ष अथवा अनुमान ? यदि कहोगे कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे शब्दकी अक्षणिकता में बाधा आती है तो वह प्रत्यक्षज्ञान जो कि शब्दके नित्यत्वमें, अक्षणिकत्वमें बाधा दे रहा है वह क्या एकत्वका विषय करने वाला प्रत्यक्ष है या क्षणिकत्वका विषय करने वाला प्रत्यक्ष है ? यदि कहो कि एकत्वका विषय करने वाले प्रत्यक्षसे शब्दकी अक्षणिकतामें बाधा आती है तो यह तो स्ववचन विरोधकी बात है। प्रत्यक्ष एकत्वका विषय कर रहा और वही प्रत्यक्ष अक्षणिकतामें बाधा दे यह कैसे सम्भव है ? एकत्वका अक्षणिकत्वके साथ तो मैत्रीभाव है, समान विषय है। वह प्रत्यक्ष तो अक्षणिकताके अनुकूल है। यदि कहो कि क्षणिकत्वका विषय करने वाला प्रत्यभिज्ञान शब्दकी अक्षणिकतामें बाधा देता है तो यह बात भी युक्त नही है, क्योंकि शब्दमें और इसी प्रकार अन्य पदार्थोंके भी क्षणिकत्व विषयक प्रत्यक्षमें अभी विवाद चल रहा है। उस हीका तो यह प्रसंग चल रहा कि शब्द क्षणिक नही है और हम कहें कि क्षणिकका विषय करने वाले प्रत्यक्षसे बाधा आती है तो वहाँ तो विवाद भिन्न है वह कैसे अक्षणिकत्व में बाधा देगा। क्षणिकत्वको विषय करने वाला प्रत्यक्ष है, यही बात तो असिद्ध है। तो असिद्ध प्रमाणसे किसी बातकी सिद्धि नही की जा सकती। सो प्रत्यक्षके द्वारा तो शब्द की अक्षणिकतामें बाधा आती नही।

शब्दकी अक्षणिकतामें अनुमानसे बाधाका अभाव—यदि कहो कि अनु-

मानसे शब्दकी अक्षणिकतामें बाधा आ जायगी सो भी बात ठीक नही। देखो—वैशेषिक सिद्धान्तमें प्रत्यभिज्ञानको मानस प्रत्यक्ष माना है। यों अनुमान तो है परोक्ष और प्रत्यभिज्ञान है प्रत्यक्ष तो जिस विषयमें प्रत्यक्ष काम कर रहा हो उस विषयमें उसके विरुद्ध अनुमान बनावें तो वह कैसे सफल हो सकता है। जैसे—अग्नि प्रत्यक्ष की गई तो वह प्रत्यक्ष तो इस अनुमानका बाधक बन सकता है कि अग्नि ठंडी है द्रव्य होनेसे जल की तरह। मगर उस प्रत्यक्षमें जिसने कि अग्निको गर्म अनुभव किया है, अनुमानसे बाधा नही दी जा सकती है कि देखो हमारा अनुमान है कि अग्नि ठंढी होती है द्रव्य होनेसे। तो अनुमानसे प्रत्यक्षमें बाधा आया नही करती, किन्तु प्रत्यक्षसे अनुमानमें बाधा आया करती है। तो जब प्रत्यभिज्ञान मानसिक प्रत्यक्ष है तो शब्दके सम्बन्धमें एकत्व प्रत्यभिज्ञान बन रहा है तो यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो आपके अनुमानका बाधक बन जायगा, पर आपका अनुमान शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानका बाधक नही बन सकता जैसे कि कोई यह अनुमान बनाये कि इस वृक्षकी इस शाखाके सारे फल पके हुए हैं क्योंकि एक शाखामें उत्पन्न होनेसे, अनुमान तो बना दिया और प्रत्यक्ष देखा जा रहा है. छू करके समझा जा रहा है कि इसमें अनेक फल कच्चे हैं तो प्रत्यक्षसे उस अनुमान में बाधा आ जायगी पर उस अनुमानसे प्रत्यक्षमें बाधा नही आ सकती। तो शब्दके बारेमें जो एकत्व प्रत्यभिज्ञान हो रहा है वह प्रमाण तो है प्रबल, पर उसके विरोधमें जो अनुमान बनाया जा रहा है वह अनुमान प्रबल नही है इससे शब्दमें एकत्व सिद्ध है और वही शब्द सुना ऐसा जाननेमें क्रिया भी सिद्ध हो गयी। और, जिसमें क्रिया होती है वह द्रव्य कहलाता है।। यों शब्द द्रव्य है गुण नही है जिस बलपर शब्दलिङ्ग से शब्दलिङ्ग वाले आकाशकी सिद्धिकी जा सके।

शब्दकी क्षणिकता सिद्धीके लिये दिये गये अनुमानकी प्रत्यक्षबाधितता—शंकाकार यहाँ शब्दको क्षणिक सिद्ध करके शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानका निराकरण कर रहा है। तो उस सम्बन्धमें यह पूछा गया कि शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञान में प्रत्यक्ष बाधक है या अनुमान बाधक है? प्रत्यक्ष बाधक है इस विकल्पका निराकरण कर ही दिया था और अब अनुमान बाधक है इस विषयका निराकरण चल रहा है। अनुमान शब्दके अक्षणिकत्वके प्रत्यभिज्ञानका बाधक नही हो सकता, क्योंकि एकत्व प्रत्यभिज्ञान मानसिक प्रत्यक्ष है और अनुमानसे प्रत्यक्षकी प्रबलता होती है। तो प्रत्यक्ष हो तो अनुमानका बाधक बन जायगा, पर अनुमान प्रत्यक्षका बाधक नही होता। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यह प्रत्यक्ष प्रत्यक्षाभास है, सही प्रत्यक्ष नही है किन्तु भ्रमरूप प्रत्यक्ष है इस कारण इस प्रत्यक्षका, शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानका बाधक अनुमान बना सकता है। जैसे कि प्रत्यक्षसे यह ज्ञान होता है कि चन्द्र सूर्य स्थिर हैं। तो चन्द्र सूर्य स्थिर है ऐसा जो प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ वह तो प्रत्यक्षाभास है तभी तो उस प्रत्यक्षा भासका बाधक अनुमान बन जाता है। कैसे ? कि सूर्य चन्द्र स्थिर नहीं हैं, क्यों कि एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त हुए देखे जाते हैं। तो जैसे—यह अनुमान प्रत्यक्षाभासका

http://sahjanandvarnishastra.org/

बाधक बन गया इसी प्रकार शब्दोंमें जो अक्षणिकत्वका, एकत्वका प्रत्यभिज्ञान होता है वह प्रत्यक्षाभास है इसी कारण उसका बाधक अनुमान हो जाता है। अब इस शंका के समाधानमें पूछते हैं कि शब्दोंके अक्षणिकत्वका प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षाभास है यह तुमने कैसे समझा? यदि कहो कि अनुमानसे बाधा आती है इससे जान लिया कि यह प्रत्यक्षाभास है तो वाह, फिर प्रत्यक्षसे इस अनुमानमें भी बाधा आती है, तब फिर तुम्हारा अनुमान अनुमानाभास क्यों नही कहलायगा? शब्दको क्षणिक सिद्ध करनेमें शंकाकार जो अनुमान देगा और उसमें है प्रत्यक्षसे बाधा तब अनुमान अनुमान भास रहा। यदि वह कहो कि तुम्हारा एकत्व प्रत्यभिज्ञान अक्षणिकत्वका प्रतिभास, यह अनुमानसे बाधित विषय वाला है इस कारण प्रत्यक्ष अनुमानका बाधक नही बन सकता, तब फिर यह उत्तर क्या कौवोंने खा लिया कि अनुमान प्रत्यक्षसे बाधित विषय वाला है, इस कारण अनुमान का बाधक नही बन सकता।

प्रत्यक्षबाधित अनुमानसे शब्दके क्षणिकत्वकी असिद्धि—किञ्च स्पष्ट बात तो यह है कि शब्दोंको क्षणिक सिद्ध करने वाला कोई अनुमान भी नही है। शंकाकार कहता है कि शब्दोंको क्षणिक सिद्ध करने वाला यह अनुमान तो है सुनो! शब्द क्षणिक होता है, क्योंकि हम जैसे साधारण जनोंके प्रत्यक्ष होनेपर भी व्यापक द्रव्यका विशेष गुण है सुख आदिककी तरह। जैसे कि सुख दुःख आदिक हम लोगोंके प्रत्यक्ष भी होते हैं और विभु द्रव्यका यह विशेष गुण है। इसी प्रकार यह शब्द भी हम लोगोंको प्रत्यक्ष होता है अर्थात् कर्णोंसे सुनाई देता है और फिर विभु शब्द है आकाश, उसका यह गुण है इस कारण शब्द क्षणिक है। समाधानमें कहते हैं कि वह अनुमान तुम्हारे ही दिमागमें ठीक लग रहा हो, परन्तु जैसे कोई फलोंके सम्बन्धमें अनुमान बनाये कि ये डालके फल सारे पके हुए हैं, क्योंकि एक शाखामें उत्पन्न हुए हैं तो जैसे एक शाखा प्रभवत्व हेतु प्रत्यक्षबाधित है अर्थात् एक शाखामें उत्पन्न हुए ये फल जो सारे प्रत्यक्षसे दीख रहे हैं, हाथसे टटोले जा सकते हैं, उनमें कुछ कच्चे हैं, कुछ पक्के हैं। तो जैसे एक शाखाप्रभवत्व हेतु प्रत्यक्षसे बाधित है, फिर भी कोई अनुमान बनाये तो वह गलत है। इसी प्रकार शब्दोंकी क्षणिकता अनित्यता प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षसे बाधित है, फिर उसके बाद तुम अनुमान बना रहे हो तो वह साध्य सिद्धिका कारण नही बन सकता।

शब्दक्षणिकत्वसाधक हेतुकी सदोषता—शब्दकी क्षणिकता सिद्ध करनेमें तुम्हारा जो यह अनुमान है उसके हेतुमें जो कहा कि विभु द्रव्य विशेषका गुण है ऐसा कथन असिद्ध है। शब्द आकाशका, द्रव्य विशेषका गुण नही है, किन्तु शब्द स्वयं द्रव्य है। शब्दमें द्रव्यरूपताकी अभी सिद्धि हीं की गई है। दूसरा दोष यह हुआ साथ ही विभु द्रव्यका विशेष गुण होनेसे याने विभु द्रव्य विशेषका गुण होनेसे। कोई क्षणिक हो जाय यह बात व्यभिचरित है अर्थात् धर्म तो आत्माका विशेष गुण माना गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पुण्य कर्म, धर्ममें आत्माके विशेष गुण माने गए हैं वैशेषिक सिद्धान्तमें, तो देखिये धर्म आत्मा विभु द्रव्यका विशेष गुण है लेकिन क्षणिक तो नहीं है। यदि कहोगे कि हम धर्मको भी पक्षमें ले लेंगे अर्थात् वह भी क्षणिक है ऐसा मान लेंगे तो इस तरह जैसे जिसमें दोष आता हो उसको ही पक्षमें शामिल करनेकी बात मान ली जाय तब तो कोई भी हेतु व्यभिचारी नहीं है। जिस किसी भी अनुमानमें हेतु व्यभिचारी होता हो, तो वहाँ यह कह बैठें कि इसको भी हमने पक्षमें सामिल कर लिया है। साथ ही यदि धर्म भी क्षणिक मान लिया जाय तब तो अस्मदादिक प्रत्यक्ष है, ऐसा विशेषण देना अनर्थक हो जायगा। अर्थात् यों कहना कि हम जैसे अल्पज्ञोंके द्वारा प्रत्यक्ष होने पर विभुद्रव्यका विशेष गुण है ऐसा जो हेतु बनाया गया उसमें "अस्मदादि प्रत्यक्षत्व" यह अंश व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि जिस पक्षसे हेतुको बचाने के लिए अस्मदादिप्रत्यक्षत्व विशेषण लगाया गया है इस विपक्षको भी पक्ष कर लिया। धर्मको भी क्षणिक मान लिया तो विशेषणका काम तो है व्यवच्छेद करना। जैसे–कहा नीलकमल। तो नील विशेषणका अर्थ है अन्य श्वेतादिक नहीं। तो जब इस हेतुमें अस्मदादिप्रत्यक्षत्व विशेषण दिया है तो विशेषणका काम तो था कि हम आप लोगोंके द्वारा जो प्रत्यक्ष नहीं है ऐसे धर्म आदिकको विपक्ष बना दिया जाय, उसे क्षणिक न माना जाय, और अगर अस्मदादि प्रत्यक्षसे विरुद्ध धर्मको जब क्षणिक मान लिया गया तो व्यवच्छेद्यपना इस विशेषणमें रहा ही नहीं। इस विशेषणसे किसको मना किया जाय? जिसको मना करते थे उसको तो सामिल करने लगे। यों शंकाकारके हेतुमें तीसरा दोष हुआ। चौथा दोष यह आता है कि धर्म आदिकको जब क्षणिक मान लिया तो क्षणिकका अर्थ है अपनी उत्पत्ति समयके बाद न होना। तो धर्म जब उत्पत्तिके समयके बाद तो रहा नहीं, नष्ट हो गया, अब जन्म–जन्ममें फल कैसे जीवको मिले? जब धर्म क्षणिक है और तुरन्त नष्ट हो गया तो जब धर्म अधर्म न रहा, पुण्य–पाप न रहा तो जन्मान्तरमें जीवको फल कैसे मिलेगा?

धर्मको भी क्षणिक मानकर धर्मसे धर्मान्तरकी उत्पत्ति मानकर व्यवस्था बनानेमें विडम्बना—शंकाकार कहता है कि धर्मसे अन्य धर्मकी उत्पत्ति हो जायगी, अधर्मसे अन्य अधर्मकी उत्पत्ति हो जायगी। जैसे कि शब्दसे शब्दकी उत्पत्ति होती रहती है वीचीतरङ्ग न्यायसे, वक्ताने जो शब्द बोला उस शब्दके कारणसे अन्य शब्दोंकी उत्पत्ति हुई। इसी तरह धर्मादिकसे अन्य धर्मादिककी भी उत्पत्ति होजायगी जब क्षणिक होनेपर भी चूंकि प्रथमकृत धर्मसे अन्य अन्य अनेक धर्म नये–नये उत्पन्न होते जाते हैं तब उसमें दोष न आयगा। समाधानमें कहते हैं कि पहिली बात तो यह है कि वैशेषिक सिद्धान्त स्वयं ऐसा न मानेगा कि धर्म क्षणिक होता और धर्मसे अन्य धर्मोंकी उत्पत्ति होती चली जाय। दूसरी बात यह है कि यदि मान लिया जाय कि धर्मादिकसे धर्मादिककी उत्पत्ति होती है तो धर्ममें धर्मान्तरकी उत्पत्ति होनेकी तरह धर्मके कार्य क्या हैं? स्त्री–पुत्रका संयोग होना आदि। तो फिर वे भी नये–नये कार्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न होते हैं यों प्रसङ्गमें आ जायगा अर्थात् जैसे वही धर्म नहीं है जो पूर्व जन्ममें किया था, उसके बाद तो अनेक धर्म हो गए। धर्मोंसे धर्म उत्पन्न होते गए। तो इसी तरह ये स्त्री–पुत्र वही नही हैं जो पहिले मिले थे। स्त्रीसे स्त्री उत्पन्न होती जारही है अर्थात् वहीं उसी एक प्राणीसे वैसे–वैसे ही प्राणी बनते जा रहे हैं। ऐसे ही अन्य वैभव आदिक जो धर्मके फलमें मिलते हैं उन्हें भी ऐसा कह सकते हैं कि वे भी नये–नये और–और पैदा होते जाते हैं।

धर्मादिसे धर्मादिकी उत्पत्ति माननेपर तृतीय दोष—धर्मादिकसे धर्मादिककी उत्पत्ति माननेपर तीसरा दोष यह है कि वैशेषिक सिद्धान्तमें जो स्वयं ऐसा कहा गया है जैसा कि अभी बतावेंगे उसका विरोध हो जाता है। वैशेषिक सिद्धान्तमें कहा गया है कि किसी पुरुषने अनुकूल यज्ञ पूजा आदिकके कार्योंमें जिनसे कि धर्मको उत्पत्ति होती है, उनमें जो अनुकूल अभिमान उत्पन्न हुआ है अर्थात् इस धर्म कार्यके करनेसे धन वैभव आदिकके सुख प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जो अनुकूल अभिमान याने संकल्प किया गया उससे जो अभिलाषा उत्पन्न हुई वह अभिलाषा, अभिलाषा करने वाले पुरुषको अगले जन्ममें जो यज्ञ करके चाहा गया उस पदार्थके अभिमुख कर देगा, इससे यह सिद्ध होता कि धर्म आत्माका विशेष गुण है। जैसे कि अनुकूल वर्तमान पदार्थोंमें जब हम अनुकूल अभिमान करते, इच्छा करते, संकल्प बनाते तो उससे जो अभिलाषा बनी वह अभिलाषा जैसे उस पदार्थको मिला देती है। मानो इच्छा हुई कि मैं एक गिलास पानी पी लूँ बस तुरन्त पानी भरा और पी लिया तो देखो अनुकूल पदार्थमें जो अभिलाषा की उसने पदार्थके सम्मुख कर दिया ना जीवको। तो इसी तरह यज्ञ पूजा आदिक करके जो संकल्प होता है, उससे जो अभिज्ञान होता है वह अगले जन्ममें पदार्थके सम्मुख कर देता है जीवको जैसे कि इस जन्ममें जो हम अभिलाषा करते हैं और पुन्य अनुकूल है तो उस अभिमान क्रियामें पदार्थको मिला लेते हैं ना या पदार्थ हमारे अभिमुख हो जाता ना। इसी तरह आजके यज्ञ पूजा आदिक कार्योंमें जो हमने अनुकूल अभिलाषा बनायी है अर्थात् इससे यह फल मिलता यह सुख मिलता, इस तरहका जो एक संकल्प बनाया है, उससे जो अभिलाषा बनेगी वह उन उन पदार्थोंको ला देगा, उन पदार्थोंके हम सम्मुख हो जायेंगे, इससे सिद्ध है कि धर्म आत्माका विशेष गुण है। सह सिद्धान्तका विरोध आता है यह माननेपर कि धर्मादिकसे धर्मादिककी उत्पत्ति होती है क्योंकि इस पुरुषने यज्ञ पूजा आदिक करते हुएमें जो अनुकूल अभिमान करके अभिलाषाकी मुझे इसके फलमें यह चीज प्राप्त होगी इस अभिलाषासे अनुकूल कार्य करते हुए जो इसे पुण्य लगा वही पुण्य तो अभिलाषा करने वाले को पदार्थके सम्मुख नही करता। उस धर्मको किए हुए तो हो जाता है वर्षों और धर्मोंसे धर्मकी उत्पत्ति चल रही है, तो वह धर्म तो अपने समान कार्यको अर्थात् धर्मको उत्पन्न करता रहता है। फिर जब कभी कोई वैभव धन स्त्री पुत्र आदिकके अनुकूल समागम मिल गए तो उसके कारणभूत जो आखिरी धर्म है, जिस धर्मके उदयमें ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सारे वैभव मिले वह धर्म तो इस जीवने नही किया। स जीवके द्वारा किया गया तो पहिलेका धर्म था। अब उस धर्मके बाद अनगिनते धर्म धर्मोंसे उत्पन्न होते गए। तब उपर्युक्त बात कि ये सब उस धर्मके फल हैं, जो धर्म किया जीवने, यह बात गलत हो गयी। जीवने जो धर्म किया उसका फल तो मिला नही पर उस धर्मके बाद जो करोड़ों धर्म उत्पन्न होते गए उनमेसे उस अन्तिम धर्मसे वैभव प्राप्त हुआ।

धर्मसे धर्मकी उत्पत्ति मानकर जन्मान्तरमें फल व्यवस्था बनानेकी असंभवता—धर्मसे धर्मकी उत्पत्ति माननेपर चौथा दोष यह आता है कि वैशेषिक सिद्धान्तमें एक अनुमान यह बनाया गया है कि प्रवर्तक और निवर्तक धर्म अधर्म इच्छा और द्वेषके कारणसे हुआ करते हैं, अर्थात् धर्मका काम है हितके काममें लगा देना और अहितके कामसे हटा लेना। तथा अधर्मका काम है अहित विषयमें लगा देना व हितसे हटा देना। ऐसा जो धर्म अधर्म है यह इच्छा और द्वेषके निमित्तकारण से उत्पन्न हुआ करता है। यह तो हुई उनके अनुमानमें प्रतिज्ञा और हेतु देते हैं कि अव्यवधानसे हित और अहित पदार्थकी प्राप्ति और परिहारके कारणभूत कर्मका कारण होनेपर आत्माका विशेषगुण होनेसे। अर्थात् धर्म अधर्म आत्माके विशेष गुण हैं और अव्यवधानसे याने साक्षात् हितकी प्राप्ति और अहितके परिहारमें कारणभूत क्रियाका कारण है धर्म। और हित पदार्थके परिहार और अहित परिहारकी प्राप्तिके कारण भूत क्रियाका कारण है अधर्म। तो अव्यवधानसे हितविषयकी प्राप्ति और अहित विषय के परिहारके हेतुभूत क्रियाका कारण होनेपर आत्माका विशेषगुण है धर्म इस कारण धर्म इच्छा द्वेष निमित्तक है, इसी प्रकार अधर्म भी इच्छा द्वेष निमित्तक है। जैसे कि हम लोगोंके जो वर्तमान प्रयत्न चलते हैं वे प्रयत्न प्रवर्तक और निवर्तक हुआ करते है और वे इच्छा और द्वेषके कारणसे हुए हैं। इसका किसीसे राग हुआ तो हम उसमें प्रवृत्तिका प्रयत्न करते हैं। हमें किसीसे द्वेष हुआ तो हम उससे हटनेका प्रयत्न करते हैं तो जो प्रवर्तक और निवर्तक होता है वह रागद्वेष निमित्तक होता है तो धर्म और अधर्म पुण्य और पाप ये हित अहितमें प्रवर्तक और निवर्तक हैं इस कारण ये रागद्वेष कारणक हुए। यह अनुमान वैशेषिक सिद्धान्तमें बनाया गया है। तो जब धर्मसे धर्मकी उत्पत्ति मान ली गई तो इस हेतुमें व्यभिचार हो गया, क्योंकि जन्म जन्मान्तरमें जो फल देने वाला धर्म अधर्म है वह धर्म अधर्म तो हिताहित पदार्थोंकी प्राप्ति परिहारके कारणभूत क्रियाका कारण भी है, आत्माके विशेष गुण भी हैं लेकिन वे इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न नही हुए हैं पूर्व जन्ममें इच्छा की थी यज्ञ पूजा सत्संग आदिक अनुष्ठान किए थे उससे हुआ पहिले पुण्य बंध। अब उसके बाद पुण्यसे पुण्य होते-होते हजारों वर्ष व्यतीत हो गए और उसके बाद मिले अन्य जन्म, उन, जन्मोंमें मिला पूर्वजन्मके यज्ञ का फल, तो अब जिस पुण्यके उदयसे फल मिला है वह फल इच्छाद्वेष निमित्तक तो नही रहा। वह धर्म तो धर्मनिमित्तक रहा, क्योंकि धर्मसे धर्मोंकी उत्पत्ति मानी जा रही है। इसमें युक्ति सिद्धान्त सभी पहलुओंसे बाधा आती है। इससे यह कहना

Version 1

कि जैसे शब्दोंसे शब्दोंकी उत्पत्ति होती रहती है इसी प्रकार धर्मसे धर्मोंकी उत्पत्ति होती रहेगी, यह बात सिद्ध नही होती। धर्मको क्षणिक माननेके लिए ये सब कल्पनायें की जा रही हैं शंकाकार द्वारा। लेकिन, मोटा दोष तो यह है कि धर्म अधर्मको यदि क्षणिक मान लिया गया तो अन्य जन्ममें उसका फल सम्भव ही नहीं हो सकता। जो धर्म किया वह तो उत्पन्न होनेके तुरन्त बाद ही नष्ट हो गया इस कारण धर्मको अक्षणिक मानना चाहिए और प्रकृतमें शब्दको अक्षणिक मान लेना चाहिए। जब शब्द अक्षणिक हो गया, नित्य हो गया तब वह आकाशका गुण न रहा, किन्तु शब्द स्वयं द्रव्य हो गया।

अस्मदादि प्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्ट विभुद्रव्यविशेषगुणत्व हेतुमें निर्दोषताका अभाव शंकाकार कहता है कि शब्दको क्षणिक सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया है कि हम जैसे लोगोंको प्रत्यक्ष होनेपर भी विभु द्रव्यका विशेष गुण है, इस कारण शब्द क्षणिक है इस हेतुमें केवल विभु द्रव्यका विशेष गुण है, यही तो नही कहा जा रहा, किन्तु हम जैसे अल्पज्ञोंके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर विभु द्रव्यका विशेष गुण है, यह कहा जा रहा है अर्थात् हेतु है अस्मदादि प्रत्यक्षत्व विशेषणसे विशिष्ट विभु द्रव्यका गुणपना। वह हेतु धर्ममें सम्भव नही है, क्योंकि धर्म अधर्म हम जैसे अल्पज्ञोंके द्वारा प्रत्यक्ष कहाँ है? जहां ये दोनों बातें हों वहां हेतुको लगाना चाहिए। तो इस कारणसे धर्मादिकके साथ इस हेतुका व्यभिचार नही होता। उत्तरमें कहते हैं कि मत हो व्यभिचार! अर्थात् तुम्हारा हेतु धर्मादिकमें नही पहुँचा, उससे व्यभिचार न हुआ ठीक है, तो भी तुम्हारे हेतुमें ऐसी प्रबलता नही है कि वह समस्त रूपोंसे व्यावृत्त हो जाय। पूर्वरूपसे व्यावृत्तिकी असिद्धि है तुम्हारे हेतुमें। और, विशेषण वही कहलाता जो विपक्षविरुद्ध हो अर्थात् विशेष्यका जो विरोधी है उसमें हेतु न पाया जाय उसे कहते हैं विपक्ष विरुद्ध। विपक्ष विरुद्ध विशेषण ही विपक्षसे हेतुको हटाता है। जैसे किसी भी मनुष्यमें कोई विशेषण लगाया जाय तो क्यों लगाया जाता है? यों कि साधारण मनुष्योंसे उसको बचा लीजिये, अन्य सबसे इसको भिन्न और विलक्षण सिद्ध कर दीजिये! तो विपक्षविरुद्ध विशेषण विपक्षसे हेतुको हटाता है। जैसे कि एक अनुमान बनाया कि शब्द अनित्य है कादाचित्क होनेसे अर्थात् कोई शब्द उत्पन्न होता है कोई नही होता। तो जो बात कभी हो और कभी न हो वह अनित्य कहलाती है। कादाचित्क इतने भर हेतुमें थोड़ी कमजोरी आ सकती है मानो कादाचित्क होनेसे यदि अनित्य बात बन जाय तब कभी–कभी आकाश छोटे–बड़े पोलोंमें पाये जाते हैं। जैसे किसी खानमें छोटा होनेसे छोटा पोल है, उसको खोद देनेसे बड़ी पोल हो गयी। तो देखो! वह आकाश कादाचित्क रहा कि नही? पर अनित्य कहाँ है? तो इस हेतुमें हम विशेषण लगा देंगे कि सहेतुक होनेपर कादाचित्क होनेसे। अर्थात् जिसके बननेका कोई कारण हो और फिर कादाचित्क हो तो इस हेतुसे फिर आकाशमें अनेकान्तिक दोष नही आता, क्योंकि आकाश बननेका कोई कारण नही

होता। वह तो खान खोदनेका कारण है। आकाशके छोटे-बड़े होनेका कारण नही हुआ करता। तो यहां देखो इस हेतुमें जो सहेतुकत्व विशेषण दिया है वह अहेतुकत्व के विरुद्ध रहा ना ? तो अहेतुक जितनी नित्य वस्तुएं हैं उनसे हेतुको हटा देगा किन्तु इस तरह अस्मदादि प्रत्यक्षपना अक्षणिकत्वके विरुद्ध नहीं है, जिससे कि विपक्षसे हेतु को बचा देनेका प्रयत्न हो सके, क्योंकि हम लोगोंको अनेक प्रत्यक्ष हो रहे, लेकिन उनमें कोई नित्य भी होता है कोई अनित्य भी होता है। जैसे दीपक आदिक हम लोगोंको प्रत्यक्ष है लेकिन वह क्षणिक है। सामान्य आदिक हम लोगोंका प्रत्यक्ष है, किन्तु वह नित्य है। तो इसी तरह विभु द्रव्यके विशेष गुण भी कोई क्षणिक हो जायें कोई अक्षणिक हो जायेंगे। इस तरह उनमें व्यतिरेक संदिग्ध होता है। अतः तुम्हारा हेतु शब्दकी क्षणिकताको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है।

वादीके विपक्षादर्शनमात्रसे विपक्षव्यावृत्तिकी पुष्टताका अभाव—शंकाकार कहता है कि तुम्हारे अनुमानमें अस्मदादि प्रत्यक्ष विशेषण सहित विभु द्रव्य का विशेषगुण होने रूप हेतुमें हम जैसे लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष होना यह विशेषण दिया गया है, इस कारणसे नित्य धर्मादिकमें हेतुका व्यभिचार नहीं पाया जाता अर्थात् धर्म पुण्य पाप ये हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं हैं। यदि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत होते तब तो विभु द्रव्यका विशेषगुण होनेके कारण अर्थात् आत्म द्रव्यका विशेषगुण होनेके कारण धर्मको क्षणकत्व सिद्ध करनेका दोष दिया जाता और शब्दके क्षणकत्व को सिद्ध करनेमें दिए गए इस हेतुसे अनेकान्तिक दोषसे सहित बताया जाता, लेकिन धर्म आदिक हम जैसे अल्पज्ञोंके प्रत्यक्ष हैं ही नहीं इस कारण इस हेतुको विपक्षसे व्यावृत्ति बराबर सिद्ध है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। आपको अगर धर्मादिक प्रत्यक्ष नहीं हो रहे तो आपके न दिखनेसे कहीं सर्व रूपसे सद्भाव और अभावकी सिद्धि न हो जायगी। आपके न दिखनेसे यदि अभावकी सिद्धि मान ली जाय तो आपको तो परलोक भी नहीं दिख रहा। तब परलोकका भी अभाव बन बैठेगा, इसलिए आपके न दिखनेसे कोई नियम व्यवस्था बना ली जाय सो ठीक नहीं है। यदि कहो कि सभीको नहीं दिखता है तो सबको न दिखना यह बात जिस किसीमें भी कहो वह सब असिद्ध है, क्योंकि सब लोगोंको हेतुका विपक्षमें अदर्शन हो रहा है, यह बात यों निश्चय नहीं कर सकते कि सर्व प्राणियोंका निश्चय ही करना तो अशक्य है और यदि कहोगे कि हाँ हमने समझ लिया कि सभी प्राणियोंका विपक्षमें हेतुका अदर्शन हो रहा है तब फिर तुम सर्वज्ञ हो गए। यदि सब दिख गया तो तुम सर्वज्ञ हो और सब न दिखे तब फिर हेतुमें यह बल नहीं दे सकते कि यह सबको नहीं दिख रहा है विपक्षमें हेतु।

विपक्षमें हेतुके अदर्शनमात्रसे विपक्षव्यावृत्ति माननेपर शंकाकारको अनिष्टप्रसंग—तथा हेतुके विपक्षमें न दिखने मात्रसे विपक्षमें हेतुकी व्यावृत्तिकी

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्धि करोगे अर्थात् हेतु विपक्षमें नही दिख रहा है, अक्षणिक जो पुण्य पाप हैं उनमें अस्मदादिके प्रत्यक्ष होनेपर विभु द्रव्यका विशेषगुण है, यह हेतु नही दिख रहा है तो अदर्शन सामान्य मात्रसे अगर विपक्षसे व्यावृत्ति सिद्ध करने लगोगे तो आपको फिर इस हेतुको भी गमक मानना पड़ेगा। कौनसे हेतुको कि जो वेदका कुछ भी अध्ययन है वह वेदके अध्ययन पूर्वक है, क्योंकि वेदके अध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य होनेसे। जैसे–इस समयका अध्ययन देखो–वेदाध्ययन पूर्वक ही है ना तो जितने जो कुछ भी वेदाध्ययन थे वे सब वेदाध्ययन पूर्वक ही सिद्ध होंगे। और जब यह अनुमान तुम सही मान लोगे अर्थात् इस हेतुको साध्यका गमक मान लोगे तब फिर होगा क्या कि वेदाध्ययन अनादिसिद्ध हो गया। फिर ईश्वर कर्तृत्व होनेसे प्रामाण्य है यह बात न बनी। वैशेषिक सिद्धान्तमें तो सबको ईश्वरके द्वारा किया गया माना गया है और ईश्वरकृत वेद है तब वेदमें प्रमाणता है ऐसा समझा गया है लेकिन अदर्शन मात्रसे यदि विपक्षसे व्यावृत्ति मान लेते हो तो जब वेदाध्ययन वेदाध्ययन–पूर्वकताके बिना नही देखा गया तो विपक्षमें अदर्शन मात्रसे साध्यकी सिद्धि मानते हो व यों हेतुको प्रमाण मानते हो तो वहाँ भी अब वेदमें ईश्वर कर्तृत्व न रहा। और, जब ईश्वर कर्तृत्व न रहा वेद, तो प्रमाण भी न रह सकेगा। शंकाकार कहता हैं कि यह दोष तो कर्तृत्व आदिक हेतुवों में भी दिया जा सकता है अर्थात् विपक्षमें न दिखने मात्रसे यदि विपक्षमे व्यावृत्ति हेतु की मान ली जाती है तो कृतकत्व हेतुका विपक्ष है आकाश आदिक। आकाश आदिकमें कृतकत्व नही देखा गया है तो इतने मात्रसे प्रमाण अगर मान लेते हो हेतुको तो उसमें भी असंदिग्धता न रहेगी। उत्तर देते हैं कि यह उलाहना देना ठीक नही है, क्योंकि विपक्ष आकाश आदिकमें कृतकत्व हेतुके सद्भावका बाधक प्रमाण मौजूद है अतएव विपक्षमें हेतुका सद्भाव है ही नही, ऐसा पुष्ट प्रमाण मिल गया, न कि विपक्षमें अदर्शनमात्रसे हम इस हेतुको पुष्ट कर रहे हैं।

धर्मादिकमें अस्मदादि प्रत्यक्षत्वाभावकी असिद्धि—धर्मादिकके सम्बन्धमें अन्य बात एक यह है कि वह हम जैसे लोगों द्वारा प्रत्यक्ष नही है यह बात भी प्रसिद्ध नही होती, क्योंकि हम जैसे लोगोंके द्वारा अप्रत्यक्ष मान लिया जाय धर्मादिकको तो शंकाकारके यहाँ जो यह अनुमान बनाया गया है कि पशु आदिक देवदत्तके प्रति जो दौड़ रहे हैं वे देवदत्तके गुणोंसे आकृष्ट हैं क्योंकि देवदत्तके प्रति जा रहे हैं। तो यह अनुमान फिर न बन सकेगा, क्योंकि यहाँ व्याप्तिका अग्रहण है। अर्थात् जो जो उसके प्रति आकर्षित हुआ वह वह देवदत्तके गुणसे आकृष्ट है। ऐसी बात यों नही कह सकते कि धर्म आदिक तो प्रत्यक्षभूत होते नही फिर कैसे देवदत्तके गुणोंसे आकृष्ट हो रहे हैं, यह सिद्ध किया जायगा? यदि कहो कि मानस प्रत्यक्षके द्वारा व्याप्तिका ग्रहण कर लिया जायगा तब फिर यह सिद्ध हो चुका कि पुण्य–पाप आदिक हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। तब शब्दको क्षणिकत्व सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया था कि जैसे हम लोगोंके द्वारा अप्रत्यक्ष न होनेपर भी विभु द्रव्यके विशेष गुण हैं इस हेतुमें अने-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कान्तिक दोष बराबर पहिलेकी तरह बना हुआ ही है। अब शंकाकार कहता है कि हम उस हेतुके साथ एक विशेषण और लगा देंगे, क्या ? कि बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा अस्मदादि प्रत्यक्ष होनेपर विभु द्रव्यका विशेष गुण होनेसे। इसमें बाह्य इन्द्रिय शब्द और जोड़ दें तब तो धर्म आदिकके साथ अनेकान्तिक दोष न आयगा। उत्तर देते हैं कि इस हेतुमें थोड़ी यह विशेषता और जोड़ देनेपर तो दृष्टान्त साधनविकल होजायगा दृष्ठान्त दिया है सुख आदिक का। तो सुख आदिकमें फिर यह साधन पाया ही न जायगा। बाह्येन्द्रियके द्वारा कहाँ है प्रत्यक्ष सुख आदिक ? इसलिए भी हेतुमें विशेषता देनेसे दोष नही मिटाया जा सकता।

प्रथम वक्तृव्यापारसे उत्पन्न एक शब्दसे नानादिक नानाशब्दान्तरोंकी निष्पत्तिकी असिद्धि—अब शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि जो शंकाकारने यह कहा था कि वीचीतरङ्ग न्यायसे शब्दकी उत्पत्ति मानी जामी है तो यह बतलावो कि वक्ता का जो प्रथम व्यापार हुआ है, बोलने वालेने जो अपना प्रथम प्रयत्न किया है क्या उस प्रथम व्यापारसे एक शब्द उत्पन्न होता है या अनेक ? यहाँ यह पूछा जा रहा है कि वोचीतरङ्ग न्यायसे जिन शब्दोंकी उत्पत्ति कह रहे हो वे शब्द जिस प्रथम शब्दसे बने, वह प्रथम शब्द वक्ताके प्रथम व्यापारसे एक हुआ है या अनेक हुआ है ? यदि कहो कि वह शब्द एक ही उत्पन्न हुआ है तब उस एक शब्दसे नाना देशोंमें अनेक शब्दोंकी उत्पत्ति एक साथ कैसे हो जायगी ? एक शब्दसे एक शब्द उत्पन्न हो ले, पर देखा यों जाता है कि कोई वक्ता बोल रहा है तो चारों दिशाओंमें अनेक शब्द उत्पन्न हो गये। तो जब वक्ताके प्रथम व्यापारसे एक शब्द उत्पन्न हुआ तो नाना देशोंमें अनेक शब्दोंकी उत्पत्ति एक साथ सम्भव नही है। शंकाकार कहता है कि एक साथ सर्वदेशोंमें नाना शब्दोंकी उत्पत्तिमें कोई विरोध नही है. क्योंकि नाना शब्दोंकी उत्पत्तिके कारण सदा मौजूद हैं शब्दका समवायी कारण तो आकाश है। सो देखो—आकाश तो सर्वव्यापक है ही और शब्दके असमवायी कारण है सर्वदेशोंमें रहने वाले तालु आदिक व्यापारसे उत्पन्न हुए वायु और आकाशके संयोग तो ये असमवायी कारण भी सदा काल हैं इस कारणसे एक ही साथ सर्वदेशोंमें नाना शब्दोंकी उत्पत्ति हो जाय इसमें कोई विरोध नही। उत्तरमें कहते हैं कि तब तो यह भी कह दीजिये कि प्रथम शब्द नाना शब्दान्तर का आरम्भक भी नही है. क्योंकि जैसे प्रथम शब्द शब्दके द्वारा आरब्ध नही है अर्थात् प्रथम शब्दकी उत्पत्ति तो शब्दसे नही मानी, उसकी उत्पत्ति तो वक्ताके व्यापारसे मानी है। तो जो प्रथम शब्द हुआ वह तो शब्दके द्वारा अनारब्ध है. क्योंकि तालु आदिक और आकाशके संयोग आदिक असमवायी कारणसे ही उत्पन्न हो बैठे फिर उनको शब्दोंसे उत्पन्न हुआ माननेकी क्या आवश्यकता है ? और जिस तरह प्रथम शब्दकी बिना शब्दोंके उत्पत्ति हुई है वक्ताके व्यापारमात्रसे इसी प्रकार जिन शब्दोंसे कह रहे हो वे भी शब्द सर्व देशोंमें रहने वाले असमवायी कारणोंसे उत्पन्न हो जाय समवायी कारण तो सदा मौजूद है और इस तरह जब शब्दान्तरकी उत्पत्ति भी प्रथम शब्दकी तरह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समवायी कारण और असमवायी कारणसे मान ली जायगी तब यह सिद्धान्त तो न रहा जो सूत्रोंमें बतलाते हो कि शब्दकी उत्पत्ति संयोगसे होती है, विभागसे होती है। और शब्दसे भी होती है। इससे वीचीतरंग न्यायसे शब्दोंकी उत्पत्ति बताना सिद्ध नही होता।

प्रथम शब्दमें शब्दान्तरोंकी असमवायिकारणताकी असिद्धि—अब शङ्काकार कहता है कि शब्दान्तरका असमवायी कारण प्रथम शब्द ही है, क्योंकि वे अन्य शब्द प्रथम शब्दके समान ही हैं। यदि प्रथम शब्दको शब्दान्तरका असमवायी कारण न माना जाय तब फिर शब्दसे विसदृश शब्दान्तरकी उत्पत्ति होनेका प्रसङ्ग आ जायगा, क्योंकि अब नियामक तो कुछ रहा नही। वक्ताने यहाँ कुछ कहा तो समस्त विद्यार्थियोंके कानोंमें वे शब्द पहुंचे। वक्ताने जो प्रथम शब्द बोला उसीके समान ही शब्द सब विद्यार्थियोंके कानोंमें पहुंचे, तो वैसे ही शब्द क्यों पहुँचे सब विद्यार्थियोंके कानोंमें ? इसका कारण यह है कि उन समस्त शब्दोंका असमवायी कारण यह प्रथम शब्द है जो कि मुखसे बोला गया। तभी उसके अनुरूप ही सदृश ही अन्य अन्य शब्द पैदा होते गए और उन सब विद्यार्थियोंके कानोंमें सदृश ही शब्द पहुंचे, इससे सिद्ध होता है कि शब्दान्तरका असमवायी कारण प्रथम शब्द है, न कि प्रथम शब्दकी तरह उन शब्दान्तरोंका असमवायी कारण वायु आकाश आदिकका संयोग है। इससे शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति बराबर सिद्ध है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो हम यह भी कह सकते हैं कि जो प्रथम शब्द है उस शब्दकी उत्पत्ति अन्य शब्दसे मान ली जानी चाहिये अर्थात् प्रथम शब्द भी अन्य शब्दरूप असमवायी कारणसे उत्पन्न हुआ है, वह भी शब्दान्तरके सदृश है। फिर जिन शब्दोंसे इस प्रथम शब्दकी उत्पत्ति हुई है वे शब्द भी अन्य शब्दोंसे असमवायी कारणोंसे उत्पन्न हुए थे। इस तरह माना जानेपर तो कारणभूत पूर्व–पूर्व शब्द सिद्ध हो गए। सभी शब्द अपने पूर्व शब्दसे उत्पन्न हुए सिद्ध हो गए, तब फिर शब्द अनादि हो जायेंगे, शब्द संतान अनादि हो जायेगी। जब शब्दकी परम्परामें अनादिपना आ गया तो इसका कारण यह सिद्ध हो गया कि शब्दकी संतान है। जब शब्दोंकी संतान अनादि बन गई तब शब्दको क्षणिक सिद्ध करना यह तो बहुत कठिन बात हो जायगी। हो ही नही सकता फिर शब्द क्षणिक सिद्ध ! इस कारण शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति होती है यह विकल्प प्रस्तुत करना योग्य नही है, किन्तु शब्द जो बोले जाते हैं वे शब्द ही इतने महान विस्तार वाला परिमाण लिए हुए हैं कि ये शब्द कर्ण प्रदेशमें जाते हैं और उन शब्दों को सुन लेते हैं इससे शब्द क्षणिक नही है और न शब्द आकाशका गुण है जिससे आकाश पदार्थकी शब्दलिंग रूपमें सिद्धि की जा सके।

शब्दान्तरोंकी उत्पत्तिमें असमवायी कारणरूपसे कल्पित वक्तृव्यापारज अनेक शब्दकी एक प्रयत्नसे अनिष्पत्ति—शंकाकार कहता है कि प्रथम शब्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही जो कि प्रतिनियत स्वरूप वाला है और प्रतिनियत वक्ताके व्यापारसे ही उत्पन्न हुआ है ऐसा प्रथम शब्द ही अपने सदृश शब्दान्तरको उत्पन्न करदे इसमें क्या आपत्ति है ? समाधानमें कहते हैं कि तब तो फिर असमवायी कारणरूपसे प्रथम शब्दको भी माननेकी क्या आवश्यकता है ? प्रतिनियत वक्ताके व्यापारसे और उस वक्ताके प्रयत्न से हुए प्रतिनियत वायु आकाशके संयोगसे सदृश नये-नये शब्दोंकी उत्पत्ति सम्भव हो जायगी. इस कारण एक शब्द शब्दान्तरको उत्पन्न करने वाला है यह बात तो सिद्ध होती नही है । यह बात पूछी गई थी वीचीतरंग न्यायके कहनेपर कि यदि वीचीतरंग न्यायसे शब्दोंकी उत्पत्ति मानी जाय तो यह बतलावो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे जो शब्द उत्पन्न होना मान रहे हो वह एक है या अनेक ? इन दो विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पकी तो सिद्धि हुई नही, अब यदि द्वितीय विकल्प मानोगे कि वक्ताके व्यापारसे अनेक शब्द उत्पन्न होते हैं जिससे कि शब्दान्तरकी उत्पत्ति होती है तो यह बात यों युक्त नही बैठती कि एक तालु आदि व आकाशके संयोगसे अनेक शब्दोंकी उत्पत्ति सम्भव नही होती । ऐसा भी नही है कि एक वक्ताके एक ही बारमें तालुक आदिकके व्यापारसे जनित वायु व आकाशके संयोग अनेक सम्भव हो जायें । इसका कारण यह है कि वक्ताका प्रयत्न तो एक है ना ! एक प्रयत्न होनेपर तालु आदिकका प्रयत्न एक हुआ तब वायु आकाशका संयोग भी प्रतिनियत एक होगा । यह भी नही कह सकते कि प्रयत्नके बिना ही तालु वायु आदिका व आकाशका संयोग बन जाय, क्योंकि वह तो तालु आदिकी क्रियापूर्वक ही होता है । उन सब तालु आदि स्थानोंमेंसे किसी भी स्थानकी क्रियासे यह असमवायी कारणका योग मिलता है । इस कारण अनेक शब्द उत्पन्न हो ही नही सकते ।

आद्य शब्द द्वारा स्वदेशमें शब्दान्तरोंके रचे जानेमें आपत्तियां—अथवा जिस किसी भी प्रकार मान लो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे अनेक हैं और वे अनेक शब्द शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं, तो यहाँ यह बतलावो कि यह शब्द अपने ही देशमें अर्थात् शब्दकी जहाँ उत्पत्ति हुई है उसी प्रदेशमें शब्दान्तरोंको उत्पन्न करता है या देशान्तरमें शब्दको उत्पन्न करता है ? यहाँ यह पूछा गया है कि वक्ताके व्यापारसे उत्पन्न हुए वे अनेक शब्द जो शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं तो उन शब्दोंको कहाँ उत्पन्न करते हैं ? अपने ही स्थानमें, अर्थात् तालु आदिककी जगहमें ही शब्दांतरको रचता है या अन्य देशमें, अपनी उत्पत्तिके स्थानसे भिन्न दूर अन्य देशमें शब्दांतरको रचता है ? यदि कहो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे उत्पन्न हुआ वह शब्द अपने ही देशमें, तालु आदिक स्थानमें ही शब्दान्तरको रचता है, तब तो अन्य देशमें शब्दोंकी उपलब्धिका अभाव हो जायगा । जब इन शब्दोंने अपने ही स्थान में शब्दान्तरोंको रचा तो तो अन्य देशमें जो शब्दकी उपलब्धि होती है, दूरके मनुष्य भी शब्द सुन लिया करते हैं तो उन शब्दोंकी उपलब्धिका अभाव हो जायगा, फिर अन्य देशमें शब्द न पाये जाने चाहियें ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वस्थानस्थ आद्य शब्द द्वारा देशान्तरमें शब्दान्तरोंको रचे जानेसे आपत्तियाँ—यदि कहो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे उत्पन्न हुआ शब्द देशान्तरमें शब्दान्तरको रचता है तो यहाँ दो विकल्प उत्पन्न होते हैं कि वह प्रथम शब्द क्या देशान्तरमें जा करके उन शब्दान्तरोंको रचता है या अपने ही स्थानमें ठहरा हुआ ही शब्द अन्य देशमें शब्दान्तरको रचता है? यहाँ प्रकरणकी बात यह चल रही है कि शब्दको आकाशका गुण मानने वाले वैशेषिक लोग शब्दको क्षणिक मानते हैं और क्षणिक माननेपर जब यह आपत्ति सामने आती है कि फिर तो शब्द दूसरोंको सुनाई न देने चाहिए, क्योंकि एक तो शब्द क्षणिक माने गए, दूसरे—शब्दोंको गुण माना गया है। गुण हुआ करते हैं निष्क्रिय। तो शब्द जब क्षणिक माना और निष्क्रिय माना तो शब्द कानोंके पास कैसे सम्बन्धित होते हैं? उस आपत्तिके निवारणार्थ शंकाकार अपने विचार रखता चला जा रहा है। शब्दोंसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति माननेका शंकाकारका प्रस्ताव चल रहा है और उस ही के विरोधमें विकल्पोंके रूपसे पूछा जा रहा है कि यह बतलावो की वक्ताके व्यापारसे उत्पन्न हुए शब्द दूर देशमें जा जाकर श्रोताओंके कानोंमें पहुच-पहुँचकर शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं या अपने ही तालु आदिक शब्दोंमें ठहर कर अन्य देशमें शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं? यदि कहो कि वक्ताके व्यापारसे उत्पन्न हुआ वह प्रथम शब्द अपने ही स्थानमें ठहरा हुआ रहकर ही अन्य देशमें शब्दान्तरोंको उत्पन्न करता है तब तो यह बतलावो कि जब शब्द अपनी उत्पत्तिके स्थानोंमें रहकर ही दूर देशमें शब्दान्तरोंको उत्पन्न करता है तो लोकके अन्तमें भी बहुत दूर तक लोकके आखिरी हिस्से तक क्यों नही शब्दांतरोंको उत्पन्न कर देता? फिर तो शब्दोंमें लोकांतरमें भी शब्दको उत्पन्न करनेकी बात आ जायगी और, जब शब्द अपने ही देशमें रहकर अन्य देश देशमें शब्दांतरोंको उत्पन्न करने लगे तो अदृष्ट भी सर्व देशमें रहता हुआ ही अन्य देशमें रहने वाले मणिमुक्ता आदिक वैभवोंको उत्पन्न करदे, इसमें क्यों आपत्ति करते हो? वैशेषिक सिद्धांतने यह माना है कि आत्माका अदृष्ट चारों ओर घूमकर रहकर अथवा आत्मा व्यापक है तो अदृष्ट भी व्यापक है, तब तो अदृष्ट सारे लोकमें है। तो जिस जगह भी मणिमुक्त सम्पदा वैभव होंगे वहांसे खींच कर जिन्होंने धर्म किया है उन जीवोंके पास ला देता है। तो अदृष्टको भी बाहरसे इन पदार्थोंके आकर्षण करनेकी क्या जरूरत रही? अदृष्ट भी सर्व देशोंमें रहते हुए ही बाहरसे मणिमुक्ता आदिक वैभवोंका आकर्षण करके जीवोंको सौंप दें। जबकि अपने तालु आदिक स्थानोंमें रहते हुए ही शब्दोंके अन्य देशमें शब्दांतरोंका उत्पादक मान लिया है। यदि अदृष्टको भी ऐसा मान बैठोगे कि अदृष्ट अपने शरीर देशमें रहता हुआ ही अन्य देशोंमें रहने वाले मणि मुक्ता आदिक फलोंका आकर्षण करता है तब तो शङ्काकारके सिद्धान्तमें, सूत्ररूपमें जो बात कही है कि "पुण्य पाप अपने आश्रयसे संयुक्त अन्य आश्रयमें अपनी क्रियाको करते हैं" इसका विरोध हो जायगा।

देशान्तरमें जाकर आद्य शब्द द्वारा देशान्तरमें शब्दान्तरोंको रचे जाने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के मन्तव्यकी मीमांसा—तथा इस प्रसंगमें यह विचार करनेकी बात है कि वीची तरंग न्यायके कर देनेपर भी कार्यदेशमें प्राप्त हुए बिना देशान्तरकी आरम्भकता नही देखी जा सकती। जैसे समुद्रकी तरंगें भी कुछ तो आगे बढ़ती हैं तब वे अन्य तरंगों को पैदा कर करके कार्यदेश तक पहुचती हैं अथवा वही एक तरंग अन्य अन्य तरंग रूपसे परिणत होता हुआ कार्य देश तक पहुंच जाता है। तो वीची तरङ्ग आदिकमें भी यह नही देखा गया कि उत्तर तरङ्गके देशमें पहुँचे बिना उत्तर तरङ्गोंका आरंभक बन गया हो। समुद्रकी लहर भी जिस जगह उठी ठीक उसी जगह ही रहकर तो अगली लहरको उत्पन्न नही करती, वह भी थोड़ी दूर जाकर नवीन लहरको उत्पन्न करती है। तो और अधिक नही तो दूसरी लहरके स्थान तक पहुँचकर टक्कर लेती तो प्रथम लहरसे आवश्यक हुआ ना, तो इस तरह शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति भी मानो वीची तरङ्गसे तो इतना वहाँ भी मानना पड़ेगा कि शब्दान्तरोंके स्थान तक पूर्व शब्दका पहुंचना आवश्वक है और उनसे संयोग करके शब्दांतरोंका उत्पादक बनेगा। इतनेपर भी तो शब्दको सक्रिय मानना पड़ा ना, और जो क्रियावान होता है वह गुण नही होता, द्रव्य होता है। तब शब्द जब गुण न रहा तो शब्द गुणके माध्यमसे जो आकाश पदार्थसे सिद्ध कर रहे थे वह भी कैसे सिद्ध हो सकता है? यदि यह कहो कि वह पूर्व शब्द देशांतरमें जाकर शब्दांतरको उत्पन्न करता है तो ठीक है, सिद्ध हो गया ना, कि शब्द क्रियावान है। शब्द अन्य देशमें गया और जाकर उसने शब्दांतरको उत्पन्न किया तो जानेकी क्रिया तो बनी और जो क्रियावान होता है वह द्रव्य होता है, गुण नही होता। तो शब्दमें क्रियावत्व सिद्ध हो गया और क्रियावत्व सिद्ध होनेसे शब्दमें द्रव्यत्व सिद्ध हो गया। शब्द द्रव्य है, क्रियावान होनेसे।

शब्दको आकाशगुण माननेपर शब्दकी प्रत्यक्षताके अभावका प्रसङ्ग—और भी सुनो! शब्दको यदि आकाशका गुण मान लिया जाता है तब फिर हम जैसे लोगोंको उसका प्रत्यक्षपना न होना चाहिये! क्योंकि जिसका गुण माना गया है शब्द वह तो अत्यन्त परोक्ष है। फिर परोक्ष आकाशके गुणरूप शब्दकी प्रत्यक्षता कैसे बन सकेगी? जो जो अत्यन्त परोक्ष गुणीके गुण होते हैं वे हम लोगोंको प्रत्यक्ष नही हो सकते। जैसे परमाणुके रूप, रस आदिक। परमाणु जो निरंश है एक प्रदेशी है, उसके रूप, रस आदिकको कौन समझता है? किसी भी इन्द्रियसे परमाणुका रूप रस आदिक नही जाना जा सकता। यहाँ जो भी रूप नजर आते हैं वे अनन्त परमाणुवों के स्कन्धोंमें नजर आते हैं। परमाणु तो अत्यन्त परोक्ष है। तो उसमें रहने वाले रूप आदिक गुण हम लोगोंको कहाँ प्रत्यक्ष हो जायेंगे? तो जो अनन्त परोक्ष द्रव्यके गुण होते हैं वे हम लोगोंको प्रत्यक्ष नही हो सकते। ऐसी ही आकाशकी बात है। आकाश तो परोक्ष द्रव्य है। आकाश किसी भी इन्द्रियसे नही जाना जाता। तो ऐसे परोक्ष आकाशके गुण हम लोगोंको प्रत्यक्ष नही हो सकते। और शब्दको आकाशका गुण माना है विशेषवादमें, अतः शब्द हम लोगोंको कभी भी प्रत्यक्षमें न आना चाहिये।

http://sahjanandvarnishastra.org/

शंकाकार कहता है कि यह जो अनुमान बनाया कि जो अत्यन्त परोक्ष गुणीके गुण होते हैं वे हम लोगोंको प्रत्यक्ष नही हो सकते। तो इसका वायुके स्पर्शके साथ व्यभिचार होता है अर्थात् स्पर्श तो गुण है किन्तु हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष होता है। उत्तर देते हैं कि वायु कहो अथवा वायुस्पर्श कहो ये परोक्ष द्रव्य नही हैं किन्तु प्रत्यक्ष हैं। यहाँ तो परोक्ष गुणीके गुणोंकी बात कही जा रही है। जो परोक्ष गुणीके गुण होते हैं वे हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षमें नही आ सकते। वायुस्पर्श तो प्रत्यक्ष है, उसके साथ इस हेतुका व्यभिचार नही हो सकता।

प्रत्यक्षभूत होनेके कारण शब्दके आकाशगुणत्वका अभाव—और भी देखिये कि शब्दको यदि गुणमान लिया जाता है और शब्दको हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष भी माना जाता है तब तो यह विचार करना चाहिए पक्ष छोड़कर कि जब शब्द हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञानमें आता है तो शब्द परोक्षभूत आकाश द्रव्य विशेषका गुण नही बन सकता। जो चीज हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत हो वह कभी भी अत्यन्त परोक्ष गुणीका गुण नही हो सकता। जैसे घटके रूपादिक ये हम लोगोंको प्रत्यक्ष हो रहे हैं तो ये रूप परोक्ष गुणीके गुण नही हो सकते। घटका रूप घटका गुण है ना, तो घट परोक्ष है और गुण प्रत्यक्षमें आ रहा है। वह गुण परोक्ष गुणीका गुण नही हो सकता ऐसा कभी भी नही हो सकता कि गुणी तो परोक्ष रहे और उसका गुण प्रत्यक्षमें आ जाय। गुणी और गुणमें स्वरूप प्रयोजन आदिकका भेद तो है पर पार्थक्य नही है। बल्कि जितना जो कुछ भी ज्ञानमें आता है वह गुण नही आता किन्तु पदार्थ ज्ञानमें आया करता है। हाँ पदार्थ ही रूपमुखेन ज्ञानमें आया. रसमुखेन ज्ञानमें आया। जिस किसी भी प्रकार ज्ञानमें आय: तो वह विशेषता नो न्यारी हुइ समझनेके लिए, पर रूप रस आदिक स्वतंत्र कुछ पदार्थ हो और घट आदिक स्वतंत्र पदार्थ हो ऐसी बात नही हो सकती। शब्द भी जब हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षमें आ रहा है तो वह अत्यन्त परोक्ष गुणीका गुण नही हो सकता इसी प्रकार शब्द परोक्षभूत आकाशका गुण नही बनता और शब्दलिङ्गसे ही किसीके विशेषवादकी सिद्धि की जाती है। तो जब शब्द आकाश का लिङ्ग न रहा तो नित्य निरंश शब्दलिङ्ग आकाशनामक पदार्थकी सिद्धि नही हो सकती है। जब इस एकान्त पदार्थकी सिद्धि नही है तो समझना चाहिये कि जगतमें जो भी पदार्थ होते हैं वे सामान्य विशेषात्मक होते हैं। केवल सामान्य सामान्य, केवल विशेष विशेष ज्ञेयभूत पदार्थ नही होता।

शब्दको आकाशगुणत्व सिद्ध करनेके लिये कहे गये हेतुकी असिद्धि और व्यभिचारिता—शंकाकार कहता है कि शब्द तो आकाशका ही गुण है क्योंकि शब्द द्रव्यरूप तो है नही, कर्मरूप है नही फिर भी सत्तासे सम्बन्धित है। जिसमें सत्ताका सम्बन्ध होता है वे तीन प्रकारके पदार्थ हैं—द्रव्य, कर्म और गुण, सो शब्दमें सत्ताका सम्बन्ध तो है। सभी लोग जानते हैं कि शब्द सत्त्व विशिष्ट हैं और वह द्रव्य कर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है नही तो पारिशेष्य न्यायसे यह सिद्ध हो गया कि शब्द गुण है। इस सम्बन्धमें समाधान करते हुए शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि शब्दमें जो सत्ताका सम्बन्धित्व है वह क्या स्वरूपभूत सत्तासे सम्बन्धिपना है या भिन्न सत्तासे सम्बन्धिपना है ? यदि कहो कि स्वरूपभूत सत्तासे सम्बन्धित्व है शब्दका तो ऐसा माननेमें सामान्य आदिक पदार्थों के साथ व्यभिचार हो जाता है। शंकाकारके अनुमानमें यह हेतु दिया गया कि के "जो द्रव्य और कर्मरूप तो हो नही फिर भी सत्तासे सम्बन्धित हो" सो यहाँ सत्ता माना है स्वरूपभूत तो सामान्य, विशेष, समवाय ये तीन पदार्थ भी द्रव्य नही, कर्म नही, साथ ही स्वरूपभूत सत्तारूप है। सामान्य, विशेष, समवायमें भिन्न सत्त्व गुणका सम्बन्ध होता हो सो तो नही माना, किन्तु यह स्वयं स्वरूपभूत सत्रूप है तो ये भी गुण कहलाने लगे, लेकिन द्रव्यकर्म, भाव न होनेपर भी और स्वरूपभूत सत्तासे सम्बन्धित होने पर भी सामान्य, विशेष, समवायको गुण नही माना गया है। यदि कहो कि भिन्न सत्तासे सम्बन्धित है, जैसे कि द्रव्यमें भिन्न सत्ताका सम्बन्ध होता है तो यह द्रव्यसत् कहलाता है इसी प्रकार कर्म और गुण भी भिन्न सत्तासे समवेत होते हैं तब ये सत् कहलाते हैं इसी प्रकार शब्दोंमें भी भिन्न सत्ताका सम्बन्ध है यह कहना तो बिल्कुल अयुक्त है। कारण यह है कि यह बतलावो कि सत्ताका सम्बन्ध जिन शब्दोंमें किया गया है वे शब्द स्वयं असत् हैं या स्वयं सत् हैं, सत्ताका सम्बन्ध होनेसे पहिले इन शब्दों का स्वरूप क्या है ये सद्रूप हैं या असद्रूप ? स्वयं असत् होकर फिर ये अर्थान्तर भूत सत्तासे सम्बन्धित हों और फिर ये शब्द सत् कहलायें तो ऐसा माना जानेपर कि जब असत्से भी सत्ताका सम्बन्ध माना गया है तो अश्वविषाण, गगन कुसुम आदिक असत् पदार्थोंमें भी सत्ताका सम्बन्ध हो बैठे और सत् बन जायें। इससे ऐसा सोचना बिल्कुल विपरीत है कि ये द्रव्य गुण, कर्म जब अर्थान्तरभूत सत्तासे सम्बन्धित होते हैं तो सत् कहलाते हैं। यदि कहो कि सत्ता सम्बन्धसे पहिले ही शब्द सत् हैं तो अब सत् में सत्ताके सम्बन्धकी आवश्यकता ही क्या है। शब्द ही क्या कोई भी सत्भूत पदार्थ भिन्न सत्तासे सम्बन्धित होकर सत् नही कहलाता जो भी है वह स्वरूपतः है। है इसी के मायने सत् है, उसमें सत्ताके सम्बन्ध करने की कल्पना क्यों की जाती है ?

शब्दके एकद्रव्यत्वकी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि शब्द तो द्रव्य नही कहला सकता, क्योंकि वह एक द्रव्य वाला है। देखो ! जो किसी एक द्रव्यका आश्रय रखता है वह द्रव्य नही कहलाता। जो द्रव्यके आश्रित हुआ करता है वह गुण ही कहलाता है। तो एक द्रव्य वाला होनेसे शब्द द्रव्य नही हो सकता। जैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श एक द्रव्य वाले हैं तो वे द्रव्य तो न कहलायेंगे, गुण हैं। तो यों शब्द भी द्रव्य नही है। समाधानमें कहते हैं कि इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है, एक द्रव्यपना वह हेतु असिद्ध है। शब्द एक द्रव्य वाला है, यह बात कब सिद्ध हुई ? कि जब यह विदित हो जाय कि शब्दमें गुणपना है और वह शब्द गुण आकाशमें ही एक द्रव्यमें ही समवाय सम्बन्धसे रहता है। ये दो बातें जब सिद्ध हो लें तब आप यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध कर सकते हो कि शब्द एक द्रव्य वाला है, लेकिन न तो यही सिद्ध होता कि शब्द गुण है और न यही सिद्ध हो सकता कि शब्द आकाशमें ही सम्वेत रहता है। इस कारण एक द्रव्यत्व हेतु देकर शब्दको सिद्ध करना बिल्कुल अयुक्त बात है।

शब्दको एकद्रव्यत्व सिद्ध करने वाले अनुमानमें प्रत्यनुमानसे बाधा— शङ्काकार कहता है कि शब्द एक द्रव्य वाला है, यह बात हेतुसे सिद्ध है। शब्द एक द्रव्य वाला है, क्योंकि सामान्यविशेषवान होकर भी शब्द बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होता है। जैसे कि रूप आदिक हैं। वे सामान्यविशेषवान होकर चक्षु इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं, अन्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं तो वे एक द्रव्यवाले हैं, इससे शब्द भी एक द्रव्य वाला है। समाधानमें कहते हैं कि तुम्हारा यह अनुमान पुष्ट प्रत्यनुमानसे बाधित है। शब्द अनेक द्रव्य वाले हैं अथवा शब्द स्वयं अनेक द्रव्य हैं, क्योंकि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेपर भी स्पर्शवान हैं शब्द। जैसे घट पट आदिक हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं और स्पर्शवान हैं इस कारण घट पट आदिक अनेक द्रव्य हैं, अनेक परमाणुवोंके पिण्ड हैं और वे सब कार्य द्रव्य कहलाते हैं। तो तुम्हारा अनुमान प्रत्यनुमानसे बाधित है।

शब्दको एकद्रव्यत्व सिद्ध करनेके लिये शंकाकार द्वारा कहे गये हेतुमें व्यभिचार— साथ ही तुम्हारे अनुमानमें दिया गया सामान्यविशेषवान होकर भी वाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष है यह हेतु वायुके साथ व्यभिचरित होता है। देखो, वायु सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है फिर भी वह एक द्रव्य वान नहीं है। साथ ही आपका हेतु चन्द सूर्य आदिकके साथ भी व्यभिचरित है अर्थात् ये चन्द्र सूर्य आदिक हम लोगोंके द्वारा एक चक्षु इन्द्रियसे ही तो जाने जा रहे हैं और सामान्यविशेषवान भी हैं लेकिन ये एक द्रव्यवान नहीं हैं। ये चन्द्र सूर्य स्वयं द्रव्य हैं अथवा अनेक द्रव्य हैं, अनेक परमाणुवोंके पुञ्ज हैं तो इस प्रकार शब्दसे एक द्रव्यत्व सिद्ध करनेमें शंकाकारने जो हेतु दिया है वह अनैकान्तिक हेतु है। यदि यह कहो कि वायु अथवा चन्द्र सूर्य ये हम लोगोंसे विलक्षण उत्तम जो योगीजन हैं उनके द्वारा अन्य बाह्य इन्द्रियोंसे भी ये सब जान लिए जाते हैं। वायु चन्द्र सूर्य इनको यद्यपि हम लोग बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा परख पाते हैं। जैसे वायुसे स्पर्शनइन्द्रियको जाना, चन्द्र सूर्यको चक्षुइन्द्रियसे जाना, लेकिन योगीजन तो अन्य इन्द्रियोंके द्वारा भी उन्हें जान लेते हैं, इस कारण हेतु व्यभिचरित नहीं हुआ। अर्थात् शब्दको एक द्रव्यत्व सिद्ध करनेमें जो हेतु दिया गया है कि बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष है सो अब ये चन्द्र सूर्य वायु एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष तो न रहे, किन्तु अन्य इन्द्रियके द्वारा भी वे प्रत्यक्ष हो गए। समाधानमें कहते हैं कि फिर तो यही बात शब्दमें भी घटा लीजिये। शब्द हम लोगोंके द्वारा कर्णइन्द्रियसे ही प्रत्यक्षभूत है, लेकिन हम जैसे अल्पज्ञोंसे विलक्षण उत्तम योगियोंके द्वारा अन्य बाह्य इन्द्रियके द्वारा भी प्रत्यक्षभूत हो जाता है। यदि कहो कि शब्दमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो यह बात नही पायी जाती तो ऐसे ही हम चन्द्र सुर्य वायुके सम्बन्धमें भी कह सकते कि उनका भी किसीके द्वारा भी अन्य बाह्य इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नही हुआ करता है।

शब्दके गुणत्व और आकाशाश्रयत्वकी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि शब्दका गुणपना इस हेतुसे भी सिद्ध है कि शब्द गुण है, क्योंकि सामान्य विशेषवान होकर भी बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है जैसे कि रूप आदिक। रूप आदिक सामान्य विशेषवान हैं। और, फिर देखो ! बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा ही प्रत्यक्षभूत होता है इस कारण गुण माना गया है ना, तो यही बात शब्दमें है इस कारण शब्द भी गुण है। समाधानमें कहते हैं कि तुम्हारे इस हेतुका वायु आदिकके साथ व्यभिचार आता है अर्थात् वायु भी देखो, सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है, लेकिन गुण नही है। यदि वायु भी गुण बन बैठे अथवा आप मान लें कि वायु भी गुण सही, उसे भी हम पक्षमें लेते हैं तो इस तरह द्रव्य संख्याका विघात हो जायगा अर्थात् गुण माने गये हैं वैशेषिक सिद्धान्तमें २४, लेकिन अब यह गुण उनसे अतिरिक्त हो गया। अथवा ९ द्रव्योंमेंसे एक वायु नामके द्रव्यको हटा दिया और उसे गुणमें सामिल कर दिया। ८ द्रव्य रह गए तब पृथ्वी, जल, अग्नि ये भी तो वायुकी ही तरह सामान्य विशेषवान होकर एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत होते रहते हैं, ये भी गुण बन बैठेंगे तब तो द्रव्य ५ ही रहे। तो यों अनेक तरहसे पदार्थोंकी संख्या का विघात हो जायगा। इससे शब्द गुण नही है और फिर जब शब्द गुण न रहे तो यों कहना कि जो शब्द गुणका आश्रयभूत है वह पारिशेष्य न्यायसे आकाश कहलाता है यह कैसे गुण हो सकता है। अर्थात् शब्द न तो गुण है और न यह आकाशसे सम्बन्धित है। शब्दका न तो आकाश उपादान है और न निमित्त है। कार्योंमें जो तीन कारण माने हैं—समवायी कारण, असमवायी कारण, निमित्त कारण, ये तीन ही कारण शब्दके ठीक नहीं बैठते आकाशका गुण माननेपर अर्थात् शब्दका आकाश समवायी कारण नही है। वायु और आकाशका संयोग शब्दका असमवायी कारण नही। इसी प्रकार अन्य अन्य पदार्थ जो शब्दको आकाशका गुण माननेकी स्थितिमें निमित्त कारण माने इस तरहसे वे पदार्थ निमित्त कारण भी सिद्ध नही होते। तब यह सिद्ध हुआ कि शब्द गुण नही है और न शब्दलिङ्गसे आकाश पदार्थकी सिद्धि होती है।

शब्दकी स्पर्शवद् द्रव्य पर्यायरूपता - शंकाकारने जो यह कहा कि शब्द स्पर्शवान परमाणुवोंका गुण नही है, यों शंकाकारने शब्दको अन्य द्रव्योंके गुणत्वके निराकरण प्रसंगमें सर्व प्रथम यह कहा है कि शब्द स्पर्शवान परमाणुवोंका गुण है, सो समाधान इसका यह है कि यह तो सिद्ध साधन है। हम भी मानते हैं कि शब्द स्पर्शवान परमाणुवोंका गुण नही है, किन्तु शब्द तो स्वयं पर्याय है। शब्द तो गुण ही नही जिससे कि यह खोजा जाय कि शब्द इसका गुण है इसका नही। वह तो द्रव्य पर्याय है, विशिष्ट जातिके परमाणु पुञ्ज स्कंधकी यह द्रव्य पर्याय है, पर्यायको भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुण शब्दसे कभी कभी कहा जाता है यों गुण कहें तो शब्द परमाणुओंका गुण नही है शब्द तो स्कन्धोंका गुण है याने परिणमन है। और भी देखिये जैसे शब्द हम लोगों के प्रत्यक्षमें आ रहे हैं तो शब्द तो प्रत्यक्षमें आ रहे और उसका परमाणु विशेषगुणत्व के साथ विरोध है, अर्थात् जो प्रत्यक्षमें हमारे आ रहा है वह परमाणुका विशेषगुण नही हो सकता। सो जिस तरह हम लोगोंके प्रत्यक्षमें शब्द आ रहा और वह परमाणु का विशेष गुण नही है प्रत्यक्ष होनेमें और परमाणुके विशेषगुण होनेमें परस्परमें विरोध है इसी प्रकार हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आ रहे हैं शब्द इस कारण आकाशके विशेष गुणपनाका भी विरोध है। अर्थात् चूंकि शब्द भी प्रत्यक्षमें आ रहा इस कारण आकाशका विशेषगुण नही हो सकता। उसका अनुमान प्रयोग है कि शब्द नत्यन्त परोक्षभूत आकाशका विशेषगुण नही होता, क्योंकि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षमें आ रहा है। जैसे कि कार्य द्रव्यके रूपादिक हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आ रहे हैं तो वे रूप आदिक आकाशके विशेष गुण नही हैं और न किसी अन्य परोक्ष पदार्थके गुण हैं। ऐसा भी नही हो सकता कि हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आये इस कारण परमाणुका विशेष गुण तो न रहे और शब्दका आकाशका विशेषगुण बन जाय। जब परोक्षका गुण, परमाणुका गुण प्रत्यक्षमें नही आ सकता तो परोक्ष आकाशका गुण कभी प्रत्यक्षमें नही आ सकता और, जो प्रत्यक्षमें आ रहा वह परोक्षभूत आकाशका विशेष गुण हो ही नही सकता। जैसे कि परमाणुका गुण रूप आदिक हम लोगोंके प्रत्यक्षमें नही आता इसी प्रकार आकाशका गुण महत्त्व आदिक भी प्रत्यक्षमें नही आता। शब्द यदि आकाशका गुण होता तो वह भी प्रत्यक्षमें न आ सकता था लेकिन आ रहा है सब उस प्रत्यक्षमें कर्ण-इन्द्रियके द्वारा समझा जा रहा है शब्द, तो वह किसी भी परोक्ष द्रव्यका गुण नही बन सकता।

शब्दमें स्पर्शवद्द्रव्यगुणत्वके निषेधके लिए शङ्काकार द्वारा कहे गए प्रथम हेतुकी सदोषता—शंकाकार कहता है कि यदि स्पर्शवान परमाणुवोंका शब्द गुण नही है, इसे सिद्धसाधन मानकर इसका निराकरण किया सो ठीक है, साथ ही वह भी मानना पड़ेगा कि शब्द कार्य द्रव्योंका भी गुण नही है, क्योंकि कार्य द्रव्यांतर से शब्दकी उत्पत्ति नही होती है। और, उत्पन्न होता ही है शब्द, सो आकाशका गुण मानना होगा। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। शब्द आकाशका गुण तो हो नही सकता, इसका निराकरण तो अभी अभी किया है और मानते हो यह कि कार्यद्रवतांतरसे शब्दकी उत्पत्ति न होगी और शब्द है सो जरूर, उसकी उत्पत्ति है है अवश्य। इसे शंकाकार भी मान रहा तो इसका निष्कर्ष यह निकल बैठेगा कि शब्द निराधार गुण है। शब्द उत्पन्न तो हुआ है और गुण भी माना जा रहा है, आकोशका गुण है नही, कार्य द्रव्यसे उत्पन्न होता नही। तब यह निष्कर्ष मानना पड़ेगा कि शब्द निराधार गुण होता है, और ऐसा माननेपर कि शब्द निराधार गुण है तो निराधार गुण जब होने लगे तब तुम्हारे इस सिद्धान्तमें दोष आयगा कि "बुद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आदिक गुण किसी न किसी द्रव्यमें रहते हैं, गुण होनेसे।" देखो ! शब्द गुण है और किसीमें नहीं रह रहा है तो तुम्हारे सिद्धान्तका ही घात हो जायगा। इससे मानना चाहिए कि शब्दकी उत्पत्ति कार्यद्रव्यांतरोंसे है। और वह कार्यद्रव्यांतर क्या है? परमाणुवोंका पुञ्जरूप भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कंध, उनसे शब्द पर्यायकी उत्पत्ति होती है, उसे तुम गुण मान रहे, मानो, गुण भेदको भी कहते हैं, पर इतना मानना ही होगा कि शब्दकी उत्पत्ति परमाणुवोंके पुञ्जरूप किसी कार्य द्रव्यान्तरसे हुआ करती है।

शब्दमें स्पर्शवान द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिए शङ्काकार द्वारा कहे गए द्वितीय हेतुकी सदोषता—पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंका गुण शब्द नहीं है, इसकी सिद्धिमें दूसरा हेतु शङ्काकारने यह दिया था कि शब्द अकारण गुणपूर्वक है, इस कारण शब्द कार्यद्रव्य पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नहीं हैं, अकारण गुणपूर्वकका अर्थ बताया था कि अकारण हुआ आकाश और उसके गुण हुए महत्त्व आदिक, तत्पूर्वक शब्दकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ बताया गया कि कारण है आकाश, उसका गुण कहलाया कारणगुण। कारणगुण जिस शब्दमें नहीं है उसे कहते हैं अकारण गुणपूर्वक। तो शब्द यों अकारण गुणपूर्वक है। जैसे कि पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंमें परमाणुरूप कारणके गुण आया करते हैं रूप रस आदिक इस तरह शब्दकी बात नहीं है। तो यों अकारण गुणपूर्वक होनेसे शब्द कार्यद्रव्योंके गुण नहीं हैं। कार्यद्रव्योंके जो गुण हुआ करते हैं वे कारण गुणपूर्वक होते हैं। जैसे घट पट आदिकमें जो रूप रस आदिक पाये जारहे हैं ये सब कारण गुणपूर्वक हैं, इसके कारण में जो गुण है सो ही कार्यमें आया, पर शब्दमें ऐसा नहीं है। शब्दके कारणोंका गुण शब्दमें नहीं आता, इस कारण मानना होगा कि शब्द कार्यद्रव्योंका विशेष गुण नहीं, किन्तु आकाश द्रव्यका विशेष गुण है। समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका अकारण गुणपूर्वकत्व हेतु असिद्ध है। शब्द अकारणगुणपूर्वक नहीं होता, क्योंकि वह हम लोगों के बाह्येन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होनेपर गुणस्वरूप है। जो जो पदार्थ हम लोगोंके बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है और फिर गुणरूप है, वे अकारण गुणपूर्वक नहीं होते अर्थात् कारणगुणपूर्वक होते हैं। जैसे कि कपड़ेका रूप रस आदिक, कपड़ेका रूप रस हम आप लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है। रूप चक्षु इन्द्रियसे जाना जाता है, रसको रसनेन्द्रियसे जानते हैं। साथ ही रूप गुण है तो देखो, पटका रूप कारण गुणपूर्वक है ना. अर्थात् पट रूप कार्यद्रव्यके कारण है परमाणु. परमाणुमें रूप रस आदि गुण होते हैं, तत्पूर्वक कपड़ेमें भी रूप रस उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार शब्द भी हम आप लोगोंके बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है, कर्ण इन्द्रियसे उसका ज्ञान होता है और गुण माना गया है तो वह भी अकारण गुणपूर्वक नहीं है, कारण गुणपूर्वक है। शब्दके कारणभूत पदार्थ है स्कंध, उसमें जो गुण है सो शब्दमें भी आया, इस हेतुका परमाणु के रूपसे अथवा सुखका व्यभिचार नहीं दे सकते, क्योंकि हेतुमें विशेषण दिया गया है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि 'बाह्येन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होनेपर', परमाणुरूप बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही है, इसी कारण परमाणुका भी रूप उत्पन्न होनेके लिए अन्य कारण गुणकी जरूरत नही है। हाँ, दिखने वाले स्कंध पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्य इनके रूपकी उत्पत्तिके लिए कारण गुणकी आवश्यकता है। इसी प्रकार सुख दुःख आदिक भी बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही होते, इस कारण सुखके लिए भी यह नही कह सकते कि वह भी कारण गुण पूर्वक होना चाहिए। इसी प्रकार इस हेतुका योगियोंके बाह्येन्द्रिय द्वारा ग्राह्य अणुके रूपसे व्यभिचार नही दे सकते, कारण कि विशेषणमें अस्मदादि शब्द भी पड़ा हुआ है अर्थात् हम लोगोंके बाह्येन्द्रिय द्वारा जो ग्राह्य हो सो अकारण गुणपूर्वक नही है।

शब्दमें स्पर्शवान द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिये दिये गये शंकाकारके तृतीय हेतुकी सदोषता —पर परमाणुका रूप हम लोगोंके बाह्येन्द्रियके द्वारा ग्राह्य कहाँ है। इस हेतुका सामान्य आदिकके साथ भी व्यभिचार नही बता सकते, क्योंकि हेतुका मुख्य अंश है 'गुण होनेसे'। सामान्य विशेष आदिक गुण नही हैं। तो इस प्रकार अकारण गुणपूर्वकत्व सिद्ध नही होता शब्दमें। अतः अकारणगुणपूर्वक कहकर पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंका विशेष गुण नही है, यों कहना अयुक्त है, बल्कि आपका यह हेतु प्रसङ्ग साधन है अर्थात् जिस हेतुको आप सिद्ध करना चाहते हैं कि शब्द पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्योंका गुण नही है पर हो जाता है इससे उल्टा सिद्ध याने अकारणपूर्वकत्व आपसे अन्य दिए गए हेतुवोंसे असिद्ध हो जाता है। शंकाकारने शब्दको पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्योंका विशेषगुण न सिद्ध करनेके लिए तीसरा हेतु दिया था कि अयावद् द्रव्यभावी है अर्थात् जितना भर द्रव्य है कारणरूपमें सारे द्रव्य शब्द नही होते। शंकाकारको दृष्टि यह है कि कार्यद्रव्यके जो गुण होते हैं वे कार्य द्रव्योंमें पूरेमें पाये जाते हैं। जैसे घटका रूप पूरेमें मिलेगा, पर शब्द आकाशका गुण है और आकाशमें शब्द नही पाया जाता। यह बात यों संभव है कि आकाश कार्यद्रव्य नही है यदि शब्द कार्यद्रव्योंका गुण होता तो शब्द पूरे कार्यद्रव्यमें पाया जाता। ऐसी युक्ति देकर शंकाकारने शब्दको पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्योंके गुणत्वका निराकरण किया। किन्तु शंकाकारका उक्त सुझाव सही नही है, क्योंकि अयायद् द्रव्यभावित्व हेतु विरुद्ध है अर्थात् इस हेतुसे सिद्ध तो करना चाहते हो कि स्पर्शवान पृथ्वी आदिकका कार्य नही है लेकिन इस ही हेतुसे यह सिद्ध हो जाता है कि शब्द स्पर्शवान पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्यका गुण है। यहाँ कुछ विशेषता होनेके कारण पृथ्वी न सही किंतु उसके समान भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कंध सही, उन स्कंधोंका गुण है अर्थात् पर्याय है शब्द। इसको अनुमान प्रयोगसे भी कहते हैं कि शब्द स्पर्शवान द्रव्यका गुण है, क्योंकि शब्द हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेपर अयावद् द्रव्यभावी है अर्थात् समस्त द्रव्योंमें नही पाया जाता है। जैसे पटका रूप। कपड़ेका रूप स्पर्शवान द्रव्यका गुण है। किसका गुण है पट रूप ? जिसका है उसको हम स्पर्शन इन्द्रियसे भी जान सकते हैं, ऐसे स्पर्शवान द्रव्यका याने पटका गुण है रूप। ऐसे ही शब्द भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चूंकि हम लोगोंके बाह्य इन्द्रियसे प्रत्यक्षभूत है और अयावद्द्रव्याभावी है इस कारण वह भी स्पर्शवान द्रव्यका गुण होता है।

शब्दमें स्पर्शवान द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिये दिये गये शंकाकारके चतुर्थ हेतुकी सदोषता शंकाकारने शब्दको स्पर्शवान पृथ्वी आदिकके गुणत्वका निराकरण करनेके लिए चौथा हेतु दिया था कि हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत होने पर भी अन्य पुरुषोंके प्रत्यक्षमें नही आता। जो चीज हम सब लोगोंके प्रत्यक्षमें आ सकती है और वह केवल हमारे ही प्रत्यक्षमें आया जो कुछ, वही दूसरे पुरुषके प्रत्यक्ष में न आये ऐसा होनेसे शब्द पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंका गुण नही है। शंकाकारका यह आशय है कि जैसे पृथ्वीका गुण रूप है तो चाहे कोई पासमें खड़ा हो चाहे कितना ही दूर हो, सबको उस पृथ्वीका रूप प्रत्यक्षमें आ जायगा, लेकिन शब्दके बारेमें इससे कुछ विपरीत बात है। पासमें खड़ा हुआ पुरुष तो शब्दको प्रत्यक्ष भी सुन लेगा और दूरमें रहने वाले पुरुष उस शब्दको प्रत्यक्ष न कर पायेंगे। तो देखो ! यदि शब्द कार्य-द्रव्योंका गुण होता तो जैसे पृथ्वीके रूपका पास रहने वाले व दूर रहने वाले सभी लोग उसका प्रत्यक्ष कर लेते हैं यों ही शब्दका भी सब लोग प्रत्यक्ष कर लेते हैं। यदि शब्द कार्यद्रव्यका गुण होता तो शङ्काकारका यह कथन अनेकान्तिक दोषसे दूषित है। कार्यद्रव्योंके भी गुण होते हैं कि जिस गुणका हमको प्रत्यक्ष हो रहा है उसका प्रत्यक्ष दूसरेको नही होता। एक रूपका तो उलाहना दे दिया कि देखो ! रूप पासमें खड़ा हो उसको भी प्रत्यक्ष हो रहा, दूर खड़ा हो उसको भी प्रत्यक्ष हो रहा, लेकिन यह न सोचा कि पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंका गुण रस भी तो है। देखो ! जिस रसका हम स्वाद ले रहे हैं वह केवल हमारे ही प्रत्यक्षमें तो है, दूसरेके प्रत्यक्षमें तो नही आ रहा, तो यह नियम न बनेगा कि जो जो गुण कार्यद्रव्यमें हों वे गुण सभी पुरुषोंको प्रत्यक्ष में आना ही चाहिए। तो इस प्रकार यह हेतु ही जब अनेकान्तिक दोषसे दूषित होगया तो इस हेतुके द्वारा शब्दको स्पर्शवान स्कन्धके गुणत्वका निराकरण कैसे किया जा सकता है ? तो शब्द मूर्तिक है, बन्धनमें आता है, भींटसे भिड़ता है, कभी पैदा होता, कभी नहीं पैदा होता, उसमें अलर महान मंद तीव्र भेद हुआ करता है। इन सब बातों से भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि शब्द आकाशका गुण नही है, किन्तु किसी मूर्तिक पदार्थका ही गुण है।

शब्दमें स्पर्श व द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिये शङ्काकार द्वारा कहे गये पञ्चम हेतुकी सदोषता—शंकाकार कहता है कि शब्द पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंका गुण नही है क्योंकि शब्दका आश्रयभूत भेरी आदिक बाजोंके स्थानसे भिन्न स्थानोंमें शब्दकी प्राप्ति होती है। यदि शब्द कार्यप्रत्यका गुण होता याने भेरी आदिक बाजे पृथ्वी तत्त्व हैं, उनका गुण होता, यदि भेरी आदिकका गुण होता तो शब्द भेरी आदिमें ही पाये जाने चाहियें थे ? भेरी आदिसे अन्यत्र शब्दकी प्राप्ति न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनी चाहिये। जैसे रूप भेरीका गुण है तो रूप भेरीसे अन्यत्र तो नही पाया जाता। शब्द यदि कार्यद्रव्यका गुण होता तो बाजे आदिक पदार्थोंसे भिन्न जगहमें शब्द न पाए जाने चाहिएँ। और, पाये जाते हैं बाहर ही शब्द, इससे सिद्ध है कि शब्द बाजेका, कार्यद्रव्यका गुण नही है, किंतु आकाशका गुण है। इसके समाधानमें कहते हैं कि शब्द आकाशका गुण तो है ही नही, क्योंकि शब्द है मूर्तिक, आकाश है अमूर्त, आकाश है नित्य और शब्द है क्षणिक। और, जो यह कहा कि पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नही है, भेरी, ढोल आदिक बाजेके ये गुण नही हैं सो ठीक ही है। भेरी आदिक बाजे शब्दके आश्रयभूत नही हैं, किन्तु शब्दके निमित्तकारण हैं। शब्दका आश्रय तो भाषा वर्गणा जातिका पुद्गल स्कंध है। उन स्कंधोंसे ही शब्दोंकी उत्पत्ति होती है। शब्दके वास्तविक आश्रय तो वे ही स्कंध है, बाजे आदिक जिनका संयोग–वियोग होता है, वे तो निमित्त कारणमात्र है और कार्य निमित्त कारणसे अन्यत्र पाया जाता है। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना तो घड़ेका आश्रय तो मिट्टी है—कुम्हार, दण्ड चक्र आदिक निमित्त कारण हैं, तब देखो ना ! कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिक साधनसे भिन्न स्थानमें घटकी प्राप्ति हो रही है। ऐसे ही शब्दकी बात है। शब्द कार्य है, भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कन्धोंका और उसकी निष्पत्तिके कारण हैं भेरी, दण्ड आदिकका संयोग, तभी तो भेरी दण्डके साधनसे अन्यत्र शब्दकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शब्दके आत्मादिक्कालमनोगुणत्वके निषेधका समर्थन—शंकाकारने जो यह कहा था कि शब्द आत्माका गुण नही, दिशाका गुण नही, कालका गुण नही, मनका गुण नही, सो ये सब युक्त ही बातें हैं। कौन मानता है—शब्द आत्मा, दिशा काल या मनके गुण हैं ? शब्द वैसे तो गुण ही नही है, किन्तु पर्याय है। इसलिए शब्द किसका गुण है, किसका नही है, ऐसा खोजनेका श्रम ही व्यर्थ है और फिर आत्मा अमूर्त, शब्द मूर्तिक। शब्द आत्माका गुण कैसे हो सकता है ? दिशा केवल कल्पनाकी चीज और शब्द वास्तविक परिणमन ! शब्दकी चोट होती है, शब्द विषय में आता है, शब्दके आश्रयका ध्रौव्य है, शब्दका स्वयका उत्पादव्यय है। तो शब्द जैसी वस्तुगत परिणति कल्पित दिशाओंकी कैसे बन सकती है ? काल अमूर्त है, उस का परिणमन तो समय आदिक है, शब्द नही हो सकता। मनका परिणमन द्रव्य मन का द्रव्य मनमें है, भावमनके रूपसे जीवका परिणमन जीवमें है। तो शब्द आत्मा आदिकके गुण नही हैं। इस प्रकार जो शंकाकारने कहा वह तो सिद्ध साधन है। जिस तरह कहा वह उनके उद्देश्यका समाधान थोड़े ही है। इससे शब्द किसी भी द्रव्यका गुण नहीं है, आकाशका भी गुण नही है, किन्तु भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कंधोंका एक द्रव्य परिणमन है।

शब्दकी कार्यद्रव्य परिणमन रूपताका विवेचन—शब्द परिणमन रूप यों है कि यदि शब्द गुण होता तो शाश्वत रहता। द्रव्यकी भाँति गुण भी शाश्वत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हुआ करता है, क्योंकि द्रव्य और गुण प्रथकभूत नही हैं, द्रव्य ही सत् है और उस द्रव्यको जब हम कुछ विशेषताओंसे समझना चाहते है तो द्रव्यके अन्त: ही हम गुणको समझते हैं। अर्थात् द्रव्यको ही समझनेके लिए हम द्रव्योंका जब भेद करते हैं, कुछ विशेषताओंमें समझते है तो उन विशेषताओंका नाम गुण है । सो जैसे द्रव्य ध्रुव है इसी प्रकार गुण भी ध्रुव है । तो यों शब्द गुण नही है । शब्द पर्याय है । जैसे कि काले पीले नीले आदि रूप, ये रूप गुण नही हैं किन्तु पर्याय हैं। इन रूप पर्यायोंका जो आश्रयभूत शक्ति है उसका नाम रूप गुण है, सो शब्दोंमें शब्दरूप पर्यायोंका आश्रय भूत कोइ एसी शाश्वत शक्ति नही हैं जिसे शब्दका आश्रयभूत गुण मान लिया जाय। किन्तु यह पर्याय है पदार्थोंके संयोग विभागोंके कारण शब्द वर्गणाओंसे शब्दकी उत्पत्ति होती है । तो जब शब्द आकाशका गुण नही रहा तो यों कहना कि शब्द लिङ्गकी अविशेषता होनेसे अर्थात् कोई भेद न होनेसे आकाश एक है ऐसा कहना इस तरहके उन्मत्तकी तरह है अथवा अज्ञानीकी तरह है कि जो बंध्याके पुत्रके सौभाग्यका, विशेषताओंका वर्णन करने चले । अरे जब बंध्याका कोई, पुत्र ही नही है तो उसके बारेमें उसकी विशेषताओंका वर्णन करना तो बाधित है । यों ही जब शब्द आकाशका लिङ्ग नही, गुण नही, तो शब्दलिङ्गकी बात कहकर आकाशको एक सिद्ध करना यह बिल्कुल अयुक्त बात है । शब्द तो कार्य द्रव्य है । कार्य द्रव्यमें व्यापित्व आदिक धर्म सम्भव नही होते । कालापेक्षया भी कार्य द्रव्य व्यापक नही होते, और किसी एक अमूर्तका कोई शब्द गुण माना जाय तो स्वयं हां कर रहे शंकाकार कि शब्द आकाशमें सर्वत्र व्यापक नही है । यों शब्द आकाशका गुण नही है और इस कारण शब्दलिङ्ग वाले नित्य निरंश निवयव आकाश द्रव्यकी सिद्धि नही होती सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है, इसके विरोधमें जो एकान्तरूप द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामक ६ पदार्थोंकी व्यवस्था विशेषवादमें बताई गई है, वह व्यवस्था युक्त नही होती । मूलमें पदार्थको सामान्य विशेषात्मक स्वीकार करके फिर आगे जातियों व्यक्तियोंकी खोजमें चले तो वह युक्तिसंगत खोज बन सकेगी । फिर विदित होगा कि शब्द आकाशका विशेष गुण न रहा, कार्यद्रव्यका विशेष गुण सिद्ध हुआ ।

शब्द शब्दान्तरोंके समवायी असमवायी कारणका शंकाकार द्वारा समर्थन अब शंकाकार बहुत बड़ी विवेचनासे अनुमानपूर्वक यह सिद्धान्त रख रहा है कि स्वर्गमें, पृथ्वीमें, पातालमें, आकाशमें जितने भी शब्द हैं वे सब शब्द श्रूयमाण शब्दके साथ एकार्थ समवायी हैं, क्योंकि शब्द होनेसे । जैसे कि श्रूयमाण प्रथम शब्द । इस अनुमानमें यह भाव है कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे जो शब्द उत्पन्न होते हैं उन शब्दोंका समवायी कारण है आकाश ! वह शब्द आकाशमें समवेद है और उन शब्दों से वीचीतरङ्ग न्यायसे जो अन्य-अन्य शब्द उत्पन्न होते रहते हैं वे सब शब्द भी आकाशमें समवेत हैं उनका भी समवायी कारण आकाश हैं । तो ये सारे शब्द भी उस ही एक अर्थमें समवेत हैं क्योंकि शब्द होनेसे । जैसे कि घड़ेमें रूप समवेत है और

http://sahjanandvarnishastra.org/

घड़ेमें रस भी है, तो यह कहा जायगा कि रसरूपके साथ एक अर्थमें समवेत है तो इसी प्रकार यहां भी समझें कि श्रूयमाण सारे शब्द जो असमवायी कारण शब्दसे उत्पन्न हुए हैं वे सारे शब्द प्रथम शब्दके साथ एक अर्थमें समवायी हैं। साथ ही यह भी बात है कि श्रूयमाण शब्द समान जातीय असमवायी कारण वाला है, क्योंकि वह सामान्य विशेषवान होनेपर नियमसे हम लोगोंके बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत होता है जैसे कि कार्यद्रव्यके रूपादिक ! कार्यद्रव्य हुए जैसे घट पट। उनमें पाया जाने वाला रूप रस आदिक समान जातीय असमवाय कारण वाला है ना, अर्थात् ये सब कार्य द्रव्य कारणसे उत्पन्न हुए हैं। कारण भी रूपवान हैं, सो उनमें कार्यद्रव्यके रूपकी उत्पत्ति हुई। अब यहाँ यह देखो कि घटमें रहने वाला रूप घटमें रहने वाले रसके साथ समवेत है और साथ ही वह घट जिन समवायी कारणोंसे निष्पन्न हुआ है उसके रूप भी उसीसे निष्पन्न हुए हैं और रस आदिक भी उसीसे निष्पन्न हुए हैं तो इसी तरह शब्दका समवायी कारण आकाश है और सब शब्दोंका असमवायी कारण जिन शब्दोंसे वे शब्द उत्पन्न हुए हैं वे प्रथम शब्द है। यों यह सिद्धान्त बराबर बन जाता है कि शब्द आकाशके गुण हैं, आकाश शब्दोंका समवायी कारण है और प्रथम जो शब्द उत्पन्न हुआ है उसका असमवायी कारण है तालु आदिकसे उत्पन्न हुई वायु और आकाशका संयोग। निमित्त कारण है तालु आदिक। फिर उन शब्दोंसे वीची तरङ्ग न्यायसे जो अन्य शब्द उत्पन्न हुए है उनका समवायी कारण तो एक ही है। जैसे—प्रथम शब्दका समवायी कारण आकाश है तो इस शब्दान्तरका भी समवायी कारण आकाश है, किंतु असमवायी कारण शब्दान्तरोंका शब्द है प्रथम, जिससे शब्दान्तरोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे शब्दकी व्यवस्था बनती है और आकाशका गुण सिद्ध होता है।

शब्दके समवायीकारणकी मीमांसा– उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि समवायीकारण शब्दोंका है तो सही किन्तु मूर्तिक शब्दोंका समवायीकारण आकाश नही हो सकता। प्रति शब्द प्रथक् प्रथक् समवायी कारण आकाश शब्दवर्गणा जातिके पुद्गल स्कन्ध हैं इनसे शब्द उत्पन्न हुआ है अर्थात् प्रत्येक शब्दोंके उपादान कारण आश्रयभूत कारण शब्द वर्गणायें हैं और उन शब्द वर्गणाओं से शब्दकी उत्पत्ति हुई है। और, ये अनेक हैं, सावयव हैं अब रही असमवायी कारणकी बात सो शब्दके क्षणिकत्वका जब निषेध कर दिया गया तो फिर वहाँ असमवायी कारण कोई कैसे हो सकता है ? जब उनका निमित्त कारण वगैरह खोजा जाय अथवा जब शब्दको क्षणिक मान लिया सर्वथा तब भी उनके असमवायी कारण निमित्त कारण आदिक नही बन सकते। कथंचित् नित्यानित्यात्मक माननेपर कारणोंकी व्यावस्था बनती है। शब्द द्रव्यदृष्टिसे नित्य है अर्थात् शब्दोंका आश्रयभूत जो शब्दवर्गणा जातिके पुद्गल स्कन्ध हैं वे नित्य हैं और संयोग विभागपूर्वक निमित्त कारणके सन्निधानपूर्वक जो शब्दोंकी निष्पत्ति हुई है वे शब्द पर्यायें क्षणिक हैं। उत्पन्न हुईं, नष्ट हुईं। तो उन शब्दोंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निमित्त कारण तो संयोग विभाग है पृथ्वी आदिकका, और समवायी कारण अथवा उपादान कारण हैं वे स्वयं वर्गणायें जिनका कि द्रव्य परिणमन शब्द बन गया है। तो यों शब्दका असमवायी कारण प्रथम शब्दोंको कहना और शब्दोंका असमवायी कारण आकाशको कहना युक्तिमें नहीं उतरता है और मोटे रूपसे यह भी परख सकते हैं कि शब्दका समवायीकारण यदि निरवयव आकाश होता जैसे कि शंकाकारने माना है कि आकाश नित्य है, सर्वगत है, निरंश है, तो शब्द भी नित्य बन बैठता। सर्वव्यापी बनता, निरंश बनता क्योंकि वह आकाशका गुण है। जो गुण जिस द्रव्यका होता है वह गुण उस द्रव्यमें पाये जाने वाली विशेषताकी समता रखता है। जैसे—आकाशका गुण महत्त्व है तो वह आकाशके साथ ही है, नित्य निरंश सर्वगत है यों ही शब्द आकाशका गुण होता तो वह नित्य निरंश सर्वव्यापक रहता। इससे शब्दका समवायी कारण आकाश नहीं है किन्तु भाषावर्गणा जातिका पुद्गल स्कंध है।

शब्दसे आकाशगुणत्व एकदेशवृत्तित्व व क्षणिकत्वके प्रतिषेध बिना आकाशके सावयवत्वका प्रसंग – शंकाकारने शब्दको क्षणिक, आकाशके एक देशमें वृत्ति वाला, आकाशका विशेष गुण माना है, लेकिन ये तीनों ही बातें प्रमाणसे प्रतिसिद्ध हो जाती हैं। शब्द तो क्षणिक नहीं है, इस विषयमें बहुत विस्तारसे वर्णन कर ही दिया गया। शब्द आकाशके एक देशमें वृत्ति वाला नहीं है, जब शब्द आकाशका गुण नहीं, परिणमन नहीं कोई सम्बन्ध ही नहीं तो आकाशके एक देशमें रहता है ऐसी वृत्ति होनेका काम ही क्या है? आकाश अमूर्त है, शब्द मूर्तिक है, अतः शब्द आकाश के गुण हो ही नहीं सकते। तो शब्दमें क्षणिकपनेका आकाशके एक देश वृत्ति पनेका और आकाशके विशेष गुणत्वका प्रमाणबलसे निषेध कर दिया गया है। यदि न बातों को निषिद्ध नहीं मानते, शब्दको क्षणिक आकाशके एक देशमें रहने वाला तथा आकाशका विशेष गुण मानोगे ही तब तो शब्दका आधार जो आकाश है वैशेषिक सिद्धान्त में वह आकाश निरवयव न रह सकेगा जब शब्द, कभी हुआ कभी न हुआ तो आकाश में अवयव सिद्ध हो गया ना। जब आकाशके एक देशमें शब्द रहते हैं तो आकाशके एक जगह रहा आकाशके दूसरी जगह न रहा तो इससे शब्दका आधारभूत आकाश निरवयव कैसे रह सकेगा? आकाशके अ न्त अवयव हैं और उनमेंसे किन्हीं अवयवोंमें कभी शब्द रहते हैं कभी शब्द नहीं भी रहते हैं, यों आकाश सावयव सिद्ध होगा। शब्दको आकाशका विशेषगुण माना जाय तो कहीं शब्दकी निष्पत्ति है, कहीं नहीं है। कहीं तीव्र शब्द है, कहीं मंद शब्द है, आदिक शब्दोंकी विभिन्नता होनेके कारण शब्दके आधारभूत आकाशमें सावयवपना आ जायगा। यदि आकाश निरवयव होता तो आकाशके एक देशमें ही शब्द रहे सब जगह न रहे, यह भेदविभाग नहीं बन सकता। इससे आकाश सावयव सिद्ध हो जाता है।

आकाशके सावयवत्वकी सिद्धि—और भी सुनो! आकाश तो सावयव

ही है, प्रमाणसे समझिये ! इसका अनुमान प्रयोग है। आकाश सावयव है क्योंकि हिमवान व पर्वत विन्ध्याचल पर्वतसे रुका हुआ विभिन्न देशवाला होनेसे पृथ्वीकी तरह। जैसे हिमवान भिन्न देशकी पृथ्वीमें है और विन्ध्याचल भिन्न देशमें है तो पृथ्वी सावयवी हो गई ना ! पृथ्वीके एक हिस्सेमें हिमवान है दूसरे हिस्सेमें विन्ध्याचल है, इसी प्रकार आकाशको भी यही बात है। आकाशका एक देश हिमवान पर्वतसे रुका है और आकाशका दूसरा क्षेत्र विन्ध्याचल पर्वतसे रुका है। इससे सिद्ध होता है कि आकाश सावयव है। यदि आकाश सावयव न माना जाय तो रूप रसकी तरह हिमवान विन्ध्याचल सारी ही चीजें एक देशमें एकत्र आकाशमें ही पायी जाय यह प्रसङ्ग आता है और तब फिर हिमवान और विन्ध्याचल एक ही जगह उपस्थित हो जाने चाहियें, सहचर बन जाने चाहियें। जैसे कि रूप और रस एक आधारमें समवेत हैं, उनका आधारभूत पदार्थ एक है, तो जहाँ ही रूप है वहाँ ही रस है ना ! भिन्न-भिन्न क्षेत्रमें तो है नही, किसी एक फलमें जहाँ ही रूप है वहाँ ही रस है, भिन्न-भिन्न स्थान में नहीं है। इसी प्रकार यदि आकाश ही एक माना जाय, निरवयव, निरंश माना जाय तो एक ही स्थानमें सर्व पदार्थोंका अवस्थान होना चाहिए और सारे पदार्थ एक ही जगह मिलने चाहिएं। पर ऐसा तो देखा नही गया और न ऐसा किसीको इष्ट भी है, न ख्याल भी है कि ऐसा कभी हो भी सकता है ! इससे आकाश सावयव ही है। हाँ, यह बात आकाशकी अलौकिक है कि सावयव होकर भी आकाश एक पदार्थ है। आकाशमें जो कुछ भी परिणमन होता है आगमगम्य, अगुरुलघु षडगुण हानिवृद्धि कृत वह सर्व अवयवोंमें ही एक साथ होता है। अतः आकाश अखण्ड है किन्तु व्यापक होने से उसमें अवयव है, प्रदेश है और यों आकाश अनन्त प्रदेशी है।

आश्रयके विनाशसे शब्दविनाश माननेके विकल्पका निराकरण— और भी इसपर विचार करिये ! यदि आकाश निरवयव नित्य हो और उसका गुण शब्द हो तो शब्द तो हुआ आधेय, आकाश हुआ आधार तो यह बतलावो कि आकाश का आधेय जो शब्द है उसका विनाश कैसे होगा ? विनाश होनेके कारणमें आप तीन ही कल्पनायें उठा सकते हैं—एक तो यह कि आश्रयके विनाशसे आश्रेय शब्दका विनाश हो जाता है। दूसरा यह है कि विरोधी गुणके सद्भावसे तो उनका विनाश होजायगा तीसरा यह कि शब्दोपलब्धि कराने वाले अदृष्टके अभावसे शब्दका विनाश हो जायगा। सो प्रथम कल्पना तो युक्त है नही, अर्थात् आश्रयके विनाशसे शब्दका विनाश घटित हो जाय यह बात सम्भव नही, क्योंकि आकाश नित्य है और नित्य आकाशका कभी विनाश नहीं, तो फिर शब्दका विनाश कैसे हो सकेगा ?

विरोधी गुणके सद्भावसे शब्दविनाश माननेके विकल्पका निराकरण यदि कहो कि विरोधी गुणके सद्भावसे शब्दका विनाश हो जायगा अर्थात् शब्दका आधार है आकाश, आकाशमें शब्दका विरोधी गुण है कोई जिसके होनेसे

शब्दका विनाश हो जाता है । तो यह बात कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि आकाशमें अन्य गुण क्या है ? जैसे महत्त्व । आकाश महान है । तो महत्त्वादिका शब्दके साथ एकार्थ समवाय है जिस समवायी कारणमें महत्व माना उसीमें शब्द माना है तो एकार्थ समवे में जो गुण होते हैं उनमें परस्पर विरोध नहीं होता, जैसे पृथिवीमें रूप रस गंध एकार्थ समवाय समवेत हैं । रूपका जो समवायी कारण है, वही रसका समवायी कारण है । तो एक समवायी कारणमें रूप, रस, गंध, शब्द सब समवेत हैं पर इनका विरोध हुआ क्या ? रूपके रहनेसे रस नष्ट हो जाय, रसके होनेसे रूप नष्ट हो जाय, क्या ऐसा कभी विरोध देखा गया है ? तो जैसे पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्यमें एकार्थ समवेत होनेके नाते रूप रसका कभी विरोध नहीं होता, इसी प्रकार यदि शब्दको आकाशका गुण मानते हो तो आकाशमें जितनेभी गुण समवेत हुये उनमेंसे किसी भी गुणके द्वारा शब्दका विनाश नहीं किया जा सकता । और, यदि मान लोगे कि महत्त्वादिक गुण शब्दके विरुद्ध हैं और महत्त्वादिक गुण आनेसे शब्दका विनाश होजाता है तब तो आकाशमें महत्त्वादिक शाश्वत हैं ना, फिर तो कभी भी शब्दकी निष्पत्ति न हो । शब्दके सुननेके समयमें भी शब्दका अभाव मान लेना पड़ेगा, क्योंकि अब तो यह मान लिया कि एकार्थ समवेत गुण परस्पर एक दूसरेके विरोधी भी हो जाते हैं । तब तो आकाशमें महत्त्व सदा है. शब्दका विरोधी शब्दका विनाशक जब तहत्व सदा रहता तो इसका निष्कर्ष यह निकला कि फिर शब्दका कभी सद्भाव भी नहीं बन सकता । सुननेके समयमें भी शब्दके अभावका प्रसङ्ग आ जायगा । यदि कहो कि महत्त्व यदि शब्दका विरोधी गुण नहीं है, किंतु संयोग आदिक शब्दके विरोधी गुण हैं तो यह बात भी युक्त नहीं है । संयोग आदिक तो शब्दके कारण माने गये हैं, वे विरोधी कैसे हो जायेंगे ? कहा भी है विशेषवादमें कि संयोग आदिक शब्दके कारण होते हैं । तो जो शब्दका कारण है वह शब्दका विनाशक कैसे हो जावगा ? यदि कहो कि आकाशमें संस्कार नामका गुण है, जिसके कारण शब्दका विनाश हो जाता है । संस्कार शब्द का विरोधी गुण है तो यह भी बात बेतुकी है । आकाशमें संस्कार सम्भव ही नहीं है, और मान लो कि आकाशमें संस्कार सम्भव है तो यह बतलावो कि वह संस्कार आकाशमें अभिन्न रूपसे रहता है या भिन्न रूपसे ? यदि कहो कि वह संस्कार आकाश से अभिन्न है तो संस्कार नष्ट हुआ तो शब्द नष्ट हो गया, संस्कार न रहा तो शब्द चलता रहे । संस्कार कभी रहा कभी न रहा, तो शब्द चलता रहे । संस्कार कभी रहा कभी न रहा, यह स्थिति तो माननी ही पड़ेगी, और संस्कारको मान लिया आकाशसे अभिन्न तो इसका निष्कर्ष यह निकला कि संस्कारका अभाव होनेपर आकाशका भी अभाव बन बैठेगा, क्योंकि संस्कार आकाशसे अभिन्न मान लिया है । यदि कहो कि वह संस्कार जो शब्दका विनाशक है. आकाशसे भिन्न है तो जब संस्कार और आकाश ये जुदे-जुदे हो गए फिर यह संस्कार आकाशको है यह सम्बन्ध नहीं बन सकता । तो इस तरह संस्कार भी शब्दके विनाशका कारण नहीं बना ।

शब्दोपलब्धिप्रापक अदृष्टके अभावसे शब्द विनाश होना माननेके विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि शब्दकी उपलब्धिको प्राप्त कराने वाला अदृष्ट हुआ करता है, उस अदृष्टका अभाव होनेसे शब्दका भी अभाव हो जाता है तो यह भी बात समीचीन नहीं है, क्योंकि विशेषवादमें अभावको तुच्छाभाव माना है। अभाव किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप नहीं माना है, तो अदृष्टका अभाव क्या हुआ ? तुच्छाभाव। उस अभावके एवजमें कुछ है सो बात नहीं मानी गयी है। तो तुच्छाभावमें किसीको विनष्ट करनेका सामर्थ्य नहीं है। जब उसका सत्त्व ही नहीं तब वह तुच्छाभाव किसीको नष्ट करनेका कारण कैसे बन जायगा ? तो तुच्छाभावका सामर्थ्य न होनेसे वह शब्दके विनाशका कारण नहीं बन सकता यदि तुच्छाभाव किसीके विनाशके कारण बनने लगे तो गधेके सींग भी किसीके विनाशका कारण बन जाय आकाशका क्या समस्तजगतके ही विनाशका कारण बन जाय। तो यह भी नहीं कह सकते कि शब्दकी उपलब्धि प्राप्त कराने वाले अदृष्टका अभाव होनेसे शब्दका विनाश होजाया करता है।

शब्दके आकाशगुणत्वकी असिद्धि एवं सामान्य विशेषात्मक प्रमेयकी सिद्धि—इस तरह प्रमाण कसौटीपर कसनेसे यह बात जरा भी सिद्ध नहीं हो सकती कि शब्द आकाशसे उत्पन्न होता है। तब फिर प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, इसका निराकरण करनेके लिये जो एकान्त धर्मवादसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ऐसी छः पदार्थोंकी व्यवस्था बनायी गयी है वह तथ्यभूत नहीं है। देखो ! द्रव्यके ९ भेदोंमें पृथ्वी, जल अग्नि, वायु ये चार जातियाँ तो सिद्ध हो नहीं सकी। अब यहाँ आकाश तत्त्वकी सिद्धि करनेका शंकाकारका प्रयास चल रहा है। तो शब्द लिङ्ग नित्य निरंश आकाशकी भी सिद्धि नहीं हो सकी। आकाश नामक पदार्थ तो है स्वतंत्र, पर वह निरवयव हो, और शब्द गुण वाला हो सो ऐसी बात आकाशमें नहीं है। तो आकाश पदार्थका सत्त्व सिद्ध न हो सका।

शब्दको पौद्गलिक माननेमें शंकाकारकी आपत्ति व उसका समाधान

शंकाकार कहता है कि तुम शब्दको पौद्गलिक सिद्ध करने जा रहे हो, पर यह पौद्गलिक शब्द तो उस शब्दके आधारभूत, कारणभूत, पदार्थका रूप भी तो दिखना चाहिये था। अतः शब्दसे पौद्गलिक होने पर हम लोगोंके द्वारा अनुपलभ्यमान रूपादिका आश्रयपना नहीं हो सकता है अर्थात् शब्द रूपी पदार्थके आश्रय रहने वाला सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये पौद्गलिक हैं पर इनका स्पर्श, इनका रूप, यह सब कुछ हम लोगोंके द्वारा उपलभ्यमान है। तो पौद्गलिक शब्द नहीं मालूम होता है। कारण यह है कि शब्द यदि पौद्गलिक होता तो उसका हमें रूप भी दिखना चाहिये था। समाधानमें कहते हैं कि यह बात समीचीन नहीं है, क्योंकि तुम्हारे हेतुका द्वयणुक आदिक कार्यद्रव्योंके साथ व्यभिचार आता है अर्थात् जैसे द्वयणुक स्कंधका रूप किसीने देखा तो नहीं, पर न दिखनेपर क्या वह रूपवान न कहलायेगा ? तो ऐसे

ही शब्दवर्गणा जातिके पुद्गलसे उत्पन्न हुये शब्द कर्णसे तो ज्ञात हो गए, पर वे इतनी सूक्ष्म वर्गणायें हैं अथवा इस जातिकी हैं कि उनमें रहने वाले रूपका हमें बोध न हो सका, रूपकी उपलब्धि हम लोगोंको न हो सकी। ऐसे कितने ही पदार्थ हैं कि जिनके अन्य गुण तो प्रत्यक्ष होते हैं और कुछ गुण प्रत्यक्ष नही होते। जैसे वैशेषिक सिद्धांतमें नेत्रकी किरण मानी गई है और गर्म जलमें अग्नि तत्त्व माना गया है। मगर तैजसका अग्नि तत्वका स्वरूप तो भासुररूप है। सो देखो! न तो नेत्रकी किरणोंमें भासुररूप ज्ञात होता है और न गर्म जलमें भासुररूप ज्ञात होता है। तो भासुर रूपके न होनेपर भी उसमें स्पर्श आदिक अनेक गुण माने हैं। तो इसी तरह शब्दका आश्रयभूत जो द्रव्य है उसमें हम लोगोंको यद्यपि रूप आदिक अनुपलम्भमान हैं तो रहो, फिर भी शब्दोंके आधारभूत उन कार्य द्रव्योंमें रूपादिकके रहनेका विरोध नही है। जैसे घ्राण इन्द्रियके द्वारा गंध द्रव्यकी उपलब्धि होती है पर उसमें अनुभूत रूपादिक भी तो हैं और नेत्रकी किरणोंमें गर्म जलमें गंध द्रव्यमें रूपादिक उद्भूत नही हो रहे हैं। लेकिन वे तैजस हैं, पार्थिव हैं इससे रूपके अस्तित्वकी सम्भावना बराबर है। इसलिये इनमें रूप है और इसी तरह शब्दमें भी रूप है। अतः शब्द पौद्गलिक है।

शब्दके पौद्गलिकत्वकी सिद्धि—शब्द आकाशका गुण नही है, किन्तु भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कंधोंका द्रव्य पर्याय होनेसे पौद्गलिक है। अब शब्दकी पौद्गलिकता सिद्ध कर रहे हैं। शब्द पौद्गलिक है, क्योंकि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर और अचेतन होनेपर क्रियावान है। जो जो पदार्थ हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष हो रहे हैं, अचेतन हैं और क्रियावान हैं, वे सब पौद्गलिक ही हैं। जैसे बाण आदिक। बाण हम लोगोंको प्रत्यक्ष होता है। अचेतन भी है और क्रियावान भी है। तो जो इस साधनसे युक्त हैं वे सब पौद्गलिक होते हैं। इसमें हेतु दिया गया है हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष और अचेतन होकर क्रियावान होनेसे। इस हेतुमें मनके साथ व्यभिचार नही दे सकते। कोई यों कहे कि मन क्रियावान भी है और अचेतन भी माना गया है पर पौद्गलिक नही कहा गया। अथवा जो मन अचेतन भी न हो, भावमन जैसे वह क्रिया वान तो है मगर पौद्गलिक नही है, यो व्यभिचार नही दिया जा सकता, क्योंकि हेतु केवल इतना नही है "क्रियावत्व होनेसे" उसके साथ विशेषण लगा है हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर और अचेतन होनेपर जो क्रियावान हो। तो हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत है नही इस कारण इस हेतुका मनके साथ भी व्यभिचार दोष नही आता। कोई कहे कि इस हेतुका आत्माके साथ व्यभिचार हो जायगा हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष भूत भी है आत्मा, क्योंकि आत्मा स्वयं स्वरूप होनेसे जैसे सुख दुःखका सम्वेदन होता है ऐसे ही स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे आत्मा जाना जाता है तो हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष है, और क्रियावान भी है, परिणतियाँ करता है, देशसे देशान्तर जाता है लेकिन वह तो पौद्गलिक नही है, ऐसा आत्माके साथ भी व्यभिचार दोष नही दे सकते, क्योंकि हेतु में दूसरा विशेषण पड़ा हुआ है अचेतन होनेपर। आत्मा अचेतन है नही, इससे इसमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधन नही लगता । यह विपक्षमें ही है । कोई कहते कि सामान्यके साथ इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा । देखो ! सामान्य कुछ लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत भी है. एक समान अनेक पदार्थोंमें जो सदृशताका बोध होता है वह सामान्य धर्मके कारण ही तो होता है । तब है प्रत्यक्ष और अचेतन है पर पौद्गलिक तो नही माना गया । समाधानमें कहते हैं कि सामान्यके साथ हेतु इस कारण व्यभिचरित नही है कि सामान्य क्रियावान नही है, हेतुमें तीन बातें कही गई हैं । हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो, अचेतन हो और क्रियावान हो, ये तीन बातें जिस पदार्थमें पायी जायें वह पदार्थ नियम से पौद्गलिक ही होता है ।

हेतुवोंसे शब्दके आकाश लिङ्गत्वकी असिद्धि होनेसे शब्दलिङ्गत्वके कारण आकाश द्रव्यकी सिद्धिकी अनुपपत्ति—वैशेषिक सिद्धान्तवादी, जो भी लोग जितने ही हेतु देते हैं शब्दको द्रव्य न सिद्ध करनेके लिए, शब्दको आकाशका गुण सिद्ध करनेके लिए जो जो भी हेतु दिये गए हैं जैसे कि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभुत होकर अचेतन होनेसे इत्यादिक वे सब हेतु आकाश गुणत्वको सिद्ध नही करते, किन्तु किसी कार्यद्रव्यके गुणको सिद्ध करते हैं आकाश गुणत्वके निराकरणमें आकाश गुणके निषेधके लिए भी जो हेतु दिये गये हैं वे हेतु शब्द आकाशका गुण नही है यह भी सिद्ध करते हैं और वह पौद्गलिक है यह भी सिद्ध करते हैं । तो शब्द जब आकाशका गुण सिद्ध न हुआ तब आकाशको शब्द लिङ्ग कहना और शब्दलिङ्गके ही साधनसे आकाशकी सिद्धि करना यह बात अयुक्त हो गई । शब्द आकाशका गुण नही है, शब्द गुण वाला आकाश नही है, किन्तु आकाश अनन्त प्रदेशी सावयव अमूर्त एक स्वतंत्र द्रव्य है, किन्तु विशेषवादमें तो इस प्रकार आकाशका स्वरूप नही माना अतएव आकाश द्रव्य जिस स्वरूपसे माना है वह असिद्ध होनेसे आकाश तत्त्वकी सिद्धि नही होती ।

अवगाहनहेतुत्वरूप असाधारण गुणसे आकाश द्रव्यकी सिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि आकाश पदार्थकी सिद्धि शब्दलिंगके नातेसे नहीं होती तब फिर कैसे सिद्धि होती है ? कैसे जाना जाय कि आकाश नामका पदार्थ कोई वस्तुभूत सत् है ? समाधानमें कहते हैं कि आकाशकी सिद्धि इस हेतुसे होगी—आकाश द्रव्य है, क्योंकि वह एक साथ समस्त द्रव्योंके अवगाह करनेका कार्य करता है, जितना जो कुछ एक साथ समस्त द्रव्योंका अवगाहका काम है वह किसी एक साधारण कारण की अपेक्षा रखकर होता है । कारणकी अपेक्षा रखे बिना समस्त द्रव्योंका अवगाह हो यह युक्तिमें आ ही नही सकता, एक साथ समस्त द्रव्योंका अवगाह साधारण कारणके बिना हो ही नही सकता । तो चूंकि समस्त पदार्थोंका एक साथ अवगाह देखा जारहा है इससे सिद्ध होता है कि इस प्रकारके अवगाहका कारणभूत कोई साधारण कारण अवश्य है और समस्त द्रव्योंके अवगाहका जो भी साधारण कारण है वह है आकाश ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो आकाशका लक्षण है अवगाह न कि शब्द। शंकाकार कहता है कि अवगाहका कारण आकाश कैसे सिद्ध हो सकता है ? देखो ! घीका शहदमें अवगाह होता है। शहदमें जितनी मात्रा हो उससे बढ़ेगा नहीं और उसमें घीका प्रवेश हो जायगा। तो देखो ! मधुमें घीका अवगाह होता है और राखमें जलका अवगाह होता है। किसी बर्तनमें राख पड़ी हुई है और उसीमें बहुतसा पानी आ जाता है, तो राखमें जलका अवगाह हो गया। पानीमें घोड़ा आदिकका अवगाह हो जाता है। तालाबमें घोड़े, भैंस वगैरह नहानेके लिये भेज दिये जाते और वे तालाबमें निमग्न हो जाते हैं। तो देखो ! पानीमें अश्व आदिकका अवगाह हो गया। इसी प्रकार समझ लीजिये प्रकाश और अन्धकारमें समस्त पदार्थोंका अवगाह है। इस कारणसे आकाश पदार्थकी सिद्धि नहीं है। देखो ! सारे ही पदार्थ या तो प्रकाशमें पड़े हैं या अंधकार में पड़े हैं। तो आकाशमें अवगाह नहीं है इन सबका। प्रकाशमें और अंधकारमें अवगाह है। आकाश नामका कोई पदार्थ नहीं है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात यों युक्त नहीं है कि प्रकाश और अंधकारका भी आकाशके अभावमें अवगाह नहीं बन सकता। बताओ ! प्रकाशका कहाँ अवगाह है ? और अंधकारका भी किसमें अवगाह है ? यदि आकाश न होता तो प्रकाश भी ठहर नहीं सकता था, न अंधकार भी ठहर सकता था। और भी जितने दृष्टांत दिये हैं—जैसे मधुमें घीका ठहरना, जलमें अश्व आदिकका ठहरना, राखमें जलका ठहरना, जलमें अश्व आदिकका ठहरना, ये सारेके सारे आकाशमें ही तो अवगाहित हैं। मधु कहाँ पड़ा है ? उसी आकाशमें ! राख कहाँ पड़ी है ? आकाश में ! जल कहाँ है ? आकाशमें ! इसमें दूसरे पदार्थोंका भी प्रकाश है तो वे भी सब कहाँ हैं ? आकाशमें ! तो आकाशका अभाव होनेपर इन सबका भी अवगाह नहीं बन सकता।

आकाशके स्वावगाहित्वकी सिद्धि एवं अन्य पदार्थोंके आकाशमें अवगाहकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि समस्त पदार्थोंका जैसे आकाशमें अवगाह बताया है इसी प्रकार आकाशका भी तो किसी अन्य आधारमें अवगाह होना चाहिये। यदि सब पदार्थ आकाशमें रहें तो आकाश किसमें रहता है सो बताओ ? आकाशका भी कोई आधार होना चाहिये। और, आकाशका जो कुछ भी आधार मानोगे कि इसमें रहता है आकाश तो वह भी कहाँ रहता है ? उसका भी अधिकरण कोई दूसरा होना चाहिए ! इस तरहसे अनवस्था दोष आता है। कहीं भी बात खतम नहीं हो सकती, फिर वह कहाँ रहता है ? जो कुछ भी बताओगे, फिर वह कहाँ रहता है ? यदि कहो कि आकाश अपने स्वरूपमें रहता है। सब पदार्थोंका अवगाह तो आकाशमें है और आकाशका अवगाह अपने स्वरूपमें है। तो ऐसा माननेपर फिर तो सीधा ही मान लो कि समस्त पदार्थोंका अवगाह अपने–अपने स्वरूपमें है। आकाश माननेकी आवश्यकता ही क्या रही ? और, जब यह प्रसङ्ग आ गया कि सर्व पदार्थ अपने आप के स्वरूपमें हैं, आकाश माननेकी आवश्यकता ही क्या रही ? और जब यह प्रसङ्ग

Version 1

आ गया कि सर्व पदार्थ अहने आपके स्वरूपमें ही अवस्थित हैं तब फिर आकाशकी सिद्धि कहाँसे हो सकती है ? समाधानमें कहते हैं कि यह बात कहना अयुक्त है क्योंकि आकाश तो है सर्वव्यापक, परिपूर्ण व्यापक। अतः आकाशके व्यापी होनेके कारण आकाशका तो अपनेमें अवगाह होता है और ऐसा मान लेनेपर अनवस्था दोष भी नही आ सकता। समस्त पदार्थ आकाशमें अवस्थित हैं और आकाश चूंकि व्यापी है, इस कारण अपने आपमें ही अवस्थित है। इससे अनवस्था दोषकी गुञ्जाइस ही नही है, पर अन्य जो द्रव्य हैं आकाशको छोड़कर शेष द्रव्य हैं अव्यापी, थोड़े–थोड़े देशमें रहने वाले, उनकी सीमा है। जैसे चौकी है तो तीन फिटकी या १॥ फिटकी है, ऐसे ही जितने भी पदार्थ हैं वे सब अव्यापी हैं, सबकी सीमा है। तो शेष पदार्थ अव्यापी होनेके कारण अपने आपमें अवगाही नहीं हो सकते अर्थात् यह उत्तर ठीक नही बैठता कि जैसे आकाश अपनेमें अपना अवगाह बनाये हुए है ऐसे ही सारे पदार्थ अपनेमें अपना अवगाह बनाये हुए हैं। अल्प परिमाण वाली वस्तु अपने आपके आधारमें रहती हुई नही देखी गई है। जैसे कि देखो ना ! घोड़ेका अवगाह जलमें है तो जलका परिमाण ज्यादह हुआ कि घोड़ेका ? अल्प परिमाण वाली चीज महान परिमाण वाली चीजमें अवगाहित होती है। तो इसी प्रकार ये समस्त द्रव्य अल्प परिमाणवाले हैं, अव्यापी है। इस कारण इनके अपने आपमें अवगाह नही, किन्तु आकाशमें अवगाह है।

निश्चयसे सर्वपदार्थोंका स्वस्वस्वरूपमें अवस्थान एवं अपने असाधारण गुणके स्वप्रयोगमें परानपेक्षा—यहाँ एक बात विशेषतया समझ लेना कि यह वर्णन व्यवहार दृष्टिका चल रहा है, निश्चय दृष्टिसे तो सभी पदार्थोंका अवस्थान अपने आपके स्वरूपमें है। निश्चय दृष्टि केवल एक पदार्थको उस ही के गुणपर्यायमें देखती है। तो इस दृष्टिसे जब भी किसी पदार्थको निरखा तो वह अपने प्रदेश मात्र है और सदासे उसका अपने आपके क्षेत्रमें ही अवस्थान रहा आया है, ऐसी उस वस्तुके अन्तर्गत स्वरूपकी बात नही कही जा रही है, किंतु बाह्य आधार आधेयकी बात कही जा रही है। ये सब पदार्थ किस जगह ठहरे हुए हैं इस बाह्य क्षेत्र आकाशमें, सबका अवगाह आकाश में है। एक बात इस प्रसङ्गमें और भी जान लीजिये ! जिस पदार्थको जो भी असाधारण गुण है उसका जो कार्य है उसे अपने कार्यका स्वरूप बनानेके लिये अन्य तादृश गुणकी अपेक्षा नही करनी पड़ती। जैसे कि काल द्रव्यका असाधारण गुण है परिणमन हेतुत्व, तो काल द्रव्य अन्य द्रव्योंके परिणमनका कारण है। लेकिन काल द्रव्यके परिणमनके लिये वही स्वयं कारण है, कालके परिणमनके लिये अन्य गुणकी अपेक्षा नही है। इसी प्रकार आकाश द्रव्यका असाधारण गुण है अवगाहन-हेतुत्व, सो आकाश सब द्रव्योंके अवगाहका कारण है, लेकिन आकाशके अवगाहके लिये आकाश स्वयं कारण है। जीव पुद्गलके असाधारण गुणकी भी यही बात है। चेतनमें सचेतन आनेके लिये अन्य चेतन गुणकी अपेक्षा नही, पुद्गलके रूपमें रूपक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आनेके लिये अन्य गुणरूपकी अपेक्षा नही। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य निष्क्रिय हैं। अतः उनके गुणके अनुरूप आवर्तनकी वहाँ आवश्यकता है।

दिशा काल आत्माके अवगाहके अधिकरणकी शंका व उसका समाधान —शंकाकार कहता है कि ऐसा माननेपर कि अल्प परिमाण वाली वस्तु महा परिमाण वाली वस्तुमें आधेय होती है अर्थात् अल्प परिमाण वाली चीज अपने आपके ही अधिकरणमें रह जाय, सो बात नही। ऐसा कहनेपर एक प्रश्न उठता है कि तब फिर दिशा, काल और आत्मा इन तीन पदार्थोंका आकाशमें अवगाह कैसे हो सकता है? क्योंकि इस प्रसङ्गमें यह कहा जा रहा है कि अल्प परिमाण वाली वस्तु महा परिमाण वाली वस्तुमें अवगाहित होती है। तो दिशा तो व्यापी है, अल्प परिमाण नही है। जितना परिमाण आकाशका है, उतना ही परिमाण दिशाका है, उतना ही परिमाण कालका है और उतना ही परिमाण आत्माका है। फिर यह अव्यापी नही है, अल्प परिमाण वाला नहीं है, आकाशकी भाँति व्यापी है, तब यह आकाशमें कैसे ठहर सकता है? समाधानमें कहते हैं कि यह बात कहना अयुक्त है, क्योंकि तुम्हारा हेतु असिद्ध है। तुम्हारा हेतु है दिशा, काल, आत्मा ये व्यापी हैं इस कारण इनका आकाशमें अवगाह कैसे रह सकेगा? इस प्रश्नमें व्यापित्व हेतु असिद्ध है, क्योंकि दिशा तो कोई द्रव्य ही नही है, उसे व्यापी कहनेका तो साहस ही न हो सकेगा। रहे काल और आत्मा सो काल व्यापी नही है, अव्यापी है, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है और आत्मा भी व्यापी नही है किन्तु असंख्यात प्रदेशी है और अपने-अपने देहके परिमाण आकारमें रहा करते हैं। इन सब बातोंका आगे समर्थन किया जायगा। उससे और विवरणके साथ सिद्ध हो जायगा। इस कारण यह प्रश्न नही उठ सकता कि दिशा, काल और आत्मा इनका फिर अवगाह आकाशमें कैसे हो जायगा व्यापी होनेसे? उत्तरका निष्कर्ष यह है कि ये पदार्थ व्यापी नही हैं, दिशा द्रव्य ही नही, इस कारण उसमें व्यापी अव्यापी अवगाह आदिकी चर्चा ही असम्भव है। काल और आत्मा अव्यापी हैं इस कारण उनका आकाशमें अवगाह होता है।

अमूर्त अमूर्तोंमें भी आधाराधेय भावकी उत्पत्ति —शङ्काकार कहता है कि काल और आत्माको अव्यापी भी मानलें तो भी आखिर हैं तो दोनों द्रव्य अमूर्त, रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित। तो अमूर्त होनेके कारण काल और आत्मामें कभी आकाशमें अथवा आकाशसे गिर तो सकते नहीं। जैसे कि चौकी, तखत, ईंट, पत्थर आदिक गिर जाया करते हैं। वैसे काल और आत्मा आकाशसे नीचे गिर जायें, ऐसा तो होता नहीं, फिर वे आकाशके आधेय कैसे कहला सकते हैं? समाधानमें कहते हैं कि यह बात कहना अयुक्त है। अमूर्त होनेपर भी आधेयता हुआ करती है। ज्ञान सुख आदिक गुण अमूर्त हैं कि नही हैं अमूर्त! लेकिन ये आत्माके आधेय हैं, इनका आधार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मा है। देखो! अमूर्त तत्त्व भी आधेय हो सकता है. इस कारण यह भी बात न बन सकेगी। कोई कहे कि अमूर्त होनेके कारण आकाश किसीका भी अधिकरण नही हो सकता। और अमूर्त होने पर भी देखो आत्मा ज्ञानादिकका अधिकरण है कि नही। अमूर्त आधेय भी हो सकता है। और अमूर्त अधिकरण भी हो सकता है तो जैसे आत्मा ज्ञानादिकका अधिकरण है इसी प्रकार आकाश काल, आत्मा आदिक अमूर्त पदार्थोंका भी अधिकरण है। तथा जैसे ज्ञान सुख आदिक अमूर्त होकर भी आत्माके आधेय है इसी प्रकार काल, आत्मा भी अमूर्त होकर भी आकशके आधेय है। इन दोनों प्रकारके आधार और आधेय बतानेमें थोड़ा अन्तरङ्ग और बहिरङ्गकी विलक्षणता समझना चहिए जैसे ज्ञान आदिकका अधिकरण अमूर्त आत्मा है, वह अभिन्न अधिकरण है, पर काल व आत्माका अधिकरण आकाश है. वह अभिन्न अधिकरण नही है, पर अमूर्त अमूर्तमें भी आधार आधेयभाव बन सकता है, इसके लिए ये दृष्टान्त दिये हैं।

समानसमयवर्ती पदार्थोंमें भी आधाराधेयभावकी उत्पत्ति—अब शंकाकार कहता है किसमान समयमें रहनेके कारण समस्त पदार्थोंका आकाशके साथ आधार आधेयभाव नही बन सकता अर्थात् आकाश भी उसी समय है और विश्वके समस्त पदार्थ भी उसी समय हैं। एक ही समयमें रहने वालेमें हम क्या विभाग बनायें कि यह तो आधार है और यह आधेय है। यदि समान समय रहने वाले पदार्थोंमें आधान और आधेय विभाग बना दिया जाय तो आधार आधेयमें तो ऐसी पद्धति होती है कि आधार होता है पहिले और आधेय होता है, बादमें जैसे घड़ा है, उसमें पानी भर दिया तो घड़ा तो आधार है पानी आधेय है। अब इन दोनोंमें निरख लीजिये कि घड़ा तो पहिले है, पानी बादमें आया तो आकाश आधार है और ये समस्त पदार्थ आधेय हैं ऐसा मानने पर आकाशके बादमें समस्त पदार्थोंका सद्भाव बनना चाहिये। समाधान में कहते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि समान समयमें रहने वाले आत्मा और अमूर्तपना इन दोनोंका अधार आधेयभाव है कि नही, इसी तरह समान समयमें रह रहे हैं आकाश और विश्वके समस्त पदार्थ तो भी इनमें अधार आधेयभाव बन जाता है, अन्यथा बतलावो कि आत्मा पहिले है कि अमूर्तपना पहिले है? यदि कहोगे कि आत्मा पहिले है अमूर्तपना बादमें आया, क्योंकि आत्मा आधार है और अमूर्तपना आधेय है तो अमूर्तपनाके बिना आत्माका ढंग क्या होगा? तो यह कोई कल्पना नही कर सकता कि आत्मा और अमूर्तपनामें कोई एक चीज पहिले है और एक बात बादमें आयी। तो आत्मा और अमूर्तपना ये दोनों समान समयसे हैं फिर भी आधार आधेय भाव इसमें प्रतीत होता ही है। शङ्काकारने भी विशेषवादियोंने भी आत्मा और अमूर्तपना पूर्वापर नही माना, अर्थात् पहिले आत्मा है बादमें अमूर्तपना आया इस तरह नही माना, क्योंकि ऐसा यदि मान लिया जाय तो आत्मामें नित्यत्वका विरोध हो जायगा। देखो! पहिले आत्मा अमूर्तत्वरहित अवस्थामें था और अब अमूर्तसहित अवस्थामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मा आया। अनित्य तो उसको ही कहते हैं कि जिसकी पहिले कुछ और अवस्था थीपश्चात् कुछ दूसरी अवस्था हुई है। तो यों आत्मा और अमूर्ततत्त्वके पूर्वापर मानलेसे आत्मामें नित्यत्व नही ठहर सकता।

नित्यानित्यात्मक पदार्थोंमें आधाराधेय भावकी उपपत्ति—अब यह क्षणिकवादी शंकाकार कह रहा है कि सारे पदार्थ क्षणिक हैं. ये प्रथम क्षणमें उत्पन्न होते हैं द्वितीय क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। तो ऐसे क्षणिक समस्त पदार्थोंमें आधार और आधेयभावकी कल्पना सोचना यह तो व्यर्थमें समय गवाना है। अरे आकाश भी क्षणिक है, पदार्थ भी क्षणिक है, सारे पदार्थ एक क्षणवर्ती हैं फिर उनमें आधार और आधेय भावकी कल्पना ही क्या? समाधानमें कहते हैं कि यह तो तुम्हारे मनोरथमें उड़ान करनेकी ही बात है। अर्थात् यह कथन सत्य नही है। पदार्थ क्षण भरमें ही रहता है, दूसरे क्षण नष्ट हो जाता है यह सिद्ध नही होता। सर्व पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य हैं और पर्याय दृष्टिसे अनित्य हैं। केवल क्षणिक ही रहे पदार्थ तो इसका निष्कर्ष यह होगा कि अगले क्षणमें असत् सत् बन गया, प्रति क्षणमें असत् सत् बन जाया करता है यह बात बिल्कुल बेतुकी है। असत् सत् बन जाया करे तो फिर जो आज तक कभी भी नही हुए—जैसे आकाशके फूल, खरगोशके सींग, गधेके सींग, जो बात अत्यन्त असत् है उसका क्यों नही प्रादुर्भाव हो गया। क्षणिक माननेका अर्थ तो यही है कि जो कुछ भी न हो उससे कुछ बन जाय। ऐसा न विज्ञानमें संगत है, न युक्तिमें सङ्गत बनता है और न प्रत्यक्षसे ही निरखा जाता है। चीज वही की वही वर्षों तक दिखती है। वहाँ अवस्थाओंमें थोड़ा बहुत अन्तर आता रहता है। यों प्रत्येक पदार्थ नित्यानित्यात्मक है, न कोई सर्वथा नित्य है, न कोई सर्वथा अनित्य है, इस कारण समस्त अर्थोंमें क्षणिकपना ही है, ऐसी हठ करना अयुक्त बात है। और, जब अत्यन्त क्षणिकता नही है तो उनमें आधार आधेय भावकी भी बात सोचना बिल्कुल सही है।

आकाशके आधारत्त्व व अन्य निखिल अर्थोंके आधेयत्वकी लोकप्रतीति आकाश आधार है और समस्त अन्य द्रव्य आधेय हैं, ऐसा निर्बाध ज्ञान प्रायः सभीको हो रहा है। कहते हैं ना, कि आकाशमें पक्षी उड़ रहे हैं, आकाशसे अमुक चीज उतरी है आदिक जो ज्ञान होते हैं उन अबाधित ज्ञानोंसे भी आकाशका आधारपना सिद्ध हो जाता है। तो यों आकाश वस्तुभूत द्रव्य तो है परन्तु वह सर्वथा नित्य निरंश और शब्द लिङ्ग हो यह बात नही है। जैसा कि विशेषवादमें माना गया है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोध करते समय जो कहा गया है कि प्रमाणका प्रमेय सामान्यविशेषात्मक नही होता किन्तु द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय रूप हुआ करता है यह बात युक्त नही बैठती। आकाश द्रव्य है, पर वह शब्द लिङ्ग नही है, निरवयव नही है, कूटस्थ नित्य नही है। नित्यानित्यात्मक सावयव अमूर्त समस्त पदार्थोंके अवगाहनका कारणभूत आकाशका द्रव्य है। विशेषवादमें माने गए शब्दलिंग

Version 1

नित्य निरवयव आकाश द्रव्यकी सिद्धि नहीं होती।

सामान्य विशेषात्मकताके विरोधमें शंकाकार द्वारा कथित नित्य निरंश शब्दलिङ्ग आकाशकी असिद्धि—प्रकरण यह चल रहा कि प्रमाणका विषय प्रमेय सामान्यविशेषात्मक होता है। केवल सामान्य कुछ नहीं है, केवल विशेष कुछ नहीं है, सामान्य और विशेष कोई सत् नहीं, द्रव्य नहीं, पदार्थ नहीं, किन्तु पदार्थका ही धर्म सामान्य है, पदार्थका ही धर्म विशेष है। सामान्यविशेषात्मक पदार्थ होते हैं, ऐसा माननेके बाद फिर उनकी जातियाँ निरखिये! उनके भेद प्रभेद निरखिये! तब तो मार्ग सही मिल सकता है, पर वस्तुका स्वरूप ही सही न माना जाय, उसके विपरीत कुछ भी कहा जाय तो वहाँ फिर यथार्थ व्यवस्था नहीं बन सकती। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, इसके विरोधमें विशेषवादियोंमे द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोंकी व्यवस्था रखनेका प्रस्ताव किया था, लेकिन ये सब कुछ सिद्ध नहीं हो पा रहे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार जुदे-जुदे पदार्थ सिद्ध नहीं हो सकते, क्योंकि ये चारों परस्परमें उपादान उपादेयसे रहा करते हैं। तो ये चार जाति के ही पदार्थ हैं जिन्हें पुद्गल द्रव्यसे कहा जायगा। आकाश नामक ५ वें पदार्थके सम्बन्धमें अभी बहुत विस्तारसे विश्लेषण विवेचन चला ही है। नित्य निरवयव शब्द-लिंग आकाश भी द्रव्य नहीं है।

नित्य एक व्यापी काल द्रव्यकी सिद्धिके लिये शंकाकारका कथन—अब छठवाँ द्रव्य विशेषवादमें काल नामक माना है, उस काल द्रव्यकी भी सिद्धि नहीं है। विशेषवादमें कालद्रव्यको माना कि वह व्यापक है, नित्य है और एक है। हो कोई नित्य व्यापक एक कालनामक द्रव्य ऐसी बात युक्तिमे सिद्ध नहीं होती। शंकाकार कहता है कि काल द्रव्य तो सर्वजनोंके ज्ञानसे प्रसिद्ध है। यह छोटा है, यह बड़ा है, यह एक साथ हुआ है। यह क्रमसे हुआ है, यह देरमें हुआ है, यह जल्दी हुआ है, इस प्रकारके जो ज्ञान हो रहे हैं ये ज्ञान कालद्रव्यको ही सिद्ध कर रहे हैं। छोड़े बड़े आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं इन ज्ञानोंका कारण कोई पदार्थ अवश्य है। और जो भी पदार्थ है उसका नाम कुछ भी रखिये यहाँ काल द्रव्य नाम रखा गया है। यह काल द्रव्य शेष ८ द्रव्योंसे भिन्न है और काल है काल है इस प्रकारका जो व्यवहार चल रहा है वह भी यथार्थ है। इन दोनों बातोंकी सिद्धि करनेमें साधन है परापरयौगपद्य.योगपद्यादिप्रत्यय छोटा बड़ा युगपत् अयुगपत् आदिक जो ज्ञान चलते हैं उन ज्ञानोंसे सिद्ध है कि इन प्रत्ययोंका कारणभूत कालनामक द्रव्य है उसका अनुमान प्रयोग कर लीजिये। काल इतर पदार्थोंसे भिन्न पदार्थ है और काल ऐसा व्यवहार किया ही जाना चाहिए, क्योंकि छोटे बड़ेका भेद एक साथ अथवा क्रमसे होनेका भेद देरमें हुए जल्दी हुएका भेद जो ज्ञात होता है। इन विज्ञानोंसे ही यह जाना जाता है कि इसका आश्रयभूत काल नामक द्रव्य है और यह बात अन्य द्रव्योंमें नहीं पायी जाती है। इससे काल अन्य द्रव्यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से प्रथक् अपना सत्त्व रखता है। जो अन्य पदार्थोंसे भिन्न नही होता और काल इस नामसे व्यवहृत नही होता वह कभी भी छोटे, बड़े एक साथ, क्रमश: चिर भवाक्षिप्रभव इन ज्ञानोंका लिङ्ग रही बनता। जैसे–पृथ्वी आदिक। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे क्या छोटे बड़ेका भेद बन सकता है? एक साथ हुए क्रमसे हुए देरमें हुए, क्या पृथ्वी आदिक कारण बन सकते हैं? व्यवहार कालमें ये सब भिन्नतायें कालको ही सिद्ध करती हैं।

परापरादि प्रत्ययरूप विशिष्ट कार्यसे विशिष्ट कारणरूप काल द्रव्य की सिद्धिमें शंकाकारका कथन—यहाँ कोई ऐसा सन्देह न करे कि ये ज्ञान तो हुए छोटे बड़े युगपत् अयुगपत्, पर यह प्रत्यय किसी सामान्य निमित्तको सिद्ध कर देगा। कार्य ही है इसका कारण यह क्यों सिद्ध हो सकेगा? उत्तरमें कहते हैं कि ये सब विशिष्ट कार्य हैं। सो विशिष्ट कार्य होनेसे यह जो विज्ञान चल रहा है पर अपर आदिकका यह विज्ञान कालमें ही प्रतिबद्ध है। कार्यका ही अविनाभूत है, क्योंकि जो विशिष्ट कार्य होता है वह विशिष्ट कारणसे ही उत्पन्न होता है। जैसे–घट है यह ज्ञान घट पदार्थसे ही उत्पन्न होगा इसी प्रकार यह काल है ऐसा ज्ञान काल नामक पदार्थसे ही उत्पन्न होगा। विशिष्ट कार्य होनेसे ये सब ज्ञान उस काल द्रव्यको ही सिद्ध करते हैं। ज्ञानोंकी पदार्थोंसे उत्पत्ति होती है इस सिद्धान्तसे भी जब हमें कालका बोध चल रहा है कि यह छोटा है, यह बड़ा है, यह एक साथ हुआ है, इतना समय हो गया है, इतने दिन हो गए हैं आदिक जो कालका ज्ञान चल रहा है, वह ज्ञान काल पदार्थ को ही सिद्ध करता है। कभी कभी दिशा और देशकी अपेक्षा भी पर अपरका व्यवहार होता है। यह परे है यह उरे है इस तरहका पर अपरका जो व्यवहार चलता है देश आदिककी अपेक्षासे, वे पर अपर भिन्न चीजें हैं और कालकृत जो व्यवहार चलता है यह पहिला है यह बादका है यह कालकृत बात है तभी तो जिस जगहमें ठहरे हुए पितामें परत्त्वका व्यवहार होता है याने बड़ा है, उसी जगह ठहरे हुए पुत्रमें अपरत्त्वका व्यवहार होता है याने यह छोटा है, बादका है तो दिशाओंकी अपेक्षा होने वाले पर अपर व्यवहारसे काल अपेक्षासे होने वाले पर अपरका विज्ञान जुदा ही है और वह ज्ञान यह सिद्ध करता है कि कालनामक वास्तविक द्रव्य है और वह दिग्देशादिकोंसे अन्य ज्ञान प्रथक् है।

कालको एक व्यापक निरंश द्रव्यके समर्थित करनेके लिये शंकाकारका अन्तिम वक्तव्य– शंकाकार कहता है कि काल द्रव्यका निमित्त पाये बिना छोटे बड़े पूर्व पश्चात्, युगपत, अयुगपत, इनमें भेद नही रह सकता। यदि काल द्रव्य न हो तो सब एक हो जायगा। जो परस्पर भेद पाया जा रहा है यह १० वर्षका है यह इससे १० वर्ष बड़ा है, यह सब काल द्रव्यके निमित्तसे ही ज्ञान हो रहा है। यह भी नही कह सकते कि यह जो पर आदिक ज्ञान हो रहा है उसका निमित्त सूर्य आदिककी

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्रिया हो या कोई द्रव्य हो अथवा घड़ी आदिक हो वृद्धादिक अवस्थायें हों ये पर अपर आदिक प्रत्ययके निमित्तभूत हो जावेंगे, ऐसा भी नही कह सकते क्योंकि पर अपर आदिक जो प्रत्यय हो रहे हैं वे इन ज्ञानोंसे विलक्षण हैं। सूर्यकी क्रिया होनेसे जो ज्ञान होता है उस ज्ञानकी मुद्रा और है और ये सीधे काल निमित्तक हैं, ये कालके चिन्ह ही हैं, चिर काल तक होना जल्दी होना एक साथ होना, क्रमसे होना आदिक ये सब कालके चिन्ह कहलाते हैं। और वह काल आकाशकी ही तरह सर्वव्यापक है, नित्य है, एक है, इस तरह विशेषवादी अपना पूर्वपक्ष रख रहा है कि काल द्रव्य भी पृथ्वी आदिककी तरह स्वतंत्र द्रव्य है और इससे द्रव्यकी व्यवस्था है, न कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ हो और फिर उस पद्धतिसे वहाँ निरखा जाय। सामान्य विशेष जब स्वयं स्वतंत्र पदार्थ हैं तब तो पदार्थोंके माननेकी पद्धति विशेषवादकी ही सही उतर सकती है।

कालकी अनेकद्रव्यरूपताका प्रतिपादन - अब उक्त शंकाओंका समाधान करते हैं। जो शंकाकारने यह कहा है कि पर अपर युगपत् अयुगपत् आदिक ज्ञानोंसे कालका अनुमान होता है सो इस पर अपर आदिक प्रत्ययरूपलिङ्गका जो ज्ञान अनुमेय होता है वह काल एक द्रव्यरूप है या अनेक द्रव्यरूप। इन दो विकल्पोंमेंसे कौन सा विकल्प युक्त मानते हो? वह काल एक द्रव्य है ऐसा तो कह नही सकते क्योंकि मुख्य काल और व्यवहार काल इन भेदोंसे ही इनके दो भेद सर्वप्रथम हो जाते हैं। देखो! समय, आवली, घड़ी, मुहूर्त, दिन आदिक जो व्यवहार काल चल रहा है, जिससे लोक व्यवहार किया जाता है तो यह व्यवहार काल मुख्य काल द्रव्यके बिना नही हो सकता। जैसे कि मुख्य सत्त्वके बिना किसी भी पदार्थमें उपचरित सत्त्व नही कहा जा सकता। जैसे किसी बालकको अग्नि, सिंह कहे, तो कोई वास्तविक सत् अग्नि हो और सिंह हो तब तो बालकमें अग्नि सिंहका उपचार किया जा सकता है। कोई बालक वीर है तो कहते कि यह शेर है तो वह उपचार ही तो किया गया। कहीं चार पैर बड़े नख लम्बी पूछ वाला शेर तो नही बन गया वह बालक। तो मुख्य सत्त्वके बिना कही उपचरित सत्त्वकी बात नही कही जा सकती है। इसी प्रकार जो व्यवहार कालका प्रचलन है वह भी मुख्यकालके बिना नही हो सकता है और जो मुख्यकाल है वह अनेक द्रव्य है, एक काल द्रव्य नही है, क्योंकि प्रत्येक आकाश प्रदेशपर व्यवहारकाल भेदकी अन्यथा उत्पत्ति नही बन सकती। यदि काल द्रव्य एक नित्य सर्वव्यापी होता तो प्रत्येक आकाश प्रदेशपर जो व्यवहार कालका भेद बन रहा है वह नही हो सकता था। देखो! व्यवहार कालका भी प्रत्येक आकाश प्रदेशमें भेद है अन्यथा कुरूक्षेत्र आदिक जो भिन्न-भिन्न आकाश देश हैं, इनमें दिग्देश आदिक भेदोंकी उपपत्ति नही बन सकती जैसे कहीं दक्षिणायन सूर्य होता उत्तरायण होता, छोटे, दिन होते बड़े दिन होते, यहाँ दिन है तो और जगह रात है आदिक भेद जो आकाश प्रदेशमें नाना प्रकारके व्यवहार कालके बन रहे हैं वे न हो सकते थे, यदि प्रत्येक प्रदेशपर भिन्न-भिन्न काल द्रव्य न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

माना जाय। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक लोकाकाशपर अणुरूपसे उतने ही काल द्रव्य बराबर अवस्थित हैं। जैसे कि रत्नोंकी रासि कही रखी हो तो प्रत्येक रत्न भिन्न–भिन्न प्रदेशोंमें हैं इसी तरह कालद्रव्य भी रत्नोंकी राशिकी तरह एक दूसरेसे पृथक् प्रत्येक आकाश प्रदेशपर एक एक कालाणु अवस्थित है।

कालकी एकद्रव्यरूपताका प्रतिषेध –शंकाकार कहता है कि युगपत् अयुगपत् चिरक्षिप्र आदिक जो भी प्रत्यय हो रहे हैं वे सब एक काल सामान्यरूप हैं, उन प्रत्ययोंमें परस्पर विशेषता न होनेसे कालकी एकता सिद्ध होती है कि काल एक है। क्योंकि समय निमित्तक ज्ञानोंमें कोई विशेषता नही पायी जा रही है समयकी दृष्टिसे। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी असत्य है, क्योंकि युगपत् अयुगपत् आदिक प्रसंगोंमें अविशेषता सिद्ध है। वे भिन्न–भिन्न प्रत्यय हैं क्योंकि उनमें भेद पाया जाता है। एक साथ कार्य होता है कुछ, कोई कार्य क्रमसे होता है, क्या इनमें कुछ फर्क नही है। कोई कार्य देरसे बनता है कोई शीघ्र तो क्या इनमें समय भेद नही है ? तो इन सब प्रत्ययोंमें परस्पर भेद होनेसे कालमें भी भेद सिद्ध होता है। शंकाकार कहता है कि कालमें जो यह भेद नजर आ रहा है कालकी विशिष्टता जो ज्ञानमें आ रही है वह कालमें नही है, वह सहकारी कारणोंकी विशेषता है। जैसे एक सूर्य जितने समयमें एक ओरसे दूसरी ओर निकल गया उसको एक दिन कहते हैं। तो यह सहकारी कारणोंकी वजहसे विशेषता है–एक दिन, दो दिन, आधा दिन या देरसे हुआ, जल्दी हुआ ये सब सहकारी कारणोंके भेदसे भेद बनते हैं। कालके भेदसे नही। काल तो एक रूप ही है। समाधानमें कहते हैं कि यह भी तुम्हारा उत्तर सही नही है क्योंकि सहकारी कारणोंकी जरूरत वहाँ क्या पड़ती है। यदि सहकारी कारण जिसके लिए कहा गया है उसके स्वरूपमें भेद न डालें। जहाँ जहाँ भी सहकारी कारण कहे जाते हैं, जिसके जो सहकारी बोले गए हैं वे उसके स्वरूपमें भेद बताते हैं। स्वरूपमें यदि भेद नही डालते हों तो उन कारणोंको सहकारी कारण नहीं कह सकते।

कालको नित्य निरंश व्यापक माननेपरअतीता दिव्यवहारके लोपका प्रसंग–और भी बात देखिये ! यदि कालको निरवयव एक द्रव्यरूप माना जाय तो यह बतलावो कि फिर भूत भविष्य कालका व्यवहार कैसे बनेगा ? आपका काल तो हो गया एक तथा निरंश सर्वव्यापी तब फिर यह काल अतीत है, यह वर्तमान है, यह वर्तमान है, यह भविष्य है यह भेद कैसे बन जायगा ? ये तो कालके भेद हैं। काल माना तुमने एक सर्वव्यापक नित्य, निरवयव। क्या उन अतीत आदिक व्यवहारोंको अतीत आदिक पदार्थोंकी क्रियाके सम्बन्धसे बताओगे अथवा स्वतः ही बताओगे ? यदि अतीत आदिक अर्थ कियाके सम्बन्धसे कालमें अतीत आदिक व्यवहार बताओगे तो उसमें दो विकल्प उठते हैं, क्या अपर अतीतादि अर्थ क्रियाके सम्बन्धसे अर्थ क्रियाकी अतीततादिता है या अतीतादिकालके सम्बन्धसे। यदि अपर अतीतादि अर्थ क्रियाके

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्बन्धसे कहो तो अनवस्था दोष आ जाता है क्योंकि फिर यह बतलावो कि उस अपर अतीत अर्थकी क्रिया जो हुई है उसमें अतीतका व्यवहार कैसे बना ? तब यह ही तो कहोगे कि अन्य अतीत अर्थक्रियाके सम्बन्धसे बना तो उसमें अतीतपनेका व्यवहार कैसे बना ? इस तरह यहाँ अनवस्था दोष आयगा, और कदाचित् कहो कि अतीत कालके सम्बन्धसे बना तो इसमें अन्तोन्याश्रय दोष आता है। जब क्रियावोंकी अतीतता सिद्ध हो जाय तो उसके सम्बन्धसे कालमें अतीतपनेका व्यवहार बने और जब कालमें अतीतपना सिद्ध हो जाय तब उस कालके सम्बन्धसे उन क्रियावोंमें अतीतपनाकी सिद्धि हो। तो इस तरह अतीत अर्थक्रियाके सम्बन्धसे अतीतकालका व्यवहार बनाना युक्त नहीं है। यदि कहो कि कालमें जो अतीत भविष्यत आदिक व्यवहार होते हैं वे स्वतः हीं होते हैं तो यह बात आपके सिद्धान्तमें अयुक्त है क्योंकि कालको माना है निरंश और फिर कह रहे हो कि काल द्रव्यमें स्वतः ही अतीत भविष्यका व्यवहार होता है। काल अतीत रूप भी है और वह स्वतः होता है तो यह तो हुई भेदकी बात और भेद की बात लगाना चाहते तुम अभेद निरंश निरवयव नित्य कालमें, तो निरंशताका और भेद रूपताका तो परस्पर विरोध है क्योंकि निरंश कालमें अतीतपना, वर्तमानपना भविष्यपना इन धर्मोंका सद्भाव नहीं घट सकता, क्योंकि इन धर्मोंके सद्भावसे तो कालके भेद कहलाने लगेंगे। और कालको माना है सिद्धान्ततः एक, तो नित्य निरवयव एक काल द्रव्य माननेपर अतीत आदिक कालका व्यवहार नहीं बन सकता।

कालको एक माननेपर यौगपद्य अयौगपद्य आदि प्रत्ययोंके भेदकी असिद्धि— अब साथ ही अन्य बात सुनो ! जो ऐसा कहते हैं कि काल नित्य निरवयव एक है। तो कालको एक नित्य निरवयव माननेपर उनके सिद्धान्तसे फिर युगपत् अयुगपत् आदिक ज्ञानोंका अभाव हो जायगा, क्योंकि काल माना है एक और वह एक काल है समस्त कार्योंका निमित्त, तो जितने भी कार्य समूह हैं वे सब एक कालमें ही आ गए ना। तो सारे पदार्थ एक साथ ही आ गए यों सिद्ध मानना पड़ेगा और जब कालकी एकता माना और उसमें समस्त कार्योंके एक कालमें उत्पत्ति माननी पड़ी तो जब एक साथ ही समस्त कार्य उत्पन्न हो गए तब क्रमसे किया गया तो कुछ रहेगा ही नहीं। जब परिणमनका निमित्त है काल और वह माना गया एक तो एक कालमें फिर सभी पदार्थोंकी उत्पत्ति हो गई, फिर कुछ भी अयुगपत् न कहलायेगा। न चिर क्षिप्रका भेद रहेगा न छोटे बड़ेका। चिर क्षिप्रका व्यवहार कैसे न रहेगा सो देखो, जो काम बहुत कालके द्वारा किया जाता है उसको तो कहते हैं चिरकालमें किया गया। और जो काम थोड़े ही कालके द्वारा कर लिया जाता है उसे कहते हैं जल्दी किया गया। अब माना है तुमने कालको एक तो चिर और क्षिप्र ये दोनों बातें कालको एक माननेपर कैसे घट सकती हैं ? जब उन परिणमनोंका निमित्त काल एक है और वह भी निरवयव नित्य तो उस एक कालके निमित्तसे चिर क्षिप्र कार्य कैसे होंगे ? यह भी भेद कालकी एकता माननेपर बन नहीं सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कालके एकत्वमें उपाधिभेदसे भेद प्रतीत होनेकी शंका—शंकाकार कहता है कि काल तो एक ही है लेकिन कालके एक होनेपर भी जो साथमें उपाधिभेद लग रहा है उससे भेदकी उपपत्ति होती है और उपाधिभेदसे भेदकी उपपत्ति होनेसे युगपत् अयुगपत् चिर क्षिप्र आदिक अवयवोका अभाव नही हो सकता। जैसे स्फटिक मणि तो एक ही प्रकारका स्वच्छ है पर उसके साथ रंग विरंग उपाधियोंका सम्पर्क लगा हो तो उस उपाधिभेदसे मणिके परिणमनमें भेद माना गया है। अथवा मणिके रंग विरंगे भेदका ज्ञान हो जाता है। अथवा जैसे अग्नि तो एक ही है, पर जैसे ईंधन का सम्बन्ध पाये अग्नि, उस प्रकारसे अग्निका भेद कर लिया जाता है पर अग्निका लक्षण देखो तो उष्णता है। उस लक्षणकी ओरसे अग्निमें कोई भेद नही है, पर उपाधिके भेदसे भेद हो जाता है। यह खरी अग्नि है, यह हल्की अग्नि है, यह लोहेकी अग्नि है, यह काठकी अग्नि है, आदिक जो भेद अग्निमें बन जाते हैं वे उपाधिके भेद से बनते हैं तो इसी प्रकार काल भी एक है, पर उसके साथ उपाधिभेद लगा है उससे भेद हो जाता है। जैसे सूर्यका गमन, घड़ीका चलना, घड़ीका देखना इन उपाधिभेदों से उसमें भेद हो जाते हैं अथवा अतीत भविष्य ये उपाधिया साथमें लगती हैं तो उस से कालमें भेद हो जाता है।

द्रव्यरूपसे तथा परिणमनरूपसे कालके अनेकत्वकी सिद्धि-अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि यहाँ कालके सबंधमें जो उपाधिभेद है वह कार्यभेद ही है जैसे सूर्य १२ घंटेमें एक ओरसे दूसरी ओर निकल जाता है तो सूर्यके निकलनेसे काल निकला या कालके होनेसे सूर्य निकला? तो वह सूर्य निमित्तक सम्बन्धका भेद नहीं हुआ किंतु वह भेद भी जैसे कि सूर्य १२ घंटेमें निकला इतने समयमें निकला तो वह कार्य भेद ही है। कालकी ही बात कही गयी है। कोई उपाधिकी बात नही है। और जब कार्यभेद ही बना वह सब कुछ तो जब काल मान लिया एक तो एक साथ किया ऐसा कहनेमें भी तो काल है एक अथवा कार्य भेद है। तो जब वहाँ कार्यभेद होगया तो उससे फिर क्रमसे किये गए इस प्रकारके कार्यभेदका ज्ञान क्यों नही हो जाता? जब कालको एक मान लिया तो युगपत् हो हुआ कुछ तो उसमें युगपत् ही बोले, अयुगपत् न बोले ऐसे ज्ञानविभागका कारण क्या है? यदि कहो कि क्रमसे होने वाला जो वह कार्यभेद है वह कालभेदके व्यवहारका कारण है तो यह बतलाओ कि उस क्रमभावका अर्थ क्या है? एक साथ उत्पन्न न होना यह अर्थ यदि है तो एक साथ उत्पन्न न हो ऐसा बोलनेका भाव क्या है? क्या यह भाव है कि एक कालमें अनुत्पाद है अर्थात् एक कालमें उत्पन्न नहीं हुआ तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आयगा, किस तरह कि जब तक कालका भेद सिद्ध नही होता तब तक कार्यमें ये भिन्न कालमें उत्पन्न हुए है इस प्रकारका क्रम सिद्ध नहीं होता और जब तक कार्यमें क्रमभाव सिद्ध नही होता तब तक कालमें उपाधिभेदसे भेद सिद्ध नही होता, इस कारण सीधा ही तत्त्व मानना चाहिए कि प्रतिक्षण क्षण क्षण पर्याय वाले

http://sahjanandvarnishastra.org/

काल द्रव्य भिन्न–भिन्न अनेक हैं और व्यवहारमें भी एक एक समय रहने वाले मूल व्यवहार काल भिन्न–भिन्न हैं। उनके समूहको हम घड़ी घंटा आदिक कहते हैं। और ऐसा माननेपर यह एक साथ हुआ है यह क्रमसे हुआ है, यह चिरकालमें हुआ है ये सब व्यवहार बन जाते हैं। कालको अनेक माने बिना काल व्यवहार भेद बन नही सकते।

कालापेक्षया विप्रकृष्ट सन्निकृष्टमें परापर व्यवहारकी संगतता—शंकाकारने कालके एकत्वको सिद्ध करनेके लिए जो परापरका विपर्ययपना बताया था वह भी संगत नही है। देखिये जैसे कि देशकी अपेक्षा यह उरे है यह परे है, अपरको कहते हैं उरे। अपरका प्राकृत बना अवर और अवरका अपभ्रंस हुआ उरे और परसे हुआ परे, तो जैसे भूमिके अवयवों द्वारा, बहुत अवयवोंके द्वारा जो वस्तु अवतरित हो याने भूमिके बहुत बड़े हिस्सेके बाद वस्तु पड़ी हो उसे तो कहते हैं परे है और भूमिके स्वल्प अवयवोंसे ही अन्तरित हो अर्थात् भूमिके थोड़े हिस्सेके बाद ही वस्तु रखी हो तो उसे कहते हैं अपर। इसी प्रकार कालकी अपेक्षा भी बहुत समयोंसे, रात दिनोंसे अन्तरित हो, दूर हो उसे तो कहते हैं पर और जो थोड़ेसे समयोंके द्वारा रात्रि दिवसोंके द्वारा अन्तरित हो उसे कहते हैं अपर। अर्थात् जो विप्रकृष्ट हो वह तो है पर और जो सन्निकृष्ट हो वह है अपर। तो परापरमें विपर्यय कहाँ आयगा ? दिग्देशकी अपेक्षा तो भूमिके प्रदेशके द्वारा दूर और निकटपना है और कालकी दृष्टिमें संमाके द्वारा, रात्रि दिवसोंके द्वारा दूर और निकट है।

कालके एकद्रव्यरूपत्वके प्रतिषेधपर कुछ प्रश्नोत्तर—कालको यदि एक मान लोगे तो बहु और अल्पपना घटित नही हो सकता। यह बहुत समय पहिलेकी चीज है, यह थोड़े समयकी चीज है, यह बात कालके नाना माननेपर घटित होती है। कालको एक माननेपर यह बहुत और अल्पका भेद नही बन सकता। जैसे कि गुरुत्व का परिमाण अपेक्षापूर्वक है, यह इससे वजनदार है, यह अमुकसे वजनदार है, तो यह व्यवहार वस्तुके एकत्वमें नही बन सकता। इसी प्रकार यह बहुत पहिले समयकी बात है, यह थोड़े समय पहिलेकी बात है, यह व्यवहार भी कालको एक माननेपर नही बन सकता। और भी सुनो ! जैसे कि शंकाकारने यह कहा कि यौगपद्य आदिक प्रत्यय सब कालकी अपेक्षा समान हैं इस कारणसे काल एक है तो यों तो गुरुत्व परिमाण भी गुरुताकी अपेक्षा समान–समान है इसलिए एक वस्तुमें भी गुरुताकी बातें बन जानी चाहियें। अब परापरत्वमें जो तुम प्रश्न करोगे वही प्रश्न गुरुत्वमें भी लगा दिया जायगा। गुरुत्वसे वस्तुका एकत्व बचानेके लिए जो तुम उत्तर दोगे वही उत्तर कालमें घटित कर दिया जायगा। इस कारणसे जैसे गुरुत्व परिमाणमें अनेक गुण-रूपता है है इसी प्रकार कालमें भी अनेक द्रव्यरूपता मानना चाहिये। अब जो पुरुष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वास्तविक काल द्रव्यको नही मानते उनके यहाँ भी यौवपद्य अयौवपद्य चिरक्षिप्र प्रत्ययोंका अभाव हो जायगा, क्योंकि यह जो ज्ञान हो रहा है यह पर है यह अपर है, यह ज्येष्ठ है यह लघु है, यह एक साथ हुआ कार्य है यह क्रमसे हुआ कार्य है ये सब प्रत्यय अकारण तो हैं नहीं, क्योंकि कादाचित्क हैं, जो चीज कादाचित्क होती है, कभी हुई कभी न हुई तो वह अकारणक नही होती। जैसे-घट पट आदिक, ये अनित्य हैं। मिट जाने वाले हैं। तो ये अहेतुक न रहे और यह भी बात नहीं कह सकते कि पर अपर आदिक प्रत्यय निर्निमित्तक नही है तो न सही, इनका कोई सामान्य निमित्त हो ही जायगा। सो अविशिष्ट निमित्त वाले भी नही हैं, किंतु इन सब प्रत्ययोंका कोई विशिष्ट कारण है, क्योंकि यह स्वयं विशिष्ट प्रत्यय है, और इसका जो कारण है, वह निमित्त है वह है काल द्रव्य। और चूंकि ये प्रत्यय नाना हैं, ये कार्य नाना हैं तो उन के निमित्तभूत द्रव्य भी नाना सिद्ध होते हैं।

परापरादि व्यवहारमें दिग्गुणजातिनिमित्तकत्वका प्रतिषेध—शंकाकार कहता है कि अपर चिरक्षिप्र आदिक जो प्रत्यय होते हैं वे दिशा गुण जातिके निमित्तसे होते हैं। जैसे –दिशाओंमें भी तो पर अपरका व्यावहार है, कोई पुरुष एक गाँवसे दूसरे गाँव गया तो क्रमसे गया। तो इस क्रमसे काल द्रव्यकी सिद्धि होती है मगर कोई यों भी कह सकता कि उन दिशाओंमें क्रमसे गया इसलिए क्रम बना। तो दिग्देशकी बात सम्पर्कको देखकर दिशा गुण जातिके निमित्तसे उन प्रत्ययोंको माना जाना चाहिये। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात सिद्ध नहीं होती, क्योंकि दिशाओंके कारण जो पर अपर प्रत्यय होते हैं वे दूसरी जातिके हैं और कालकी सत्तामें जो पर अपर प्रत्यय होते हैं वे दूसरी जातिके देखो हैं।! तभी तो कोई अपर दिशामें बैठा हुआ है अर्थात् निकट देशमें बैठा हुआ है, कौन बैठा है ? कोई गुणहीन पुरुष अधम जातिका बूढ़ा बैठा हुआ है। तो वह हर तरहसे अपर हुआ कि नही ? अपर देशमें बैठा है, अपर जातिका है। अपर मायने कंडम। अवस्था भी उसकी अपर है, गुण भी उसका अपर है, लेकिन उरे बैठा है, उसको कालकी अपेक्षा अधिक उम्र वाला होनेसे पर कहा जाता है अर्थात् दिशाओंका पर अपरका मतलब दूसरा है। और कालका पर अपरका मतलब दूसरा है। अपर देशमें तो बैठा है और बूढ़ा होनेके कारण पर कहा जाता है कालकी अपेक्षासे, और कोई पुरुष पर दिक प्रदेशमें बैठा है दूर स्थानमें बैठा है लेकिन प्रशस्त है, ऊँची जातिका है, जवान है, इतनी उत्कृष्टता है उसमें, पर कालकी दृष्टिसे उसे अपर कहा जायगा, क्योंकि उम्रमें छोटा है। तो दिक गुण जातिकी अपेक्षा जो प्रत्यय हो रहे हैं उन प्रत्ययोंसे कालकृत प्रत्यय जुदी चीज है। देखो ! वहाँ दिक भी अपर था, गुण भी अपर था, जाति भी अपर थी, मगर कालसे वृद्ध था तो वहाँ परका व्यवहार हुआ और वहाँ जवान पुरुष जहाँ बैठा है वह देश पर है, पर जातिका है। अर्थात् उत्तम जातिका है और पर शरीर है अर्थात् जवान शरीर है, जाति भी पर है, ऊँच कुल है, लेकिन उम्र कम होनेसे उसमें अपर यह प्रत्यय किया गया। इस कारण

Version 1

यह कहना अयुक्त है कि पर अपर आदिक प्रत्यय दिशा, गुण जातिके निमित्तसे हो जायेंगे !

आदित्यादि क्रियाके परापरादिव्यवहारनिमित्तत्वका प्रतिषेध-- यदि पर अपर आदिक प्रत्ययोंके व्यवहारके लिये कालको छोड़कर अन्य कोई निमित्त तुम ढूँढना ही चाहते हो तो स्पष्ट बताओ ना, कि वह निमित्त क्या हो सकता है ? क्या सूर्य आदिककी क्रियाको उन पर अपर प्रत्ययोंमें निमित्त मानते हो या वस्तुकी क्रियाको ही तुम काल अर्थात् परस्पर व्यवहारमें निमित्त मानते हो ? या कर्ता कर्मको उस परापर व्यवहारमें निमित्त मानते हो ? इन तीन विकल्पोंमेंसे यदि पहिला विकल्प अङ्गीकार करते हो कि आदित्य आदिककी क्रिया निमित्त है, तो जैसे कि शङ्काकार कह रहा है कि जन्मसे लेकर एक प्राणीके सूर्यके परिभ्रमण बहुत हो गए। जैसे कोई बच्चा एक सालका है तो अर्थ क्या लगाया जा रहा है कि ३६५ सूर्य भ्रमणका यह बच्चा है, क्योंकि ३६५ बार सूर्यने चक्कर लगाया ना ! तो यों ही जवान है तो जन्मसे लेकर उस पुरुषके आदित्यवर्तन बहुत हो गए इसलिए वह पर कहलाता है, और दूसरे पुरुषके आदित्य वर्तन थोड़े हुए, अर्थात् उसके सूर्यकी घुमेरियाँ कम संख्यामें हुई इस लिए उसमें अपरत्त्व व्यवहार होता है। इस तरह पर अपर व्यवहारमें सूर्यकी घुमेरियाँ कारण हैं न कि काल यों मानोगे तो उसका उत्तर देते हैं कि ऐसा माननेपर भी अर्थात् सूर्यकी घुमेरियाँ पर अपर व्यवहारके कारण हैं, ऐसा माननेपर भी तो दोष दूर नहीं होता कि यौगपद्य आदिक प्रत्ययकी उत्पत्ति कैसे हो, क्योंकि सूर्य घुमेरीमें समस्त पदार्थोंके उत्पन्न होनेका प्रसंग आ जाता है इसका कारण यह है कि सूर्यकी घुमेरी जब पदार्थोंके परिणमनका कारण बन गई तो किसी भी एक सूर्यकी घुमेरीमें समस्त पदार्थों का सारा परिणमन क्यों नहीं हो जाता ? इसका कोई उत्तर नहीं। और, स्पष्ट बात तो यह है कि इस प्रकारका व्यपदेश कभी नहीं होता। अर्थात् ऐसा तो लोग कहते हैं कि यह एक साथका कार्य है. यह एक साथ काल है पर यों कोई नहीं कहता कि ये एक साथ सूर्यकी घुमेरियाँ हैं तो आदित्य आदिककी क्रिया पर अपर आदिक प्रत्ययके व्यवहारमें कारण नहीं हो सकतीं।

क्रियाके परापरादि व्यवहारके निमित्तत्वका निषेध और कालका यथार्थ स्वरूप— यदि कहो कि क्रिया ही काल बन गया अर्थात् पर अपर आदिक व्यवहारमें क्रिया ही निमित्त हो जाती है तो यह भी बात युक्त नहीं है, क्योंकि फिर तो क्रियाओंमें क्रिया रूपताकी तो अविशेषता रही। सारे पदार्थोंकी क्रिया क्रिया होती है और क्रिया बन गई यौगपद्य आदिक प्रत्ययका कारण। तो फिर एक ही क्रियामें सब उत्पन्न हो जाने चाहिए। फिर भी कुछ युगपत् और अयुगपत् प्रत्यय न रहा। यदि इस प्रकारके पर अपर आदिक कार्योंके रचने वाले कालका ही नाम क्रिया रखते हो तो रख लो, एक नामान्तर कर लो। नाम मात्रका भेद रहा। वस्तु तो मानना ही

पड़ा ना. काल और वह काल द्रव्य है अनेक। रत्नोंकी राशिकी तरह आकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक-एक काल द्रव्य अवस्थित है, तभी अपने-अपने काल द्रव्यके क्षेत्रमें रहने वाले पदार्थोंका परिणमन भिन्न-भिन्न होता रहता है। इससे काल द्रव्य अनेक हैं और वे प्रत्येक काल द्रव्य सामान्य विशेषात्मक हैं। जितने भी सत् हैं वे सब स्वयं सामान्य विशेषात्मक हैं न कि सामान्य भी कोई अलग पदार्थ हो, विशेष भी कोई अलग पदार्थ हो और फिर ये काल आदिक अलग हों पदार्थ ही स्वय सामान्य विशेषात्मक होता है, और काल द्रव्य द्रव्य पर्यायात्मक है। अर्थात् उसका शाश्वत द्रव्यपना भी है और परिणमन होता है। उसका परिणमन अविभागी एक समय है। प्रत्येक काल द्रव्योंका परिणमन अविभागी एक एक समय है। उन समयोंके समूहमें हम आवली पल घड़ी दिन महान कल्पकाल ये सारे व्यवहार करते हैं। तो काल द्रव्य है और वे अनेक हैं, सामान्य विशेषात्मक है। उससे समय नामक व्यवहार कालकी उत्पत्ति होती है। उनके समूहमें ये सब व्यवहार चलते हैं। यहाँ काल द्रव्यका निषेध नहीं किया जा रहा है किन्तु यह बताया जा रहा है कि नित्य निरवयव सर्वव्यापी काल माननेकी बात घटित नहीं होती।

कर्ता कर्ममें भी परापरव्यवहारकी कारणता न होनेसे काल द्रव्यकी सिद्धि—शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि पर अपर यौगपद्य अयौगपद्य आदिक प्रत्ययों का निमित्त यदि कर्ता कर्मको कहोगे तो वह बात यों युक्त नहीं होती कि कर्ताश्रय यौगपद्य नाम क्या है कि बहुतसे कर्ताओंका एक कार्यमें व्यापार हो तो कहा जायगा कि कि ये एक साथ कर रहे हैं, यह है कर्ताका यौगपद्य और कर्मका यौगपद्य क्या है ? बहुतसे कर्ता जब एक कार्यमें एक साथ व्याहार करते हो तभी तो इक प्रत्ययके द्वारा यह जाना जायगा कि ये एक साथ करते हैं। अब कर्मका यौगपद्य देखिये! बहुतसे कार्य यदि एक साथ किए जा रहे हैं तो वहाँ वह यौगपद्य इस प्रत्ययसे जाना जाता है कि ये कार्य एक साथ किए गए। तो यह कर्ताका यौगपद्य तो रहा और कर्मका यौगपद्य भी रहा, पर कालके सम्बन्धमें जो यौगपद्य ज्ञान चल रहा है वहाँ न कर्ता मात्रका आलम्बन है और न कार्यमात्रका आलम्बन है, अर्थात् काल सम्बन्धी पर अपर युगपद आदिक ज्ञानोंका कर्ता और कर्म विषय नहीं पड़ा करते। जहाँपर क्रमसे कार्य है वहाँ पर भी कर्ता और कर्मका सद्भाव होनेसे झटपट युगपत् ज्ञान बन जाय पर ऐसा तो नहीं है, क्योंकि ऐसा मान लेनेपर जो "क्रमसे यह करते हैं" और "क्रमसे यह किया गया है" ये जो दो प्रत्यय हैं इनमें कर्ता और कर्मका अवलम्बनकी विशेषता न होनेसे व्यवहारभावका अतिप्रसंग आयगा इस कारण यह मानना चाहिए कि एक साथ करते हैं या एक साथ किए गए, इस कर्ता कर्ममें काल विशेषण हैं, कर्ताका विशेषण नहीं है। कालके माने बिना कर्ता और कर्मका विषय करके भी युगपत् अयुगपत्का ज्ञान नहीं हो सकता। यदि कालके विशेषण बिना युगपत् अयुगपत् आदिक ज्ञान मान लिए जायें तो फिर यह बतलावो कि ये विलम्बसे किए गए, ये शीघ्र किए गए यह

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यवहार कैसे बना ? इसमें तो कर्ता कर्मकी बात नहीं है। एक ही कर्ता किसी कार्य को रुचिवान न होनेके कारण कहो या अनेक कार्योंमें व्यस्त होनेके कारण कहो, बहुत विलम्बसे करता है और वही एक कर्ता इसी एक कार्यको रुचि होनेके कारण जल्दी कर देता है तो वहाँपर विलम्बसे किया गया या जल्दी किया गया, ये जो दो प्रत्यय हैं, बोध हैं ये विशिष्ट होनेके किसी विशिष्ट निमित्तको सिद्ध करते हैं और वह है काल।

लोकव्यवहार व व्यवहारकालसे भी कालद्रव्यकी सिद्धि—यहाँ उन लोगोंसे कहा जा रहा है कि जो वास्तविक कालद्रव्य मानते ही नहीं हैं। प्रथम तो—विशेषवादियोंसे कहा जा रहा था कि जो कालद्रव्यको तो मानते हैं, पर नित्य निरवयव सर्वव्यापक मानते हैं। अब यहाँपर कहा जा रहा उनको कि जो कालद्रव्य मानते ही नहीं हैं। सूर्यकी गतिसे काल बनता है या पदार्थोंकी क्रियासे काल बनता है ? या कर्ता कर्मसे कालका व्यवहार बनता है ? स इस तरहसे परका नाम लेकर इन सब पर अपर आदिक व्यवहारोंको सिद्ध करते हैं और वास्तवमें कालद्रव्य नहीं मानते, उनके यहाँ ये सब बातें बन नहीं सकतीं। और, फिर लोकव्यवहार भी प्रसिद्ध है। यह सब देखा जारहा है कि प्रतिनियत कालमें ही प्रतिनियत वनस्पतियाँ फूलती हैं। लोग ऐसा व्यवहार करते हैं, पहिलेसे ही बता देते हैं कि बसंत ऋतुमें आम बौरते हैं। अनेक बातें पहिलेसे ही निश्चित हैं तो प्रतिनियत कालमें प्रतिनियत वनस्पतियाँ फलती फूलती हैं अन्य समयमें नहीं। जब साधारण कालके सम्बन्धमें व्यवहार देखा जारहा है तो अन्य कार्योंमें जैसे पुत्रप्रसवके सम्बन्धमें लोग कहते हैं कि ९ महीनेमें होगा। तो इस व्यवहार कालसे भी यह सिद्ध होता है कि काल नामक कोई द्रव्य है। इतना तो सबको मानना पड़ेगा कि कालका व्यवहार तो अवश्य है। अब रही मुख्य कालद्रव्यकी बात। व्यवहारकालको कोई मना नहीं कर सकता। जैसे—घंटा, घड़ी, दिन, महीना, ये व्यवहारकाल हैं, इनको मना नहीं कर सकते। अब यह समझना है कि किसीका भी जो व्यवहार होता है वह मुख्य माने बिना नहीं होता। व्यवहारका कारण व्यवहारके अनुरूप मूलमें कोई मुख्य होता है। तो जब व्यवहार काल देखा जा रहा है तो उसका आधारभूत मुख्य काल है और वह मुख्य काल अब एक है कि अनेक है ? इस सम्बन्धमें कुछ विवाद किया जा सकता है, पर यह एक स्पष्ट ज्ञान होनेसे कि प्रत्येक आकाश प्रदेशपर परिणमनभेद देखा जाता है, वहाँपर अवस्थित पदार्थोंका परिणमन और अन्य अवस्थित पदार्थोंका परिणमन अन्य-अन्य है। यद्यपि वे भिन्न-भिन्न परिणमन उपादानकी उस प्रकारकी योग्यता बिना नहीं हो सकते, तो यह तो उपादानकी ओरका उत्तर है। लेकिन विभिन्न परिणमनोंमें निमित्त भी विभिन्न हुआ करते हैं। जैसे किसी भी आत्मामें क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक विभिन्न परिणमन होते हैं, तो ये परिणमन भी विभिन्न हैं योग्यता भी अपने-अपने कालमें विभिन्न हैं, पर उनके निमित्तभूत कर्म प्रकृति भी विभिन्न हैं। निमित्तकी विभिन्नता हुए बिना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नैमित्तिक क्रियाकी विभिन्नता सिद्ध नहीं की जा सकती। तो यों प्रति आकाश प्रदेशमें एक एक कालद्रव्य ठहरा है यह सिद्ध हो जाता है।

असंख्यात एकप्रदेशी, निरंश कालद्रव्यकी सिद्धि—समस्त प्रत्येक काल द्रव्योंके प्रतिक्षणमें एक–एक समय वाली पर्याय होती है, जिसको हम वर्तना शब्दसे कहते हैं। वर्तन और परिवर्तनमें अन्तर है। परिवर्तन तो अन्य समयकी अपेक्षा करता है और वर्तन एक समयस्थ होता है। जैसे कभी कहते कि यह चीज बदल गई ! तो बदलनेके दो क्षणोंका उपयोग रखना पड़ेगा। उस क्षणमें यों था, इस क्षणमें यों हुआ यह कहलाया परिवर्तन। किन्तु वर्तन एक समयमें ही होता है। एक समयमें जिस रूपमें वर्त रहा है वह है वर्तन, इसी कारण मुख्य कालका लक्षण वर्तना कहा है। यद्यपि वर्तन भी पर्यायरूप अतएव वह भी व्यवहार काल है, लेकिन उससे लोक व्यवहार नहीं बन रहा है। एक समयके वर्तनसे लोकव्यवहार नहीं बनता, इस कारण वर्तनाको तो निश्चय कालका लक्षण कहा है और फिर परत्व अपरत्व आदिक ये व्यवहारकालके लक्षण कहे गए हैं। समय मुहूर्त प्रहर रात दिन महीना सम्वत्सर आदिक व्यवहार भी लोकमें प्रसिद्ध हैं, उनसे भी कालद्रव्यकी सिद्धि होती है। इस तरह जो कालद्रव्य कतई नहीं मानते उन्हें भी समझ लेना चाहिये कि कालद्रव्यके कारण बिना परिणमन नहीं हो पाता है और जो कालद्रव्यको एक नित्य निरवयव सर्वव्यापक मानते हैं उन्हें भी जान लेना चाहिये कि कालद्रव्यको एक माननेपर अतीत भविष्य परत्व अपरत्व आदिक व्यवहार नहीं बन सकते। इसी तरह नित्य निरवयव व्यापक माननेपर भी यह कालभेद नहीं हो सकता है। इससे कालद्रव्य मुख्य है और रत्नराशिवत् प्रति आकाश प्रदेशमें अनादि अनन्त अवस्थित हैं। उनका जो समय–समयरूप परिणमन होता है उन समय परिणमनोंका जो समूह है उस समूहमें घड़ी, पल, दिन, माह, वर्ष आदिक भेद बनाये जाते हैं।

सामान्यविशेषात्मक प्रमेय स्वरूपके विरोधमें अनेक प्रमेय जातियोंकी कल्पना—प्रकरण यहाँ यह चल रहा था कि प्रमाणका विषय क्या होता है इस न्याय ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपका वर्णन है। प्रमाणके स्वरूपका भेदोंका प्रभेदोंका संयुक्तिक वर्णन करनेके बाद अन्तमें यह प्रश्न रह गया था कि प्रमाणका विषय क्या होता है ? कुछ और विषय रह गए हैं कि प्रमाणका फल क्या होता है। उनका वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ विषय बताया जा रहा है सामान्यविशेषात्मक पदार्थ। यह बात सुनकर विशेषवादके सिद्धान्तमें आस्था रखने वाले लोग बोल उठे कि सामान्य और विशेष तो स्वयं अलग पदार्थ हैं। वे स्वयं प्रमेय हैं सामान्य विशेषात्मक पदार्थ फिर प्रमेय कैसे बने ? पदार्थ भी जुदा है, सामान्य भी जुदा है, विशेष भी जुदा है। जब सामान्य विशेष जुदे मान लिए गए तब द्रव्य गुण क्रियाको भी जुदा निरखना पड़ा विशेषवादमें क्योंकि यदि जुदा नहीं निरखते, द्रव्य गुणात्मक हो गया तो सामान्य

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषात्मकताकी बात बन जायगी। पदार्थ यदि क्रियात्मक है क्रिया, कर्म पदार्थका है, द्रव्यका ही उस समयका स्वरूप है तो फिर सामान्य विशेषात्मकता आ बैठेगी। मुख्य चिढ़ तो इस जगह शंकाकारकी सामान्यविशेषात्मक पदार्थ न माननेके लिए है। तो जब सामान्य अलग रहा, विशेष अलग रहा, द्रव्य, गुण, कर्म भी अलग रहे तो अब इन ५ पदार्थोंके अत्यन्त प्रथक् रहनेपर व्यवस्था तो न बनेगी। इनका मेल होना चाहिए। द्रव्यमें गुण बसा है। द्रव्यमें क्रिया होती है, द्रव्यमें सामान्य धर्म भी देखा जाता है जिससे कि यह इसके समान हैं, यह व्यवहार बनता है। द्रव्यमें विशेष भी देखा जाता है यह इससे विलक्षण है, भैंस गायसे निराली है। तो जब एक पदार्थमें ये सब बातें नजर आती हैं तो उसका फिर उत्तर क्या होगा? तो उस उत्तरके लिए समवाय मानना पड़ा कि हैं तो ये सब पाँचों भिन्न-भिन्न मगर इनका समवाय सम्बन्ध होता है। जिनमें द्रव्य द्रव्यका तो संयोग सम्बन्ध है वहाँ समवाय नही चलता, बाकी द्रव्योंमें गुण कर्म सामान्य विशेष ये सब समवाय सम्बन्धसे रहते हैं, इस तरह सामान्य विशेषात्मकताके विरोधमें ये ६ प्रकारके पदार्थ जो वैशेषिकको मानने पड़े उनमेंसे यहाँ द्रव्य नामक प्रथम पदार्थके विषयमें बात चल रही है जिस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, कालका स्वरूप माना है वह घटित नही होता, और हैं ये सब द्रव्य, किन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तो परस्पर उपादान उपादेय भाव होनेसे एक जातिमें हैं। और, उस जातिका नाम है पुद्‌गल। आकाश एक नित्य निरवयव सिद्ध नही होता आकाश एक है अखण्ड है और सर्व व्यापी है, पर अखण्ड होनेपर भी सावयव है, इसी प्रकार काय द्रव्य भी नित्य एक निरवयव सर्वव्यापी सिद्ध नही होता। काल एक नही है यह बात कही गई। काल नित्य ही नही है, नित्यानित्यात्मक है, काल व्यापक नही है, वह एक प्रदेशी है। हाँ उसे निरवयव कह सकते हैं। जब काल एक प्रदेशी ही है तो वह निरंश हो गया। तो इस प्रकार विशेषवादमें सम्मत काल द्रव्यकी सिद्धि नही होती।

दिशानामक द्रव्य सिद्ध करनेकी आरेका—दिशा भी कोई द्रव्य नही है। दिशाकी सत्ता सिद्ध करनेमें कोई प्रमाण नही मिलता। शंकाकार कहता है कि दिशावोंका सिद्ध करने वाला प्रमाण है, आगम है, युक्तियाँ भी प्रमाण बनेंगी। वैशेषिक सिद्धान्तके आगममें कहा है कि मूर्त पदार्थोंमें ही मूर्त पदार्थकी अवधि करके जो ये १० प्रकारके प्रत्यय होते हैं कि कुछ पूर्वसे हैं, कुछ पश्चिमसे, कुछ दक्षिणसे और कुछ उत्तरसे, कुछ ईशानसे, कुछ आग्नेयसे, कुछ वायव्यसे तथा कुछ ऊर्ध्वसे और कुछ अधःसे हैं। तो जिन दिशाओंके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध व्यवहार है कि १० दिशायें होती हैं उन दिशाओंका कैसे खण्डन किया जा सकता? दिशायें १० हैं। तो जिनमें संख्या भी बताई गई है, संख्यावान चीज तो सत् हुआ करती है। यदि दिशायें वास्तवमें कुछ नही होतीं, कल्पना ही होती तो उसकी संख्या नही बन सकती थी। दिशाओंकी संख्या बन रही, यह बात जबरदस्त प्रमाण है कि दिशायें कोई वास्तविक चीज हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और, दिशाओंका चिन्ह बताया गया है कि 'यहाँसे यह' है। जितने भी ये व्यवहार चलते कि यहाँसे इतना आगे यह है. यहांसे पूरबमें दो योजन वह गांव है आदिक जो यहाँसे वह, यहाँसे वह, इस तरहका जो प्रत्यय होता है उस चिन्हसे समझा जाता है दिशा। जैसे आकाशका लिङ्ग शब्द है, कालका लिंग पर अपर आदिक प्रत्यय है। तो दिशाओंका लिंग यहाँसे यहाँ, उरे-परे, इस प्रकारका जो बोध होता है वह दिशाओंका चिन्ह है।

अन्य द्रव्योंसे भिन्न दिग्द्रव्यके सिद्ध करनेके लिये शङ्काकारकी आशंका शंकाकार कह रहा है कि दिशाओंका चिन्ह यह प्रत्यय है जो यह बोध होता है कि यह इससे पूर्वमें है, यह इससे दक्षिणमें है, इस तरहका जो प्रत्यय है वह दिशाओंका लिङ्ग है। और, जब दिशाओंका लिंग सिद्ध हो गया तो दिशा नामका द्रव्य अन्य है याने द्रव्योंसे भिन्न है। तथा 'दिशायें हैं' इस प्रकारका व्यवहार करना योग्य है, क्योंकि उनमें पूर्व, दक्षिण आदिक प्रत्यय हुआ करते हैं। जो दिग्द्रव्यसे इतर पदार्थोंसे भिन्न नही हैं वे पूर्वादि प्रत्यय लिंग भी नही हैं। जैसे पृथ्वी आदिक और ये पूर्वादि प्रत्यय कारणक हैं इस कारण दिशा नामका द्रव्य अन्य द्रव्योंसे जुदा है। और भी देखिये! ये पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिकके ज्ञान हो रहे हैं। ये अहेतुक तो हैं नही, इनका कोई निमित्त न हो और पूर्व दक्षिण आदिक ज्ञान करले, ऐसा कोई मान सकता नही, क्योंकि जब यह ज्ञान कादाचित्क है, सो पूर्वादिक दिशाओंका जो बोध है, यह कादाचित्क होनेसे सहेतुक ही है और यह भी नही कह सकते कि चलो रहा आवे,नैमित्तिक लेकिन आकाश आदिक साधारण चीज निमित्त है। यह यों नही कह सकते कि आकाश आदिकके आलम्बनसे जो प्रत्यय होता है उस प्रत्ययसे यह विशिष्ट प्रत्यय है। पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक दिशाओं सम्बन्धी ज्ञान यह विशिष्ट ज्ञान है। तो जो विशिष्ट ज्ञान होता है वह साधारण निमित्त वाला नही है। यह भी नही कह सकते कि वह विशिष्ट कारण मूर्तद्रव्य हो जायगा। गाँवकी रचना, पर्वतकी रचना, नदी आदि पड़ी हुई हैं ये सब मूर्तद्रव्य हैं, इनकी अपेक्षासे दिशाओंका ज्ञान कर लिया जायगा। इस पहाड़से अमुक पहाड़ पश्चिममें है आदिक, मूर्त द्रव्योंके निमित्तसे पूर्वादि दिशाओंका ज्ञान हो जायगा। शंकाकार ही कहता जा रहा है कि यह भी बात नही कह सकते, क्योंकि मूर्त द्रव्योंकी अपेक्षाके निमित्तसे यदि पूर्व पश्चिम आदिकका ज्ञान माना जाय तो वे परस्पर आश्रयरूप हो गए। इस पहाड़की अपेक्षा नदी पश्चिममें है, उस नदीकी अपेक्षा पहाड़ पूर्वमें है, तो जब दोनोंमें परस्पर आश्रय होगया अर्थात् एक वस्तुमें पूर्वपना सिद्ध करनेपर उसकी अपेक्षा औरको पश्चिम सिद्ध करें औरको पश्चिम सिद्ध करनेपर अन्यमें पूर्वपना सिद्ध होगा तो इस तरह उनमें पूर्व आदिकका ज्ञान परस्पराश्रित हो गया। तो इसका अर्थ यह है कि असलमें दोनों ही प्रत्यय नही हो सकते। इस कारण जब पूर्व दक्षिण आदिक प्रत्ययोंका कोई निमित्त सम्भव नही है तो ये सब दिशायें हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूर्वादि दिशावोंके प्रत्ययसे दिग्द्रव्य सिद्ध करनेका शंकाकार द्वारा अनुमान—ये सब पूर्व दक्षिण आदिक ज्ञान दिशावोंसे ही होते हैं यह अनुमान प्रमाणभूत बन जाता है, इसका अनुमान प्रयोग भी है यह कि ये जो पूर्वापर आदिक ज्ञान हो रहे हैं ये मूर्त द्रव्योंसे भिन्न किन्ही पदार्थोंके निमित्तसे हो रहे हैं, क्योंकि मूर्त द्रव्य सम्बन्धी प्रत्ययसे विलक्षण है यह प्रत्यय । जैसे सुख आदिकका ज्ञान । सुख आदिकका ज्ञान मूर्त द्रव्यसे भिन्न किसी अन्य पदार्थके निमित्तसे होता है क्योंकि सुख आदिकका ज्ञान मूर्त द्रव्य सम्बन्धी ज्ञानसे भिन्न ज्ञान है, जैसे कि चटाई चौकी आदिक मूर्त द्रव्यों का ज्ञान किया जाता है, एक वह ज्ञान । और किसी सुखका अनुभव किया जाता है एक वह ज्ञान । इन दोनोंमें अन्तर है । चूंकि चटाई आदिकका ज्ञान तो मूर्त पदार्थ निमित्तक है, पर सुखका जो ज्ञान है वह मूर्त द्रव्यसे व्यतिरिक्त आत्म द्रव्य निबन्धनक है । तो इसी प्रकार जो पर्वत नदी आदिक मूर्त द्रव्योंमें जो प्रत्यय होता है वह भिन्न जातिका प्रत्यय है । और जो पूर्व दक्षिण दिशा रूपसे प्रत्यय होता है वह विलक्षण है। इस तरह दिशा नामक द्रव्य सिद्ध है और वह दिशा द्रव्य विभु है, सर्वव्यापक है, एक है नित्य है और निरवयव है । यहाँ कोई यह संदेह न करे कि जब दिशा एक ही है द्रव्य, तो पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक व्यवहार कैसे बन बैठे ? यों बन बैठे कि सूर्य भगवान जब मेरुकी प्रदक्षिणा दे रहा है, तो सूर्यका लोकपालके द्वारा ग्रहण किए गए दिशाके प्रदेशका संयोग होता है । सूर्यका लोकपालके द्वारा अधिकृत दिशाओंके क्षेत्रका संयोग हो जानेसे पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक भेद बन गए । वस्तुतः तो दिशा नामका द्रव्य भेद रहित है । इस प्रकार शंकाकारने दिशा नामक द्रव्य सब द्रव्योंसे भिन्न सिद्ध किया ।

सूर्योदयादिवश आकाशप्रदेशश्रेणियोंमें पूर्वादि दिशाकी कल्पना—अब उक्त शंकाओंके समाधानमें कहते हैं! दिशाओंको द्रव्य सिद्ध करनेके लिए जो कुछ भी शंकाकारने कहा है वह सब विपरीत कथन है । देखिये पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक जो ज्ञान होते हैं वे सब ज्ञान आकाश हेतुक हैं । कहीं दिशा नामका एक द्रव्य अलग हो और उसके कारणसे ज्ञान चलता हो सो बात नही । वे सब ज्ञान आकाश हेतुक होने से आकाशसे भिन्न दिशा नामक कोई द्रव्य सिद्ध नही होता । आकाशके प्रदेश श्रेणियों में ही सूर्यके उदय आदिकके वशसे पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओंके व्यवहारकी उत्पत्ति होती है । यद्यपि आकाश एक है लेकिन आकाश निरवयव तो नही है, सावयव है, अनन्त प्रदेशी है और इसी कारण सूर्यके उदय आदिकके वशसे उन आकाश श्रेणियों में पूर्व आदिक दिशाओंके व्यवहारकी उत्पत्ति बन जाती है इसी कारण दिशाओंको निर्हेतुक भी नही कह सकते । और, न यह कह सकते कि किसी सामान्य पदार्थके निमित्तसे पूर्व आदिक दिशाओंका ज्ञान होता है । जिन आकाश प्रदेशोंमें सूर्यका उदय होता है वह तो है पूर्व दिशा । जिन आकाश प्रदेशोंमें सूर्यका अस्त होता है वह है पश्चिम दिशा । अब सूर्योदयवाली पूर्व दिशाकी ओर मुह करके खड़े हों तो उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दक्षिण हाथ जिस ओर हो वह है दक्षिण दिशा, शेष बचे हुए बायें हाथकी ओर है, उत्तर दिशा तो ये आकाश प्रदेश श्रेणियोंमें ही सूर्योदय आदिकके वशसे पूर्व आदिक दिशाओंका प्रत्यय होता है। तो जब आकाश प्रदेश लक्षण रूप पूर्व आदिक दिशाओंके सम्बन्धसे मूर्त द्रव्योंमें पूर्व पश्चिम आदिक प्रत्यय विशेष होने लगे, अर्थात् यह पर्वत पूर्व दिशामें है तो यह आकाशप्रदेशश्रेणीरूप जो पूर्व दिशा है उसमें वह पर्वत है इस पर्वतको पूर्वमें कहते हैं। तो मूर्त द्रव्योंमें पूर्व पश्चिम आदिक प्रत्यय विशेषकी उत्पत्ति आकाशप्रदेशलक्षणभूत दिशाओंके सम्बंधसे है इस कारण यह दोष नहीं दे सकते कि परस्पर अपेक्षा लेकर मूर्त द्रव्य हों यदि पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओंके ज्ञानके कारण बन गए तो परस्पराश्रित हो जायेंगे अर्थात् एक का जब पूर्व सिद्ध न हुआ तो दूसरेका पश्चिम सिद्ध न होगा। इस तरहसे इतरेतराश्रय दोष होनेसे दोनोंका ही अभाव हो जायगा, यह दोष नहीं दे सकते क्योंकि केवल मूर्त द्रव्यके कारण ही पूर्व पश्चिमका ज्ञान नहीं हो रहा, किन्तु वे मूर्त पदार्थ आकाशप्रदेश लक्षण पश्चिम आदिक दिशामें रह रहे हैं इससे उन द्रव्योंके पूर्व पश्चिम आदिकका ज्ञान होता है और वह दिशा है क्या ? आकाशकी प्रदेश श्रेणियाँ। तो इस तरह आकाश प्रदेशपंक्ति हेतुक होनेसे पूर्वापर आदिक प्रत्यय किसी दिशा नामक द्रव्यके कारण हुए यह बात सिद्ध नहीं होती।

आकाशप्रदेशपंक्तियोंमें पूर्वादिव्यवहारके कारणके प्रश्नकी असंगतता

अब शंकाकार कहता है कि तुमने यह तो सिद्ध कर दिया कि आकाशप्रदेशश्रेणियोंके निमित्तसे पूर्व पश्चिम आदिक व्यवहार हो रहा है पर यह तो बतावो कि उन आकाशप्रदेशश्रेणियोंमें पूर्व पश्चिम आदिक व्यवहार कैसे बने ? पूर्व आदिक दिशाओंका ज्ञान तो आकाशके कारण बता दिया। अब आकाशमें जो पूर्वत्व पश्चिमत्वका ज्ञान होता है वह किस तरहसे सिद्ध होता है ? यदि कहो कि आकाशमें पूर्व पश्चिम आदिक का बोध स्वतः हो जायगा अपने ही स्वरूपसे हो लेगा तब तो पूर्व पश्चिम आदिकमें निवृत्तिके अभावका प्रसंग हो जायगा। अर्थात् यह दिशा पूर्व ही है, पश्चिम नहीं है, यह दृढ़तासे नहीं कह सकते। जब आकाश प्रदेश श्रेणियोंमें स्वरूपसे ही पूर्व पश्चिम आदिक ज्ञान किया जाने लगा तो वहाँ यह निर्णय कैसे करेंगे कि यह प्रदेश श्रेणि पूर्व ही है, पश्चिम नहीं, सो वहाँ तब फिर अट पट पश्चिमको पूर्व कह देना चाहिए, पूर्वको पश्चिम कह देना चाहिए। तो कहा यदि कहो कि एक दूसरे की अपेक्षा पूर्व पश्चिम सिद्ध हो जायगा। आकाश प्रदेशकी इस ओर की श्रेणीकी अपेक्षा उसके सामने कि प्रदेश श्रेणी पश्चिम कह लायगी। इसकी अपेक्षा वह पूर्व कह लायेगा। इस तरह अन्योन्यापेक्षासे पूर्व पश्चिम आदिक सिद्ध करोगे तो इतरेतराश्रय दोष होनेसे दोनों ही प्रत्ययोंका अभाव हो जायगा। इस कारण आकाशे हेतुक पूर्व पश्चिम आदिकका ज्ञान नहीं होता, किंतु दिग् द्रव्यके कारण पूर्व पश्चिम आदिकका बोध होता है। समाधानमें कहते हैं कि इस तरहका जो प्रश्न किया गया है वह प्रश्न तो दिशाओंके प्रदेश में भी किया जा सकता है। दिग द्रव्यकी वजहसे मूर्त द्रव्योंमें यह पूर्वमें है यह पश्चि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चकमें है यह तो सिद्ध कर लिया पर उन दिशाओंमें स्वयंमें यह पूर्व दिशा है, यह पश्चिम दिशा है, यह ज्ञान कैसे करोगे ? यदि कहोगे कि दिशामें पूर्व आदिक प्रत्यय स्वरूपसे ही सिद्ध हो जायेंगे। तो यहाँ भी पूर्वापर आदिक प्रत्यय अट-पट सिद्ध हो बैठें !

आकाशप्रदेशपंक्तिलक्षण पूर्वादिदिशाके सम्बन्धसे मूर्त द्रव्योमें पूर्वादि व्यवहारकी उपपत्ति—और, जैसे (शंकाकारने) यह कहा कि मूर्त द्रव्यकी अवधि करके मूर्त पदार्थोंमें ही यह इसस पूव दिशामें है आदिक ज्ञान दिशा नामक द्रव्यके कारणसे होते हैं तो यह भी तो बतलावो कि दिशाभेदकी अवधि कारण दिशाभेदमें ही यह इससे पूर्व दिशामें है आदिक बोध फिर किसी अन्य द्रव्यान्तरके निमित्तसे होगा क्योंकि विशिष्ट प्रत्यय वह था और विशिष्ट प्रत्यय यह है, जैसे कि मूर्त पदार्थोंके संबंध में शंकाकार यह कहता है कि यह पर्वत पूर्वमें है, यह नदी पश्चिममें है। यों मूर्त द्रव्य की अवधि करके उन मूर्त द्रव्योंमें यह इससे पूर्वमें है, आदिक ज्ञान किसी अन्य द्रव्यके कारण होते हैं और वह अन्य द्रव्य है दिशा नामक। तो अब दिशाके बोध में यह प्रश्न उठता है कि दिशाओंके भेदकी अवधि करके उन दिशाओंके भेदमें जो यह ज्ञान चलता है कि यह इससे पूर्व दिशा है तो उन दिशाओंके ज्ञानका कारण कोई अन्य द्रव्य मानो, क्योंकि यह भी एक विशिष्ट ज्ञान है और यदि अन्य द्रव्यान्तर मान लोगे तो अनवस्था दोष होगा, फिर उसमें दिशाओंके भेदकी व्यवस्था अन्य द्रव्यसे मानो। इस तरह कहीं भी टिकाव न होगा। यदि कहो कि दिशाओंमें स्वरूपसे ही पूर्व अपर आदिक प्रत्ययकी सिद्धि हो जायगी। तो देखो ! अब सीमें ही इस ही हेतुसे अनेकान्तिक दोष हो गया। तुम्हारा प्रयोग था कि पूर्वापर आदिक प्रत्यय मूर्त द्रव्यसे अतिरिक्त पदार्थके कारण हैं क्योंकि विशिष्ट प्रत्यय होनेसे। तो अब देखो ! दिशाओंमें यह इससे पूर्व है, यह इससे पश्चिम है ऐसा विशिष्ट प्रत्यय तो हो गया मगर द्रव्यान्तर कारणक नहीं माना तो तुम्हारा हेतु अब व्यभिचारी हो गया। इससे दिशा नामक द्रव्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। तो उसमें यह प्रसंग देना कि आकाशहेतुक पूर्व आदिक दिशाओंका ज्ञान माना जाय तो उसमें निवृत्ति न रहना चाहिए कि यह पूर्व ही है पश्चिम नहीं है, ऐसे निवृत्तिके अभावके प्रसंगका दोष भी नहीं दे सकते। निष्कर्ष यह है कि दिशा नामका कोई द्रव्य हो जो उस दव्यघोष्य करता हो, जिसमें सत्त्व हो, ऐसा कुछ भी द्रव्य नहीं है। आकाश प्रदेशमें ही सूर्यके उदय अस्तके निमित्तसे पूर्व पश्चिम आदिकका व्यवहार होता है।

मेरुप्रदक्षिणागत सूर्यके सम्बन्धसे आकाश प्रदेशपंक्तियोंमें पूर्वादिदिशाओंका व्यवहार, शंकाकारने जो यह कहा कि मेरुकी प्रदक्षिणा देने वाले सूर्य का दिशाओंमें सम्बन्ध होनेके कारण पूर्व आदिक व्यवहार बन जाते हैं तो यों बात दिशा द्रव्यमें तो बैठती नहीं, किन्तु आकाश प्रदेश पंक्तियोंमें यह व्यवहार अवश्य बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है अर्थात् मेरूकी प्रदक्षिणा देते हुए सूर्यका आकाश प्रदेश पंक्तियोंमें सम्बन्ध होता है सो उसके पूर्वापर (उदय अस्त) सम्बन्धके कारण पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओं का व्यवहार बनता है। तो यों दिग् द्रव्यकी कल्पना करना व्यर्थ है। आकाश प्रदेश पंक्तियोंमें ही सूर्यके उदय और अस्तके सम्बन्धसे पूर्व आदिक दिशाओंका व्यवहार होता है। और दिशा द्रव्य न होकर भी फिर भी एक कल्पना करके उसकी व्यवस्था बनाते हो तो फिर यों देश द्रव्यकी भी कल्पना कर डालना चाहिये। जैसे कि दिशाओंमें यह व्यवहार होता है कि यह पूर्व दिशा है, यह पश्चिम है इसी प्रकार देशमें भी तो यह कल्पना होती है कि यह इससे पूर्व है, यह इससे पश्चिम है, यह इससे उरे है, यह परे है, यो यों देश द्रव्यको भी कल्पना कर देना चाहिये और कल्पना कर डालें कि यदि देश द्रव्य न होता तो यह इससे पूर्व देश है आदिक प्रत्यय कैसे बनते। तो यह इससे पूर्व देश है, इस प्रत्ययकी विलक्षणता मानकर देश द्रव्यकी भी कल्पना कर डालना चाहिये। जब देश भी द्रव्य मान लोगे तब द्रव्य ६ होते हैं इस संख्याका विघात हो जायगा। यदि कहोगे कि पृथ्वी आदिक ही देश द्रव्य कहलाते हैं तो यह बात असत्य है, क्योंकि पृथ्वी आदिकमें तो पृथ्वी आदिकका ही ज्ञान बनता है। उसमें यह इससे पूर्व देश है इस प्रकारका प्रत्यय नही बनता, केवल यह ही ज्ञान हो जायगा कि यह पृथ्वी है और उस पृथ्वीका आकार रूप रस आदिक ये भी जान लिये जायेंगे, पर यह देश इससे पूर्वमें है इस प्रकारका बोध पृथ्वीसे सम्बन्ध नही रखता, किन्तु देश द्रव्यका सम्बन्ध रखता है। यों सोचकर देश द्रव्य मान लिया जायगा और फिर १० द्रव्य बन बैठेगे। यदि कहो कि पृथ्वी आदिके पूर्व देश आदिकेका ज्ञान पूर्व आदि दिशावोंके द्वारा किया गया है तो वहाँ ही पूर्वादि आकाश द्वारा पूर्वादि दिशाओंका प्रत्यय हो जावो फिर दिशा द्रव्यकी कल्पना करना व्यर्थ है। शंकाकारका यहाँ यह अभिमत हो रहा है कि देशमें जो यह इससे पूर्व है ऐसा प्रत्यय होता है तो उस प्रत्ययका आधार तो रहा पृथ्वी ग्राम, नगर, पर्वत आदिक और उनमें जो पूर्वत्व अपरत्वका ज्ञान होता है वह पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओंके द्वारा किया गया है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तब तो यह हीं सीधा मान लेना चाहिए कि पूर्व पश्चिम आदिक आकाश कृत वे पूर्व आदिक प्रत्यय हैं इस कारण पूर्व आदिक दिशा द्रव्य नही हैं। हुयी सब यह मूर्त द्रव्योंमें ही कल्पना कि यह इससे पूर्व है यह इससे पश्चिममें है लेकिन इसका कारण है आकाश प्रदेश पंक्तियाँ और उस आकाश प्रदेश पंक्तियोंका पूर्व पश्चिम आदिक के बोधका कारण है सूर्यका उदय और अस्त होना। इस तरह दिशा नामका द्रव्य गुण अलग द्रव्य नही है, उसका सत्त्व नही है- केवल सूर्यके उदय अस्तमें भेदसे पूर्व आदिक दिशायें मान ली गई हैं।

आकाश प्रदेश पंक्तिकल्पनाकी सार्थकता—अब शंकाकार कहता है कि इस तरहसे तो अर्थात् जैसे यह मान लिया समाधानकारने कि सूर्यके उदय अस्त आदिककी वजहसे आकाश प्रदेश पंक्तियोंमें ही पूर्व आदिक प्रत्यय बनते हैं तो इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माननेकी तरह सीधा यह ही क्यों नही मान लिया जाता कि सूर्यके उदय अस्तकी वजह से पृथ्वी आदिकमें ही पूर्व पश्चिम आदिक ज्ञान कर लिए जाते हैं। फिर तो आकाश प्रदेश श्रेणियोंकी कल्पना भी अनर्थक हो गया। सूर्यके उदय अस्तके सम्बन्धसे जो पर्वत ग्राम आदिक मूर्त पृथ्वी पदार्थ हैं उनमें ही पूर्व पश्चिम आदिककी कल्पना बन जायगी। आकाश प्रदेश पंक्तियोंकी कल्पना करना फिर व्यर्थ है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन सही नही है। पूर्व आदिक दिशाओंमें ये पर्वत नगर आदिक पाये जाते हैं इस प्रकारका आधार आधेय व्यवहार पाया जा रहा है। इस व्यवहारसे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी आदिकका आधारभूत आकाश प्रदेश श्रेणियाँ हैं। सभी लोगोंको ऐसा प्रत्यय हुआ करता है कि यह नगर पूर्व दिशामें है, अमुक पश्चिम दिशामें है, तो यहाँ व्यवहारमें दिशायें तो हुई आधार और ग्राम नगर आदिक हुए आधेय। अब यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि उनका जो आधार हैं दिशायें एक सूर्यके उदय अस्तसे निर्णीतकी गई। आकाशकी प्रदेश पंक्तियाँ है इस कारण आकाश प्रदेश पंक्तियोंकी कल्पना सार्थक है। और, आकाश भी है कुछ और उसकी प्रदेश श्रेणियाँ भी हैं कुछ। यह बात प्रमाणसे सिद्ध कर ही दी गई है। आकाश नामक कोई द्रव्य है क्योंकि अन्य समस्त पदार्थोंका अवगाह अन्यथा बन नही सकता था। समस्त द्रव्योंके अवगाहकी उपपत्ति होनेसे आकाशकी सिद्धि है और आकाशके रहनेसे। जो पदार्थ पूर्व दिशामें रह रहा है वह वहाँ ही है, सर्वत्र नही है। दूसरा पदार्थ पश्चिम दिशामें रह रहा है वह वही है, अन्यत्र नही है। यदि आकाशके अवयव न माने जायें तब समस्त पदार्थ एक ही जगह अवस्थित हो जायेंगे यह दोष आवेगा। अतः पदार्थोंका भिन्न-भिन्न स्थानोंमें जो ठहरना हो रहा है वह आकाशके अवयवोंको सिद्ध कर रहा है। आकाशके किसी अवयवमें विन्ध्याचल है किसी अवयवमें हिमालय है तो यों पदार्थोंका भिन्न-भिन्न देशमें अवस्थान सिद्ध हो जाता है। तो यहाँ तक यह बात सिद्ध हुई कि दिशा कोई अलग द्रव्य नही है किन्तु सूर्यके उदय अस्तके कारण आकाश प्रदेश पंक्तियोंमें ही दिशाका व्यवहार किया जाता है। जिन आकाशके अवयवोंमें सूर्योदय होता है वह तो है पूर्व दिशा और जहाँ अस्त होता है वह है पश्चिम। पूर्वाभिमुख पुरुषका जिस ओर दक्षिण हस्त है वह है दक्षिण दिशा और जिस ओर वाम हस्त है वह है उत्तर दिशा। अब पूर्व और दक्षिण दिशाके बीचका जा भाग है वह है नैऋत दिशा और दक्षिण पश्चिमके बीचका जो भाग है वह है आग्नेय दिशा। पश्चिम और उत्तर दिशाके बीचका जो भाग है वह है वायव्य दिशा और उत्तर पूर्वकी दिशाके बीचका जो भाग है वह है ईशान दिशा। जहाँ हम सब लोग ठहरे हैं इससे ऊपर ऊर्ध्व दिशा है और नीचे अधो दिशा है। तो इन १० दिशाओंकी इस तरह कल्पनावश आकाश प्रदेश पक्तियोंमें उपपत्ति होती है। दिशा नामका को द्रव्य हो यह सिद्ध नही होता और फिर उस दिशामें यह कल्पना बनी कि दिशा नामका पदार्थ एक है, नित्य है, एक है, सर्व व्यापक है, यह तो और भी बेतुकी कल्पना है। इस तरह विशेषवादमें माना गया दिग् नामका द्रव्य भी सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं होता है ।

प्रमाणविषयभूत प्रमेयके स्वरूपकी चर्चामें विशेषवादकी मीमांसा— प्रकरणमें यह बताया जा रहा है कि प्रमाणका विषय क्या है । इस न्याय ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूप विषय और फलकी चर्चा की गई है । प्रमाण कहते हैं ज्ञानको सम्यक् जाननेका नाम प्रमाण है ' जो स्व और परपदार्थका निश्चय कराये उसे प्रमाण ज्ञान कहते हैं । स्व और पर अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान इस कारण प्रमाण है कि उस ज्ञानमें ही यह सामर्थ्य है कि हितकी प्राप्ति कराये और अहितकारीका परिहार कराये । ज्ञानमें जैसे परको प्रतिभासने का सामर्थ्य है इसी प्रकार अपने ही स्वरूपके कारण अपनेको भी प्रतिभासने की सामर्थ्य है । जैसे कि दीपक अपना भी प्रकाश करता है और परका भी प्रकाश करता है इसी तरह ज्ञान स्वयंका भी निर्णय रखता है और पर पदार्थका भी निर्णय करता है । उस ज्ञानके दो प्रकार होते हैं ! प्रत्यक्ष और परोक्ष । जो विशद हो सो प्रत्यक्ष होता, और जो स्पष्ट न हो सो परोक्ष है । प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारके होते हैं —एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष । सांव्य-वहारिक प्रत्यक्ष तो इन्द्रियाधीन होनेके कारण वस्तुत: परोक्ष ही है, लेकिन उसमें एकदेश विशदता होती है इस कारण उसे सांव्यवहारि प्रत्यक्षमें अन्तर्गत किया है । पारमार्थिक प्रत्यक्षके तीन भेद हैं—अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान । इनमें से केवलज्ञान तो सम्पूर्ण ज्ञान है और अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान ये विकल प्रत्यक्ष कहलाते हैं । परोक्षज्ञान, स्मृतिप्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम यों पाँच भेद कहे गए हैं । इन सबका विधिवत् स्वरूप बताया गया है । स्वरूप व्यवस्था बतानेके बाद जब स्व और अपूर्व अर्थके सम्बन्धमें विचार चलाया गया कि जिस स्व और अपूर्व अर्थको प्रमाण विषयभूत करता है वह विषयभूत पदार्थ किस प्रकारका है ? तो उत्तर दिया गया कि प्रमाणका विषय याने प्रमेय सामान्यविशेषात्मक है । स्याद्वाद सिद्धान्त में व्यवहारदृष्टिसे धर्मको धर्मीसे भिन्न बताया गया है, केवल प्रतिपादन और समझानेके प्रसंगमें ही भेद करनेकी आज्ञा दी गई है और वह धर्म धर्मीसे भिन्न संज्ञा स्वरूपसे बनता है, इतने मात्रसे धर्म कोई स्वतन्त्र सत् हो जाय, धर्मी स्वतन्त्र सत् हो यह बात नही बनती, किन्तु एकान्तवादमें या तो अभेद किया है तो इस तरह कि समस्त विश्व एकरूप है । उनमें भेद किया है तो इस तरह कि धर्म धर्मीमें धर्म धर्मियोंमें अत्यन्त भेद डाला गया है । तो प्रकरणमें भेदभाव पद्धतिसे पदार्थों की व्य-वस्थाकी शंका की गई थी कि प्रमाणके विषयभूत प्रमेय ६ जातिके हैं— द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय । सामान्य विशेष भी पदार्थसे अलग करके स्वतंत्र मान लिए गए हैं । उनमें द्रव्य ९ प्रकारके बताये गए—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन । इन ९ प्रकारके द्रव्योंमें से पहिले ७ प्रकारके द्रव्योंके सम्बन्धमें विचार किया गया और उनमें दिशा तो कोई सत् ही नही सिद्ध होती । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये सत् तो सिद्ध होते हैं, किन्तु पृथक पृथक जातिके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थ सिद्ध नहीं होते, ये पुद्गल द्रव्य ही कहलाते हैं। आकाश द्रव्य है, लेकिन व निरवयव और शब्दलिंग नहीं है, कालद्रव्य है लेकिन वह एक निरंश सर्वव्यापक नह है। इस तरह ७ द्रव्योंके सम्बन्धमें विचार किया गया। अब आत्मा और मन इन द द्रव्योंके सम्बन्धमें तथा शेष गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायके सम्बन्धमें विचा किया जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com